978-93-81403-14-3

Research Institute of Prakrit Jainology & Ahimsa, Vaishali
Basokund, Muzaffarpur (Bihar)-844128, India
Ph.: 09471001719, 9431441951
Email:vaishaliinstitute@gmail.com, director.ripja@gmail.com
Web site: www.ripja.bih.nic.in

पउमचरियं तथा वाल्मीकि रामायण का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. अशोक प्रियदर्शी

पउमचरियं तथा वाल्मीकि रामायण का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. अशोक प्रियदर्शी

प्राकृत विद्यापीठ वैशाली

प्राकृत, जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली
बासोकुण्ड, मुजफ्फरपुर (बिहार)-844128 (भारत)

ISBN :987-93-81403-14-3
मूल्य :Rs. 350.00

Scanned with OKEN Scanner

प्राकृत जैन शोध संस्थान ग्रन्थमाला : 98

पउमचरियं तथा वाल्मीकि रामायण का तुलनात्मक अध्ययन

प्रधान सम्पादक
प्रो. (डॉ.) ऋषभचन्द्र जैन
निदेशक
प्राकृत, जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली

लेखक
डॉ. अशोक प्रियदर्शी

प्राकृत, जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली
बासोकुण्ड, मुजफ्फरपुर (बिहार)-844128 (भारत)
2016

Scanned with OKEN Scanner

पउमचरियं तथा वाल्मीकि रामायण का तुलनात्मक अध्ययन

प्रधान सम्पादक : प्रो. (डॉ.) ऋषभचन्द्र जैन
निदेशक, प्राकृत, जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली

लेखक : डॉ. अशोक प्रियदर्शी

© : प्राकृत, जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली

प्रथम संस्करण : 2016

ISBN : 987-93-81403-14-3

मूल्य : Rs. 350.00

Published on behalf of the Research Institute of Prakrit Jainology and Ahimsa, Basokund, Muzaffarpur, Bihar by Prof. (Dr.) Rishabha Chandra Jain, Director;
Ph.: 09471001719, 9431441951
Email:vaishaliinstitute@gmail.com, director.ripja@gmail.com
Web site: www.ripja.bih.nic.in

Printed in India at the Impression Publication, Salimpur Ahra 'Baulia', Kadamkuan, Patna-800003; Ph. : 08877663597

The Government of Bihar established the Research Institute of Prakrit Jainology and Ahimsa at Vaishali in 1955, with the object, inter alia, to promote advanced studies and research in Prakrit and Jainology and to publish works of permanent value to scholars. This institute is one of the six research institutes being run by the Government of Bihar. The other five are : (i) Mithila Institute of Post-graduate Studies and Research in Sanskrit Learning at Darbhanga; (ii) K.P., Jayaswal Research Institute for research in ancient, medieval and modern Indian History at Patna; (iii) Bihar Rastrabhasha Parishad for research and advanced studies in Hindi at Patna; (iv) Nava Nalanda Mahavihara for research and post-graduate studies in Buddhist Learning and Pali at Nalanda and (v) Institute of Post-graduate Studies and Research in Arabic and Persian at Patna.

As part of the programme of rehabilitating and reorienting ancient learning and scholarship, this is the Research Volume no. 98 which is *Paumachariyam Tatha Valmiki Ramayan ka Tulnatmaka Adhyayan*. The Government of Bihar hope to continue to sponsor such projects and trust that this humble service to the world of scholarship and learning would bear fruit in the fullness of time.

Scanned with OKEN Scanner

समर्पण

ऐतिहासिक नाटकों के प्रणेता,
मेरे गुरु पूज्य बाबू जी (डॉ. चतुर्भुज)
आपके मार्ग दर्शित पंथ
का यह अनुकरण
आपको ही
समर्पित है।

आत्मज
अशोक प्रियदर्शी

Scanned with OKEN Scanner

प्रधान सम्पादकीय

प्राकृत और संस्कृत भाषा में महाकवि विमलसूरि द्वारा विरचित पउमचरियं और महर्षि वाल्मीकि विरचित रामायण (वाल्मीकि रामायण) रामकथा सम्बन्धी आद्य कृतियाँ हैं। दोनों कृतियाँ दो प्रमुख भारतीय सांस्कृतिक धाराओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। इनमें मर्यादापुरुषोत्तम भगवान राम का जीवन दर्शन अंकित है। वे ऐसे लोकप्रिय महापुरुष हैं, जिनके जीवन चरित को भारत और भारत से इतर देशों में भी अत्यधिक आदर प्राप्त हुआ है। उनके चरित विषयक तिब्बती तथा खोतानी रामायण, हिन्देशिया की प्राचीनतम रचना 'रामायण काकाविन', जावा का 'सेरत राम', और हिन्दचीन, श्याम, ब्रह्मदेश, सिंहल आदि देशों में राम कथाएँ लिखीं गयी हैं। वाल्मीकि कृत रामायण सर्वप्राचीन रामकथा के रूप में प्रायः सर्वमान्य रचना है। इसे आर्ष ग्रन्थ भी कहा जाता है। उक्त रामायण की कथा किंचित् हेर-फेर के साथ महाभारत, ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, अग्निपुराण, वायुपुराण आदि पुराण ग्रन्थों भी उपलब्ध है। अध्यात्म- रामायण, अद्‌भुतरामायण, आनन्दरामायण, कश्मीरी रामायण, कृतिवास रामायण, रंगनाथ रामायण आदि रामकथा के प्रसिद्ध एवं प्रमुख ग्रन्थ हैं। बौद्ध परम्परा में भी रामकथा के दर्शन होते हैं। वहाँ दशरथ जातक, अनामक जातक और चीनी भाषा में अनूदित दशरथकथानकम् राम कथा विषयक ग्रन्थ हैं, जिनमें रामकथा का प्रायः संक्षिप्त रूप दिखलाई पड़ता है।

जैनाचार्यों ने भी भगवान् राम के जीवन-चरित को लेकर प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में अनेक रचनाएँ की हैं। यहाँ कथानक की दृष्टि से दो धाराएँ प्राप्त होती हैं-पहली प्राकृतभाषा निबद्ध विमलसूरि कृत 'पउमचरियं' और रविषेण द्वारा संस्कृत भाषा में रचित 'पद्मचरित' की तथा दूसरी जिनसेन के शिष्य गुणभद्र कृत 'उत्तरपुराण' की, जो संस्कृतभाषा में रचित है। जैन परम्परा में स्थानांगसूत्र और तिलोयपण्णत्ती ग्रन्थों में तिरेसठ शलाका पुरुषों के जीवन से सम्बन्धित संक्षिप्त जानकारी के आधार पर तथा गुरु परम्परा से प्राप्त कथानकों को विकसित करके ग्रन्थ रचनाएं की गयी हैं। पउमचरियं और पद्मचरित की रामकथा को सामान्यतः छः भागों में विभाजित किया जा सकता है-1. विद्याधर काण्ड-राक्षस तथा वानरवंश का वर्णन, 2. राम और सीता का जन्म तथा विवाह, 3. वनभ्रमण 4. सीताहरण और उनकी खोज, 5. युद्ध और 6. उत्तरचरित। उत्तरपुराण की रामकथा जैनों के श्वेताम्बर सम्प्रदाय में प्रचलित नहीं है।

'पउमचरियं तथा वाल्मीकि रामायण का तुलनात्मक अध्ययन' नामक इस पुस्तक में लेखक ने नौ अध्यायों विभाजित करके विषय-वस्तु को प्रस्तुत किया है। लेखक को इस प्रस्तुति पर वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा की पी-एच. डी. उपाधि प्राप्त हुई है। इन्होंने श्रमपूर्वक अपना महानिबन्ध प्रस्तुत किया है। यह ग्रन्थ रामकथा विषयक

Scanned with OKEN Scanner

अध्ययन ग्रन्थों की श्रृंखला में कतिपय नये तथ्यों और विचारों की वृद्धि करेगा। इन्होंने सरकारी सेवा में रहते हुए भी अपने अध्ययन और चिन्तन-मनन को जारी रखा, इसके लिए उन्हें साधुवाद देता हूं। वैसे ये अपने ज्ञान और कला का उपयोग रंगमंच की दुनियां में भी कर रहे हैं, जिससे समाज के अनेक घटक लाभान्वित हो रहे हैं। लेखक इस संस्थान के विद्यार्थी भी रहे हैं। इन्होंने अपनी रचना संस्थान से प्रकाशित करने हेतु उपलब्ध करायी, इसके लिए उन्हें पुनः साधुवाद।

आकर्षक छपाई के लिए इम्प्रेशन पब्लिकेशन पटना के संचालक श्री राकेश रंजन धन्यवाद के पात्र हैं। इस सारस्वत कार्य में प्रत्यक्ष-परोक्ष सहयोगियों को भी धन्यवाद।

आकर्षक मुद्रण के लिए इम्प्रेशन पब्लिकेशन, पटना के संचालक श्री राकेश रंजन धन्यवाद के पात्र हैं। प्रकाशन के कार्य में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सभी सहयोगियों को भी धन्यवाद।

ऋषभचन्द्र जैन
निदेशक

प्राक्कथन

ज्ञान प्राप्ति के लिए न कोई उम्र होती है और न इसकी कोई सीमा होती है। मरने से पूर्व एक साक्षात्कार में चर्चित रंगकर्मी और फिल्म अभिनेता पृथ्वीराजकपूर ने कहा था कि जब मुझे कुछ सीखने का मौका मिला तब मैं जा रहा हूँ। मेरे बाबूजी, लोकप्रिय नाटककार डॉ. चतुर्भुज ने कॉलेज में कभी पढ़ाई नहीं की। पारिवारिक दायित्वों को निभाते हुए उन्होंने प्राईवेट से आई.ए., बी.ए. और एम.ए. की पढ़ाई पूरी की। सरकारी सेवा से अवकाशप्राप्त करने के दस वर्षों बाद उन्होंने पी-एच.डी. की डिग्री तब प्राप्त की जब उनके शिष्यों ने उनकी रचनाओं पर दूसरे विश्वविद्यालयों से डॉक्टरेट की उपाधि पूर्व में ही प्राप्त कर ली थी। बाबूजी के संघर्षमय जीवन को मैंने करीब से देखा था। पढ़ कर कुछ जानने की ललक उनके जीवन के अन्तिम समय तक बनी रही। नौकरी में आने के बाद प्राकृत विषय में मैंने एम.ए. किया।

राम की महत्ता युगों से जन-जन में व्याप्त है। कोई भी धर्म हो, सम्प्रदाय हो उसके विपुल साहित्य में किसी न किसी रूप में रामकथा का वर्णन देखने को मिलता है। मैं भी रामकथा से प्रभावित रहा हूँ। वैसे वाल्मीकि रामायण और तुलसीकृत रामचरितमानस से मैं परिचित था। लेकिन एम.ए. करने के दौरान जब मुझे स्वयंभू कृत 'पउमचरिउ' पढ़ने का अवसर मिला तब मैं कुछ प्रश्नों के बीच घिर गया। जैन साहित्य में राम सम्बन्धी नवीन कथा के कारण मैंने अपने अष्टम पत्र के अधिशोध के लिए इसी पुस्तक का चयन किया। 'रावण' नाटक लिखने के दौरान सामग्री एकत्रित करने के उद्देश्य से बाबूजी ने विभिन्न भाषाओं की रामायण को एकत्रित किया था। उसी समय मैंने दशरथ जातक, अद्भुत रामायण, पम्प रामायण, पउमचरियं, कश्मीरी रामायण, अध्यात्म रामायण, कृत्तिवास रामायण, कम्ब रामायण आदि को सरसरी निगाह से पढ़ा था। राम सम्बन्धी कथाओं में काफी भिन्नता देखने को मिली। खाने के दौरान बाबूजी के समक्ष बार-बार रामकथा से सम्बन्धित अनेक प्रश्न उनके सामने रखता था। वे बताते थे कि सारी कथाओं का आधार वाल्मीकि रामायण ही है। कालक्रम और सामाजिक परिवेश के कारण उन कथाओं में भिन्नता आती गयी है। बौद्ध धर्म, जैन धर्म आदि में रामकथा सम्बन्धी रचनाओं का मूल उद्देश्य रहा है उन धर्मों का व्यापक प्रचार-प्रसार।

विद्वानों का मत है कि महर्षि वाल्मीकि ने रामायण उन्हीं दिनों लिखी, जब श्रीरामचन्द्रजी पृथ्वी पर अवतरित होकर मानव जीवन व्यतीत कर रहे थे। लेकिन अध्ययन के पश्चात् ऐसा प्रतीत होता है कि राम और सीता की कथा महर्षि वाल्मीकि से बहुत पहले लोगों के बीच प्रचलित हो चुकी थी। सम्भवतः परम्परा से प्रचलित रामकथा को महर्षि वाल्मीकि ने काव्यबद्ध किया। इसी कारण रामायण कथा में कुछ उलझनें- जैसे बालि का वध तथा सीता को वन में छोड़ आना जैसी न्याय-विरुद्ध बातें घुस गयी हैं। वाल्मीकि की

Scanned with OKEN Scanner

रचना में राम ईश्वर के अवतार नहीं हैं। हाँ, अपनी रामायण में उन्होंने स्थान-स्थान पर यशस्वी राजकुमार, अलौकिक और असाधारण गुणों से विभूषित मनुष्य के रूप में राम का वर्णन किया है।

जैन साहित्य में महाकवि विमलसूरि को वही सम्मान दिया जाता है जो संस्कृत साहित्य में महर्षि वाल्मीकि का रहा है। आचार्य विमलसूरि ने महाराष्ट्री प्राकृत में रामकथा विषयक प्रथम ग्रंथ- 'पउमचरियं' की रचना की है। पउमचरियं की रचना के समय तक राम ईश्वर अवतार के रूप में लोकप्रिय हो गये थे। लेकिन विमलसूरि ने रामकथा का वर्णन अपने सम्प्रदाय को जन-जन तक पहुँचाने के उद्देश्य से किया था। यही मूल कारण है कि वाल्मीकि रामायण की मूलकथा से थोड़ा अन्तर पउमचरियं की रामकथा में देखने को मिलता है। कालान्तर में जैन रामकथा साहित्य में विमलसूरि के पउमचरियं का प्रभाव दिखायी पड़ता है।

हर विद्वान इस बात से सहमत हैं कि जितनी भी रामकथाएं विभिन्न भाषाओं में लिखी गयी हैं उन सब का मूल आधार वाल्मीकि रामायण की कथा ही है। हर युग के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक घटनाओं की झलक उस युग के ग्रंथों में देखने को मिलती है। रामकथा की घटनाओं की विवेचना में भी अन्तर आना स्वाभाविक है। आचार्य विमलसूरि के पउमचरियं में हर चरित्र जैन धर्म से प्रभावित नजर आता हैं। रावण को दस सिर नहीं थे, बल्कि बचपन में उसने नौ मोतियों की माला धारण की थी और उसका एक सिर नौओं मोतियों में प्रतिबिम्बित नजर आता था, इसीलिए उसे दसानन कहा गया। रावण की मृत्यु राम के हाथों न होकर लक्ष्मण के हाथों-दिखायी गयी है। इस ग्रंथ में राम को पिता दशरथ के द्वारा वनवास नहीं दिया गया है बल्कि वे स्वयं वन गमन करते हैं। इस ग्रंथ के लगभग सभी चरित्र जैन धर्म में दीक्षित होते हैं।

रामकथाओं की भिन्नता देखकर मेरे मन में आया कि मैं इसकी गहराई तक जाऊँ और रामकथा के अथाह सागर से कुछ अनमोल रत्नों को एकत्रित करूँ। अनेक विद्वानों के समक्ष अपनी उत्कंठा को मैंने व्यक्त किया। अन्त में विद्वानों ने सुझाव दिया कि मैं जैन साहित्य के प्रथम रामकाव्य-पउमचरियं और संस्कृत साहित्य के प्रथम रामकाव्य वाल्मीकि रामायण को अपने शोध का विषय बनाऊँ। उनका सुझाव मुझे जंच गया और मैं शोध के प्रारम्भिक कार्यों में जुट गया।

सर्वप्रथम मैं श्रद्धासुमन अर्पित करता हूँ रामकथा के आदि कवि महर्षि वाल्मीकि एवं जैन साहित्य में रामकथा के आदि कवि आचार्य विमलसूरि को जिनके अनमोल ग्रंथों (वाल्मीकि रामायण और विमलसूरिकृति पउमचरियं) को सामने रखकर मैंने उनमें से कुछ अनमोल रत्न निकालने का दुस्साहस किया। शोधकार्य में कितना सफल हुआ, यह निर्णय तो विद्वतजन करेंगे। अन्य दूसरी भाषाओं के कवियों, लेखकों, नाटककारों को मैं आन्तरिक हृदय से आभार प्रकट करता हूँ जिनकी रचनाओं ने मुझे इस शुभकार्य के लिए प्रेरित किया और जिनकी रचनाओं से मुझे अपने शोधकार्य में मदद मिली। इन ग्रंथों से मैंने महसूस किया कि दूसरे धर्म-सम्प्रदाय के रचनाकारों की दृष्टि में राम कितने श्रद्धेय रहे हैं।

अध्ययन की गम्भीरता एवं सुविधा के लिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को नौ अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय में शोध का औचित्य, शोध की सीमा और विस्तार एवं रामकथा के स्त्रोत को दर्शाया गया है। द्वितीय अध्याय में विमलसूरि-कवि और उनका परिचय तथा वाल्मीकि-कवि और उनका परिचय उद्धृत है। तृतीय अध्याय के अन्तर्गत कथावस्तु शीर्षक दिया गया है जिसमें पउमचरियं और वाल्मीकि रामायण की कथावस्तु उद्धृत की गयी है। चतुर्थ अध्याय में चरित्र-चित्रण के अन्तर्गत पउमचरियं के कुछ प्रमुख पात्रों और कुछ गौण पात्रों के साथ वाल्मीकि रामायण के कुछ प्रमुख पात्रों और कुछ गौण पात्रों का उल्लेख है। पंचम अध्याय में कथा प्रवाह में प्रसंगों की संगति के अन्तर्गत पउमचरियं में उद्धृत नगर वर्णन, राजप्रासाद वर्णन, उपवन वर्णन और ऋतु वर्णन (वर्षा वर्णन, वसंत वर्णन, शरद वर्णन) के साथ वाल्मीकि रामायण में नगर वर्णन, राजप्रासाद वर्णन, उपवन वर्णन और ऋतु वर्णन वसंत वर्णन, वर्षा वर्णन, शरद वर्णन और षड्ऋतु वर्णन का उल्लेख है। षष्ठ अध्याय में पउमचरियं की भाषा, छन्द, शब्द शक्तियाँ और वाल्मीकि रामायण की भाषा के अन्तर्गत छन्द, शब्द शक्तियों आदि का उल्लेख है। सप्तम् अध्याय में पउमचरियं में अलंकार और वाल्मीकि रामायण में अलंकार का उल्लेख है। अष्टम अध्याय रस निरुपण का है जिसमें साहित्य में रस की विवेचना करते हुए पउमचरियं में रस निरुपण और वाल्मीकि रामायण में रस निरुपण उद्धृत है। नवम् अध्याय में उपसंहार के अन्तर्गत कालिक आयाम में पउमचरियं और कालिक आयाम में वाल्मीकि रामायण के साथ निष्कर्ष और उपलब्धियाँ प्रस्तुत की गयी है। अन्तिम अध्याय अर्थात् नवम् अध्याय में निष्कर्ष और उपलब्धियाँ प्रस्तुत हैं।

मेरे शोध कार्य में जिन लोगों का सदैव प्रोत्साहन बना रहा वे हैं- इंडियन बैंक के सुनील कुमार सिन्हा, जिन्होंने शोध कार्य के लिए मुझे प्रेरित किया, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय के प्रो. आलोक कुमार, प्रोफेसर संजय सिंह जी, डॉ. सुदर्शन मिश्र, दीनानाथ जी, प्रो-वाईसचांसलर प्रोफेसर देवमुनि प्रसाद, प्रो. ए.के. शरण, एन.एस.यू.आई. के सचिव अजय कुमार तिवारी, महामहिम राज्यपाल, बिहार के ओ.एस.डी. श्री कृष्ण कुमार जी, डॉ. विश्वनाथ चौधरी, पी.टी.आई. के महावीर प्रसाद सिंह, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग के अवकाश प्राप्त रंगकर्मी शिवपूजन शर्मा, रूढ़की के जैन साहित्य के विद्वान और प्राचार्य डॉ. योगेन्द्र नाथ शर्मा 'अरूण' आदि। मैं इनके प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। साथ ही मैं आभार प्रकट करता हूँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों के प्रति जिन्होंने अपनी पत्रिकाओं में रामायण से संबन्धित विद्वानों के आलेख प्रकाशित कर मेरा मार्ग दर्शन किया।

वैशाली शोध संस्थान के पूर्व निदेशक रहे डॉ. नागेन्द्र प्रसाद के प्रति मेरी कृतज्ञता है कि उन्होंने मुझे प्राकृत भाषा से जोड़ा और मुझे इस बहाने जैन साहित्य को पढ़ने का सुअवसर मिला। स्नातकोत्तर की डिग्री के समय मेरे पूज्य गुरुदेव रहे डॉ. डी. एन. शर्मा का मैं ऋणी हूँ जिन्होंने वृद्धावस्था में भी अपने आवास पर बुलाकर जैन साहित्य में राम से संबन्धित विविध प्रमुख ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय दिया जिससे मुझे शोध प्रबन्ध की तैयारी में काफी सुविधा मिली। वैशाली शोध संस्थान के अपने पुराने मित्र प्रमोद कुमार

Scanned with OKEN Scanner

जैन और विजय कुमार सिन्हा को मैं कभी भी भूल नहीं सकूँगा जिन्होंने संदर्भ ग्रंथों को उपलब्ध कराने में मेरी पूरी सहायता की। मैं आन्तरिक हृदय से पूर्व निदेशक महोदय के प्रति, अपने गुरुदेव के प्रति और उन मित्रों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

मेरे शोध प्रबन्ध को पुस्तकाकार बनाने में प्राकृत भाषा और साहित्यक मनीषी विद्वान् प्राकृत शोध संस्थान, वैशाली के निदेशक प्रो. ऋषभचन्द्र जैन का कृतज्ञ हूँ, जिनको कृपापूर्ण उदार दृष्टि से यह ग्रन्थ अग्रणी संस्थान से प्रकाशित हो रहा है।

वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय के प्राकृत विभागाध्यक्ष डॉ. रामजी राय और बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना की उप निदेशक डॉ. श्रीमती मिथिलेश कुमारी मिश्र के प्रति असीम कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ जिन्होंने अपना बहुमूल्य समय निकालकर मेरे शोध प्रबन्ध में पग-पग पर मेरा समुचित मार्ग दर्शन किया और सदैव मेरा प्रोत्साहन बनाये रखा।

इस शोध कार्य के प्रेरक के रूप में मैं अपनी धर्मपत्नी स्व. माला प्रियदर्शी को सादर नमन करता हूँ, साथ ही नमन करता हूँ अपने छोटे चाचा स्व. अनन्त कुमार जी को। माँ- श्रीमती मनोरमा देवी, अनुज- कुमार शांत रक्षित के साथ मैं आभार व्यक्त करता हूँ पुत्र प्रांणशु प्रियदर्शी, पुत्री प्रेक्षा, प्रशस्ति और भतीजी तरूणिमा के प्रति जिन्होंने शोध-प्रबन्ध की तैयारी में मेरी मदद की।

विभिन्न पुस्तकालयों से मुझे काफी सहयोग मिला- यथा- हिन्दी ग्रंथागार, पुराना सचिवालय, पटना; डॉ. सच्चिदानन्द सिन्हा लाईब्रेरी, पटना; काशी प्रसाद जायसवाल संस्थान में अवस्थित पुस्तकालय, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् में अवस्थित पुस्तकालय, प्राकृत शोध संस्थान, वैशाली का पुस्तकालय, नालन्दा पालि इन्स्टीच्यूट, नालन्दा का पुस्तकालय आदि। मैं इन पुस्तकालयों के पुस्तकालयाध्यक्षों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। साथ ही आभार प्रकट करता हूँ उन लेखकों-कवियों-नाटककारों-उपन्यासकारों के प्रति जिनकी रचनाओं के उद्धरण अथवा प्रसंग का उपयोग मैंने अपने शोध-प्रबन्ध में किया है।

अन्त में मैं विशेष रूप से उस महापुरुष को स्मरण करना नहीं भूलता जिन्होंने अंगुली पकड़कर मुझे लिखना सिखाया, और जिनकी आन्तरिक इच्छा थी कि मेरी तरह मेरा पुत्र भी शोध प्रबन्ध तैयार करे। वे थे मेरे बाबूजी, लोकप्रिय नाटककार डॉ. चतुर्भुज। शोध कार्य उनके जीवनकाल में ही मैंने प्रारम्भ किया था। अस्सी वर्ष की उम्र में भी वे मेरे शोध प्रबन्ध का संशोधन और बहुमूल्य सुझाव देते रहे। उनके असामयिक निधन से शोध कार्य की प्रगति में थोड़ी शिथिलता अवश्य आयी। लेकिन उनका आशीर्वाद और उनकी प्रेरणा मेरे साथ सदैव बनी रही जिसके कारण मैं इसे पूरा कर सका हूँ।

अशोक प्रियदर्शी

अनुक्रमणिका

प्रधान सम्पादकीय	vi-viii
प्राक्कथन	ix-xii
प्रथम अध्याय	**1-26**
(क) शोध का औचित्य	1
(ख) शोध की सीमा और विस्तार	4
(ग) राम कथा के स्रोत	8
द्वितीय अध्याय	**27-45**
(क) विमलसूरि-कवि और उनका परिचय	27
(ख) महर्षि वाल्मीकि-कवि और उनका परिचय	35
तृतीय अध्याय	**46-78**
(क) पउमचरियं की कथावस्त	46
(ख) वाल्मीकि रामायण की कथावस्तु	56
चतुर्थ अध्याय	**79-133**
चरित्र-चित्रण :-	79
(क) पउमचरियं के प्रमुख पात्र	80
(ख) वाल्मीकि रामायण के प्रमुख पात्र	89
(ग) पउमचरियं के गौण पात्र	111
(घ) वाल्मीकि रामायण के गौण पात्र	117
पंचम अध्याय	**134-151**
कथा प्रवाह में प्रसंगों की संगति :-	134
(क) पउमचरियं- नगर वर्णन, राजप्रासाद वर्णन, उपवन वर्णन, ऋतु वर्णन	134
(ख) वाल्मीकि रामायण- नगर वर्णन, राजप्रासाद वर्णन, उपवन वर्णन, ऋतु वर्णन	142
षष्ठ अध्याय	**152-179**
(क) पउमचरियं की भाषा- छन्द, शब्द शक्तियाँ आदि	153
(ख) वाल्मीकि रामायण की भाषा- छन्द, शब्द शक्तियाँ आदि	173

Scanned with OKEN Scanner

सप्तम अध्याय	**180-193**
अलंकार	
(क) पउमचरियं में अलंकार	180
(ख) वाल्मीकि रामायण में अलंकार	189
अष्टम अध्याय	**194-211**
रस निरूपण	
(क) साहित्य में रस की विवेचना	194
(ख) पउमचरियं में रस निरुपण	199
(ग) वाल्मीकि रामायण में रस निरुपण	203
नवम् अध्याय	**212-249**
उपसंहार	212
(क) कालिक आयाम में पउमचरियं	213
(ख) कालिक आयाम में वाल्मीकि रामायण	218
(ग) निष्कर्ष और उपलब्धियाँ	229
परिशिष्ट	**250-255**

प्रथम अध्याय

(क) शोध का औचित्य

श्री अरविन्द ने अपने वैचारिक लेख- 'सात्विक मानवता के अनन्य अवतार-पुरुष : श्री राम' में उल्लेख किया है कि--"राम का उद्देश्य था रामराज्य की स्थापना करना, या यों कहें कि भविष्य के लिए एक ऐसी व्यवस्था को स्थापित करना, जो उस सात्विक सभ्य मानवप्राणी के अनुरूप हो, जो अपने जीवन का परिचालन विवेक, सूक्ष्म संवेदना, नैतिकता और सत्य, आज्ञाकारिता, सहकारिता, संवादिता जैसे नैतिक आदर्शों से करे और जो गार्हस्थिक और सार्वजनिक जीवन को एक अनुशासन प्रदान करे।"[1]

प्राचीन काल से आज तक मर्यादा पुरुषोत्तम राम का नाम शाश्वत रहा है। सम्भवतः संस्कृति के इतिहास में वही एकमात्र ऐसे व्यक्ति रहे हैं जिनका उल्लेख हर भाषा के साहित्य में किसी न किसी रूप में हुआ है। न केवल भारतीय भाषाओं में और भारतीय साहित्य में ही उनके नाम का उल्लेख हुआ है, बल्कि संसार की अन्य भाषाओं में और साहित्य में भी किसी न किसी रूप में उनकी चर्चा आई है।

भारतवर्ष के घर-घर में राम की पूजा होती है। यह केवल शिक्षित वर्ग के ही आराध्य देव नहीं हैं बल्कि अशिक्षित वर्ग के भी आराध्य रहे हैं। यहां तक कि लोक-कलाओं जैसे-मिथिला चित्रकला, आदिवासी चित्रकला आदि में भी घर की महिलाएं राम को विविध प्रसंगों में चित्रित करती रही हैं। चाहे वह कोई भी रंग हो, राम सभी रंगों में भिन्न-भिन्न परिधानों में सजे नजर आते हैं। उन्हें हम राजसी वस्त्र में भी देखते हैं, वनवासी के रूप में भी देखते हैं। उन्हें धोती के परिधान में भी देखते हैं और अन्य परिधानों में भी देखते हैं। उनके बालपन की भोली-भाली सूरत को हम कहीं कहीं जांघिया पहने हुए भी देखते हैं। इस तरह राम का चित्र अनन्तकाल से विविध रूपों में हमारे सामने आता है।

आज विज्ञान का युग है। हमलोग चन्द्रलोक तक पहुँच गये हैं। दूसरे नक्षत्रों में, दूसरी दुनियाँ में भी जाने को सोच रहे हैं। लेकिन सब के बावजूद राम के बारे में हमारी धारणा वही है। कोई कहता है राम मनुष्य थे, कोई कहता है राम विष्णु के अवतार थे। कोई कहता है राम इस दुनिया में पापियों का नाश करने आये थे, कोई कहता है भक्तों को दर्शन देने आये थे। आज के किसी आदमी ने राम को देखा नहीं है। लेकिन राम की छवि सबके मन में अंकित है।

हम गर्व से कहते हैं कि हम इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर चुके हैं। हम प्राचीन दन्त कथाओं को नहीं मानते। लेकिन जब हम किसी मंदिर के सामने से गुजरते हैं तब चोरी से ही सही हमारा मस्तक एक अन्जान श्रद्धा के वशीभूत होकर स्वतः झुक जाता है। ऐसा क्यों होता है? बहुत सोचने पर भी हमें इसका उत्तर नहीं मिल पाता।

Scanned with OKEN Scanner

फिल्म और टेलीविजन की तकनीक मनोरंजन का आधुनिकतम माध्यम है। रामकथा पर अनेक फिल्में बनीं। आज भी टेलीविजन पर रामकथा पर आधारित एक साथ कई धारावाहिक चल रहे हैं। लोग बड़े आदर और सम्मान से उन्हें देखते हैं। निर्मातागण इस व्यवसाय से विपुल धन कमा रहे हैं।

कुछ साल पहले जब रामानन्द सागर का पौराणिक धारावाहिक 'रामायण' हर रविवार को टेलिकास्ट होता था तब लोग अपना काम-धन्धा छोड़ कर इसे देखने के लिए समय निकालते थे। सड़क पर सन्नाटा छा जाता था। इसे अन्धविश्वास कहें या रामकथा के प्रति आम आदमी की गहरी आस्था। आज भी रामकथा सम्बन्धी धारावाहिकों की कमी नहीं है। दूरदर्शन पर रामकथा सम्बन्धी एनिमेशन फिल्म दिखलाई गई है जो जापानी तकनीक से तैयार की गई है, यानी जापान ने भी रामकथा को अपनाया है। मकसद कुछ भी हो सकता है। विश्व के अनेक देशों में रामकथा की व्याप्ति दिखायी पड़ती है।

राजनीति के क्षेत्र में भी कुछ दल ऐसे हैं जो रामकथा को महत्त्व देते हैं और उसके भरोसे चुनाव लड़ते हैं। कुछ दल ऐसे भी हैं जो रामकथा का विरोध करते हैं। कहीं न कहीं प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से रामकथा दोनों का आधार है।

अनेक भाषाओं में रामकथा पर आधारित भिन्न-भिन्न ग्रंथ आये हैं। यहां तक कि अपने धर्म-प्रचार के लिए भी लोगों ने रामकथा का सहारा लिया है।

मूल कथा एक ही है लेकिन समय के लम्बे अन्तराल, भाषा की भिन्नता, सामाजिक परिवेश, राजनैतिक प्रतिबद्धता, साहित्यिक सौन्दर्य, कथा में भिन्नता आदि के कारण वैसी चीजें अलग होकर भी कहीं न कहीं एक बिन्दु पर आकर मिलती हैं।

जिसे पाश्चात्य विद्वानों ने 'एपिक' कहा है, उसे भारत ने आदर्श वीररस प्रधान कहा है। जिस तरह एपिक के अन्तर्गत होमर के 'इलियड' और 'ओडिसी' जैसे महाकाव्य आते हैं उसी तरह से भारतीय साहित्य में भी महाकाव्य के रूप में 'रामायण' को रखा गया है। महान् कवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने अपने वैचारिक लेख-'आत्मा का महाकाव्य : रामायण' में लिखा है--"राम का बाहुबल भी सामान्य नहीं है तथापि उसमें अन्य बहुत से गुण हैं ... बाहुबल की दुन्दुभि नहीं बजी है। युद्ध-घटना उसके वर्णन का मुख्य विषय नहीं है ... इसके बाद भी रामायण एक महाकाव्य है-एपिक है। रामायण में नर-चन्द्र का वृत्तान्त है-देवता का नहीं। रामायण में देवता को हीन बनाकर मनुष्य नहीं हुआ है, बल्कि मनुष्य ही अपने गुणों से उच्च होकर देवता हो गया है। रामायण में घर की बातें अत्यन्त विस्तृत रूप में वर्णित हैं। पिता-पुत्र में, भाई-भाई में, स्वामी-स्त्री में जो धर्म-बन्धन है, जो प्रीति और भक्ति का सम्बन्ध है, उसको रामायण ने इतना महत् बना दिया है कि वह बहुत ही सहज में महाकाव्य के उपयुक्त हो गया है। गृहस्थाश्रम भारतीय आर्य समाज की भित्ति है और रामायण उसी का महाकाव्य। रामायण ने बाहुबल को नहीं जिगीषा को नहीं, राष्ट्र गौरव को नहीं-केवल शांत-रसास्पद गृहधर्म को ही करुणा के अश्रुजल से अभिषिक्त कर, महान् शौर्य-वीर्य के ऊपर प्रतिष्ठित किया है।"[2]

लगभग सभी रचनाकारों ने वाल्मीकि रामायण को प्राचीनतम ग्रंथ की संज्ञा दी है। कवि वाल्मीकि के निकट राम अवतार नहीं थे- मनुष्य थे। कवि यदि अपनी रचना

में राम को देव-चरित्र के रूप में लिखते तब शायद वह उतनी लोकप्रिय नहीं होती जितनी उनके नर चरित्र के वर्णन में है। तुलसीदास की रचना कई सौ वर्ष बाद की है। कहीं-कहीं कथा में भिन्नता भी है। तुलसीदास ने रामचरित मानस की रचना इस उद्देश्य से की है कि हिन्दू संस्कृति को अन्धकार से प्रकाश में लाया जाये। आज भी रामचरित मानस का पठन-पाठन हर घर में होता है।

मैं प्रारम्भ से ही रामकथा अपने बुजुर्गों से सुनता आ रहा हूँ। मेरे पिताजी (डॉ. चतुर्भुज) जब **'रावण'** नाटक लिख रहे थे तब उसके लिए उन्होंने रामकथा सम्बन्धी अनेक संदर्भ ग्रंथों और कथाओं का अध्ययन किया। मुझे भी उनके साथ उन ग्रंथों को देखने सुनने और पढ़ने का अवसर मिला। वे ग्रंथ थे-वाल्मीकि रामायण, रामचरितमानस, कम्ब रामायण, थाई रामायण, तिब्बती रामायण, कश्मीरी रामायण, जातक कथा, पउमचरियं, पउमचरिउ, अध्यात्म रामायण, अद्भुत रामायण, कृतिवास रामायण, रंगनाथ रामायण आदि आदि।

इन कवियों और रचनाकारों ने अपने देश, सम्प्रदाय के रस्मों-रिवाज, सामाजिक रीति-नीति को अपने ढंग से रामायण के माध्यम से लिख कर सुस्वादु बनाने का प्रयास किया है। कहीं सीता-राम भाई-बहन हैं। कहीं सीता मन्दोदरी की पुत्री है। कहीं राम-लक्ष्मण का वनवास बारह वर्षों का है, कहीं चौदह वर्ष का है। कहीं रावण का वध राम के द्वारा हुआ है तो कहीं लक्ष्मण के द्वारा। कहीं हनुमान बाल-ब्रह्मचारी हैं तो कहीं उनकी कई पत्नियां हैं। ऐसा भी मिलता है कि राम की आठ हजार पत्नियां हैं और लक्ष्मण की सोलह हजार पत्नियां हैं।

जैन धर्म ने भी अपने प्रचार-प्रसार के लिए रामकथा का सहारा लिया है। इस सम्प्रदाय का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है-'त्रिषष्ठि शलाका पुरुषचरित' अर्थात्-तिरेसठ महापुरुषों का जीवनवृत्त। इसमें राम आठवें बलदेव के रूप में आये हैं। लक्ष्मण वासुदेव के रूप में और रावण प्रतिवासुदेव के रूप में।

विमलसूरिकृत **'पउमचरियं'** के अनुसार लगभग सभी पात्र जैन धर्म में दीक्षित होते हैं। रावण अनेक जिन मंदिरों का जीर्णोद्धार करता है और यज्ञ में पशुवध पर रोक लगाता है।

मैंने प्राकृत विषय में एम0ए0 किया और विभिन्न सूत्रों से रामकथा का अध्ययन किया। मेरे मन में एक उत्कंठा हुई कि रामकथा का और भी विस्तार से अध्ययन किया जाये। इस विषय की गहराई में डुबकी लगाकर कुछ और अनमोल रत्नों की खोज कर समाज को दूँ। इन्हीं सब बातों से प्रेरित होकर मैंने संस्कृत के प्राचीनतमग्रंथ 'वाल्मीकि रामायण' और जैन साहित्य की प्राचीनतम रामकथा विमलसूरिकृत 'पउमचरियं' का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का मन बनाया। जैन साहित्य में राम को 'पद्म' अर्थात् कमल का फूल कहा गया है। इतनी ऊंची उपाधि से उन्हें सम्बोधित किया गया है। निश्चित ही राम को जैनियों ने भी उचित सम्मान प्रदान किया है। इन विभिन्न क्षेत्रों में राम की व्याप्ति देखकर जैन एवं संस्कृत दोनों रामकथाओं का तुलनात्मक अध्ययन औचित्यपूर्ण जान पड़ा।

Scanned with OKEN Scanner

(ख) शोध की सीमा और विस्तार

भारतीय भाषा ही नहीं विश्व की लगभग समस्त भाषाओं में 'रामकथा' पर अनेक काव्य, महाकाव्य, खंडकाव्य, उपन्यास, कहानी, नाटक आदि लिखे गये हैं। जिस ग्रंथ पर दृष्टि जाती है, वही अपने आप में सम्पूर्ण नजर आता है। चाहे ग्रंथ किसी भी युग में लिखा गया हो लेकिन मूल कथा एक ही है। लगभग सभी विद्वान इस बात पर एक मत हैं कि महाकवि वाल्मीकिकृत रामायण ही आगे रचित ग्रंथों का प्रेरणास्रोत है। तात्कालिक सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था उस युग के ग्रंथों में प्रतिबिम्बित होती है।

एक प्रश्न उठता है कि वाल्मीकि रामायण में जब युद्धकांड के अन्त में महाकवि ने रामायण की प्रशस्ति की बात की है तब फिर 'उत्तरकांड' उसमें कैसे जुड़ गया। सामान्यत: ग्रंथ के अन्त में ही उसकी प्रशस्ति दी जाती है। जब महाकवि ने युद्धकांड के समापन में प्रशस्तिगाथा प्रस्तुत की है, तब स्पष्ट है कि महाकाव्य वहीं समाप्त हो गया। उत्तरकांड देख कर स्पष्ट होता है कि इसे आगे के कवियों ने तात्कालिक सामाजिक व्यवस्था को ध्यान में रखकर बाद में जोड़ा है।

वाल्मीकि रामायण के उत्तरकांड में वर्णित सीता का परित्याग का खंडन विद्वान गुंजेश्वरी प्रसाद भी करते हैं। उन्होंने अपने वैचारिक लेख-'राम ने नहीं किया था सीता का परित्याग' में वाल्मीकि रामायण के उद्धरणों को पाठकों के सामने रखा है। बताया है कि राम के अयोध्या वापस लौटने पर राम ने अपने भाइयों के साथ ग्यारह हजार वर्षों तक कुशलता से शासन किया। अपने शासनकाल में राम ने सौ अश्वमेध यज्ञ किये। सनातन धर्म में क्या यह सम्भव है कि बिना अर्धांगिनी के अश्वमेध यज्ञ सफल हो? क्योंकि सीता तो वन में थीं। फिर बिना सीता के अश्वमेध यज्ञ कैसे?

अग्निपरीक्षा के बाद जिस सीता के सम्बन्ध में राम ने कहा है-

नेयमर्हति वैकल्व्यं रावणान्त: पुरे सती।
अनन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा।।[3]

अर्थात्- सती-साध्वी देवी रावण के अंत:पुर में रहकर भी व्याकुलता या घबराहट में नहीं रह सकती थीं। यह मुझसे उसी तरह अभिन्न हैं-जैसे सूर्य से उनकी प्रभा। इसके बाद भी राम ने कहा है--

विशुद्धा त्रिषु लोकेषु मैथिली जनकात्मजा।
न विहातुं मया शक्या कीर्तिरात्मवता यथा।।[4]

अर्थात्- 'मिथिलेश कुमारी जानकी तीनों लोकों में परम पवित्र हैं। जैसे मनस्वी पुरुष कीर्ति का त्याग नहीं कर सकता उसी तरह मैं भी इन्हें नहीं छोड़ सकता।''

सीता हरण के बाद वाल्मीकि ने अरण्य कांड के 61 वें सर्ग में छठे श्लोक में कहा है-

सीता रहितोऽहं वै न हि जीवामि लक्ष्मण।
वृतं शोककेन महता सीताहरणजेन माम्।।
परलोके महाराजो नूनं द्रक्ष्यति मे पिता।

(वाल्मीकि रामायण)

अर्थात्- हे लक्ष्मण! सीता से अलग होकर मैं जीवित नहीं रह सकता। सीताहरण जनित महान् शोक ने मुझे चारों ओर से घेर लिया है। निश्चय ही अब परलोक में मेरे पिता महाराज दशरथ मुझे देखेंगे अर्थात् मैं अब जीवित नहीं रहूंगा। सीता के बिना राम ने स्वर्ग को भी सूना कहा था।

इन तथ्यों से लेखक गुंजेश्वरी प्रसाद ने अपने वैचारिक लेख-'राम ने नहीं किया था सीता का परित्याग' में यह प्रमाणित किया है कि सीता का परित्याग राम कैसे कर सकते हैं। उत्तरकांड के ऐसे क्षेपक निश्चय ही मनगढ़ंत हैं- किन्हीं स्वार्थी तत्वों के दिमाग की उपज हैं।[5]

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने अपने एक वैचारिक लेख 'रामायण का हार्द' में उल्लेख किया है--''यदि युद्धकांड की अग्नि परीक्षा के बाद भी, उत्तरकांड में सीता को वन भेजने की बात कही जा सकती है, तो वह घटना तो हमारी स्त्री जाति की नि:शब्द, अन्तहीन यातनाओं का दर्पण बन जाती है। दुख और सुख दोनों ही भगवान की लीलाएं हैं। भगवान ने खुद अपने साथ अपनी दिव्य पत्नी को लिया, जो स्वयं उनकी अपनी ही करुणा का मूर्तिमान रूप है। वे उसे स्त्रियों और पुरुषों के संसार में ले गये, और रामायण में उनके साथ सुख-दुख का नाटक खेला।''[6]

एक ओर वाल्मीकि ने अपने ग्रंथ में रावण द्वारा सीता हरण का वर्णन अपनी दृष्टि में किया है। आगे चलकर सीता राम के सामने इसके लिए खेद भी प्रकट करती हैं।

यदहं गात्रसंस्पर्श गतास्मि विवशा प्रभो।
कामकारो न मे तत्र दैवं तत्रापराध्यति।।[7]

अर्थात्- 'हे प्रभो! रावण के शरीर से जो मेरे शरीर का स्पर्श हो गया है, उसमें मेरी विवशता ही मेरा कारण है। मैंने स्वेच्छा से ऐसा नहीं किया था। इसमें मेरे दुर्भाग्य का दोष है।'

लेकिन कम्बन, वाल्मीकि के वर्णित सीताहरण को स्वीकार नहीं करते। उन्होंने अपनी कम्ब रामायण में प्रस्तुत किया है कि रावण सीता का स्पर्श किये बिना ही उन्हें उस धरती के साथ ही उठा ले जाता है, जिस पर वे खड़ी थीं। कम्बन की यह दृष्टि अनेक विद्वानों ने ग्रहण की है, क्योंकि इससे हमारी भावनाओं को कम चोट पहुंचती है।

किसी निर्दोष स्त्री के लिए यह कोई पाप या लज्जा की बात नहीं है, यदि कोई अधम व्यक्ति उसके साथ ऐसा असभ्य बर्ताव करता है। किन्तु दुर्भाग्यवश हम इस देश में किसी दुष्ट की हिंसा को नारी की पवित्रता पर कलंक का कारण मान लेते हैं। इस गलत धारणा के कारण ही कम्बन ने यहां वाल्मीकि का अनुसरण नहीं किया है। ऐसा लगता है।

भक्तिकाल के युग में तुलसीदास ने सीताहरण का वर्णन रामचरित मानस में अपनी दृष्टि से किया है। तुलसीदास तो भगवान राम को अवतार मानते हैं। उनकी मान्यता है कि रावण द्वारा उठाकर ले जायी गई सीता, वास्तविक सीता नहीं थीं, बल्कि वास्तविक सीता के द्वारा त्यक्त एक प्रत्यक्ष छाया थी। यह कहानी सम्पूर्ण उत्तरभारत में कही जाती है।

Scanned with OKEN Scanner

अग्नि परीक्षा के समय मायारूपिणी सीता ओझल हो जाती हैं और वास्तविक सीता पुन: उद्भूत होकर अग्नि ज्वाला में से लौट आती हैं।

रामकथा की इस छोटी सी घटना को तीन कवियों ने अपनी-अपनी दृष्टि दी है। विद्वान तीनों कवियों की कल्पना को निराधार नहीं मानते। सभी ने तीनों कल्पनाओं को स्वीकृति प्रदान की है। परिस्थिति-काल के अनुसार ऐसी तीन दृष्टियों से विवेचना की गई है।

अध्यात्म रामायण की बाल-लीला पर कृष्ण की बाल-लीला का स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है। आनन्द रामायण, सत्योपाख्यान आदि में राम-सीता की विलास-क्रीड़ाओं का विस्तृत वर्णन मिलता है।

भुशुण्डी रामायण के सम्बन्ध में डा0 भगवती प्रसाद ने अपनी पुस्तक में लिखा है--" रावण द्वारा भेजे गये राक्षस, बाल्यावस्था में ही राम को समाप्त करने का प्रयत्न करते हैं, लेकिन वे मारे जाते हैं। उनके डर से दशरथ राम को गुप्त स्थान में भेज देते हैं। राम का लालन-पालन गोपेन्द्र सुखित और उनकी पत्नी मांगल्या द्वारा होता है। विवाह से पूर्व अयोध्या के प्रमोदवन में देवावतार गोपियों और अपनी पराशक्ति सीता के साथ राम रासलीला करते हैं। मिथिला पहुंचकर एक पक्षी द्वारा राम सीता के पास अपना चित्र भेजते हैं और चित्र देख सीता राम को पाने के लिए उत्कंठित होती हैं। दशरथ के अश्वमेध यज्ञ में विजित राजाओं की सहस्रों कन्याओं को राम स्वीकार करते हैं। चित्रकूट में अनेक गोप-गोपिकाओं के साथ रासलीला का वर्णन है। इस ग्रंथ में सीता के अतिरिक्त 'सहजा' सखी का राम की पत्नी होने का भी उल्लेख है। सीता को इस ग्रंथ में ज्ञानपरक भक्ति और सहजा को प्रेमाभक्ति का प्रतीक कहा गया है।"[8]

रामकथा से संबन्धित एक ग्रंथ है-'हनुमत्संहिता'। इस ग्रंथ में हनुमान-अगस्त्य संवाद के रूप में सरयू तट पर रामलीला तथा जल विहार का वर्णन किया गया है। इस ग्रंथ में वर्णित है कि सीता ने अपने शरीर से 18108 नारियों की सृष्टि की। इनके साथ रास करने के लिए राम भी इतने ही रूप धारण करते हैं।

कश्मीर में 'रामावतारचरित' एक प्रसिद्ध ग्रंथ है। इस ग्रंथ में उल्लेख किया गया है कि अयोध्या, लंका आदि स्थान कश्मीर में ही अवस्थित हैं। इस ग्रंथ में सीता का जन्म मंदोदरी के गर्भ से दिखाया गया है। सीता-त्याग का कारण रावण के चित्र को बताया गया है। वाल्मीकि द्वारा कुश की सृष्टि हुई है। वनवास के समय अहिल्या से भेंट दिखलायी गयी है।

जैन रामकथा में और भी भिन्नता देखने को मिलती है। इस सम्प्रदाय के ग्रंथों में रामायण के लगभग सभी चरित्र जिन-मंदिरों के प्रति श्रद्धानत हैं। तिरेसठ महापुरुषों में राम को आठवां बलदेव, लक्ष्मण को आठवां वासुदेव और रावण को आठवां प्रतिवासुदेव के रूप में चित्रित किया गया है। रावणवध राम द्वारा नहीं दर्शाकर, लक्ष्मण द्वारा दर्शाया गया है। रावण, यज्ञ में पशुबलि पर रोक लगाता है। वह जिन मंदिरों का जीर्णोद्धार करता है। जैन रामायण में वानर-राक्षस को विद्याधर वंश की भिन्न-भिन्न शाखा माना गया है। विमलसूरि कृत 'पउमचरियं' में राम की सीता, प्रभावती, रतिनिभा तथा श्रीदामा जैसी प्रधान पत्नियों के अलावा आठ हजार पत्नियां हैं और लक्ष्मण की सोलह हजार पत्नियां हैं। जैन रामायण में हनुमान बाल ब्रह्मचारी नहीं, बल्कि उनकी सौ पत्नियाँ हैं।

गुणभद्र की रामकथा में राम का जन्म सुबाला के गर्भ से, लक्ष्मण का जन्म कैकेयी के गर्भ से और भरत एवं शत्रुघ्न का जन्म किसी और रानी के गर्भ से हुआ बताया गया है। दशानन मणिमती पर आसक्त होकर उसकी साधना में विघ्न डालता है। उसी क्षण मणिमती प्रण करती है कि वह उसकी पुत्री के रूप में जन्म लेकर उसकी मृत्यु का कारण बनेगी। वही मणिमती मंदोदरी के गर्भ से जन्म लेती है। ज्योतिषी द्वारा भविष्यवाणी की गई कि वही बालिका रावण का नाश करेगी। रावण घबराकर उस अबोध बालिका को मंजूषा में बंदकर दूर छोड़ने का आदेश देता है। मारीच उस मंजूषा को मिथिला की भूमि में गाड़ आता है। हल की नोक से जनक को वह मंजूषा दिखाई पड़ती है और अबोध बालिका के दर्शन होते हैं। वही अबोध बालिका सीता होती है जो दशमुख के नाश का कारण बनती है।

जैन सम्प्रदाय के राम सम्बन्धी ग्रंथ में यह भी देखने को मिलता है कि सीता को विजयराम आदि आठ पुत्र उत्पन्न होते हैं। लक्ष्मण एक असाध्य रोग से मर कर रावण वध के कारण नरक जाते हैं। राम को 395 वर्ष साधना के पश्चात् केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। सीता भी अन्य रानियों के साथ दीक्षित होती हैं।

इन कुछेक रामायणों का अवलोकन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे कवियों ने अपनी दृष्टि से रामायण की सम्पूर्णता बनाये रखी है। किसी भी घटना को असत्य बताना यथेष्ट नहीं होगा। लेखक, कवि, ग्रंथकार अपनी लेखनी से पूर्व प्लॉट को मस्तिष्क में संजो लेता है। लेखन के दौरान उसके सामने तात्कालिक घटनाएं, सामाजिक स्थितियां, राजनीतिक स्थितियां, पारिवारिक स्थितियां, सांस्कृतिक-साम्प्रदायिक स्थितियां आदि उसकी लेखनी को पग-पग पर प्रभावित करती हैं। लेखक-कवि-नाटककार-कहानीकार अपनी कल्पना की उड़ान लेकर अपने प्लॉट को कथासूत्र में पिरोता है। कहा भी गया है--'साहित्य समाज का दर्पण होता है।' किसी भी युग की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व्यवस्था को जानना हो तब उस युग के साहित्य का अध्ययन करें। स्पष्ट झलक मिल जायेगी। सम्भव है जिस युग में वाल्मीकि, कम्बन, विमलसूरि, गुणभद्र, तुलसीदास, स्वयंभू आदि महाकवि रहे हों-उनके द्वारा लिखे गये ग्रंथ, उस युग के साहित्य रहे हों और तात्कालिक समाज के दर्पण रहे हों।

जब मुझे रामकथा विषयक शोध की उत्कंठा हुई तब मुझे और भी पथरीले-कंटीले मार्ग नजर आये। मैं उधेड़ बुन में फंस गया कि कौन से रामायण की कथा को सत्य मानूं-कौन से रामायण की कथा को असत्य मानूं। यह भी चिन्तन करता रहा कि मैं जो शोधकार्य करूँ वह बिल्कुल नूतन हो। अनेक विद्वानों के समक्ष बैठकर रामकथा विषयक शीर्षक को ढूँढ़ता रहा। अनेक विद्वानों से और रामकथा के मर्मज्ञ से मैं मिला। उनसे भिन्न-भिन्न तरह के सुझाव मिले। अन्त में मैं इसी निष्कर्ष पर पहुंचा कि संस्कृत के आदि कवि वाल्मीकि रचित रामायण और जैन साहित्य के आदि कवि विमलसूरि कृत पउमचरियं को अपने सामने रख कर उनका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाये। ये

दोनों रचनाकार अपने-अपने युग के जाने माने व्यक्ति रहे हैं और इनकी रचनाएं भी विख्यात रही हैं एवं प्राचीनतम मानी जाती हैं। इन दोनों महान् ग्रंथों के तुलनात्मक अध्ययन पर शोध कार्य नहीं हुआ है। इसलिए अपने शोध की सीमा मैंने इन्हीं दो ग्रंथों पर निर्धारित की।

अध्ययन की गम्भीरता एवं गवेषणा हेतु सीमा का निर्धारण अनिवार्य था। इस अध्ययन का विस्तार निर्धारित बिन्दुओं की विवेचना हेतु मैंने नौ अध्यायों में किया है। ध्यान रखा है कि इन दोनों रचनाओं के हर बिन्दु को मैं शोधग्रंथ में रखकर चिन्तन-मनन कर सकूं।

(ग) रामकथा के स्रोत

विश्व की अनेक भाषाओं में रामकथा का उल्लेख पाया जाता है। कथा के विस्तार में अनेक भिन्नताएं हैं। लेकिन मूलकथा एक ही है। ऐसी मान्यता है कि संस्कृत के आदि कवि वाल्मीकि ने सर्वप्रथम रामायण की रचना की थी। ठीक उसी तरह जैन धर्म की यह मान्यता है कि विमलसूरि ने सर्वप्रथम रामकथा की सृष्टि महाराष्ट्री प्राकृत में की थी। लगभग सभी प्रदेश अथवा सम्प्रदाय के लोगों ने अपनी-अपनी भाषाओं में रामकथा को अपनाया है। यहाँ हम रामकथा के स्रोत पर विचार करेंगें।

कुछ विद्वान इससे सहमत हैं कि आदि कवि वाल्मीकि के पहले रामकथा-सम्बन्धी आख्यान-काव्य प्रचलित हो चुका था। लेकिन उस साहित्य के अप्राप्य होने से वाल्मीकिकृत रामायण को ही प्राचीनतम उपलब्ध रामकाव्य माना जाता है। यह काव्य अधिक समय तक मौखिक रूप में प्रचलित होने के कारण इसका रूप स्थिर नहीं रह सका और रामकथा के प्रारम्भिक विकास के साथ-साथ इसमें परिवर्तन होता रहा। कुछ विद्वानों की यह धारणा है कि वाल्मीकि ने पहले पहल दो अथवा तीन नितान्त स्वतन्त्र आख्यानों को एक ही कथासूत्र में बांधा और रामकथा की सृष्टि की। ऐसे कुछ विद्वान हैं जिन्होंने इस मत का निरूपण किया है तथा कुछ ने खंडन भी किया है।

डॉ0 वेबर के अनुसार रामकथा का मूल रूप बौद्ध 'दशरथ जातक' में सुरक्षित है। इस कथा में सीता हरण तथा रावण से युद्ध का कोई उल्लेख नहीं है। डॉ. वेबर की मान्यता है कि सीता हरण की कथा का मूल स्रोत सम्भवतः ग्रीक कवि होमर की रचना से लिया गया है। होमर ने अपनी उस ग्रीक कथा में ट्राय के राजकुमार पैरिस द्वारा सुन्दरी हेलेन के हरण का जिक्र किया है। वर्षों के उस युद्ध में ट्राय का ध्वंस हुआ और यूनानी सेना ने रानी हेलेन का उद्धार करके समुद्र की यात्रा की।[9] वीर रस से भरा यह काव्य आज भी प्रचलित है। डॉ0 वेबर का अनुमान है कि इसी कथा से प्रभावित सीताहरण की कथा है।

अगर इस मत को मान लिया जाय तो रामकथा के दो प्रधान मूल स्रोत जान पड़ते हैं- पहला बौद्ध त्रिपिटक का 'दशरथ जातक' और दूसरा नेत्रहीन कवि होमर का काव्य।[10]

दशरथ जातक की रामकथा वाल्मीकि रामकथा का विकृत रूपमात्र है। कई विद्वान

सहमत हो चुके हैं कि दशरथ जातक, रामकथा का एक आधार है। लेकिन होमर के काव्य को रामायण अथवा रामकथा का आधार मानने के लिए डॉ0 वेबर को छोड़कर कोई भी तैयार नहीं है।[11] होमर के काव्य में इस बात की चर्चा है कि यूनानी सैनिक नावों के द्वारा हेलेन के उद्धार के लिए ट्राय नगर पहुंचे थे और लौटे भी नावों के द्वारा ही। लेकिन वाल्मीकि रामायण में वानरों की सेना सेतु बांधकर लंका पहुंचती है। नावों की कोई चर्चा नहीं है। वाल्मीकि और होमर की रचनाओं में दो बातों का साम्य है-स्त्री का हरण तथा धनुष का प्रयोग।

डॉ0 याकोबी भी रामकथा के दो प्रधान आधार मानते हैं। उनके अनुसार रामायण की रामकथा-दो भागों के संयोग से उत्पन्न हुई है। प्रथम भाग अयोध्या की घटनाएं हैं जिनके नायक दशरथ हैं। द्वितीय भाग के लिए वैदिक साहित्य का सहारा लेते हैं। उनके अनुसार वैदिक काल में न तो रामायण थी, और न रामकथा सम्बन्धी कथाएं। कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि वैदिक काल में सीता, कृषि की अधिष्ठात्री देवी थीं। लेकिन इसके सम्बन्ध में कोई कथावस्तु नहीं है।[12]

डॉ0 याकोबी की यह भी धारणा है कि रामायण के प्रधान पात्रों का प्रतिबिम्ब वैदिक साहित्य के देवताओं में मिलता है। राम इन्द्र का एक रूपमात्र है। वैदिक काल के पशुपालन करने वाले आर्यों के देवता इन्द्र कहे जाते थे। यही इन्द्र बाद के कृषकों के लिए परिवर्तित होकर राम बन गये। डॉ0 याकोबी इन्द्र के दो प्रसिद्ध कामों की ओर इशारा करते हैं। इन्द्र ने वृत्रासुर का वध किया था। यह वैदिक साहित्य में आया है (ऋग्वेद-1. 32)। इन्द्र और वृत्र के युद्ध का वृत्तांत राम और रावण के युद्ध के रूप में प्रतिबिम्बित होता है।

इन्द्र का दूसरा काम पणियों द्वारा चुराई गई गायों की पुनः प्राप्ति है (ऋग्वेद 2. 12)। वैदिक काल में पशुपालन करने वाले आर्यों के लिए गायों का बड़ा महत्त्व था। फलस्वरूप गायों का हरण, सीताहरण में परिवर्तित हुआ।

डॉ0 वेबर तथा डॉ0 याकोबी की भांति दिनेश चन्द्र सेन भी रामकथा के दो प्रधान मूल स्रोत मानते हैं। एक तो दशरथ जातक है जो मूलतः उत्तर भारत में प्रचलित था। दूसरा रावण सम्बन्धी आख्यान है जो मूलतः दक्षिण में प्रचलित था। एक तीसरा लेकिन गौण आधार हनुमान सम्बन्धी सामग्री है जिसमें प्राचीन वानर पूजा का अवशेष देखा जा सकता है।[13]

जैन रामकथा में राक्षस वंश तथा वानर वंश का विस्तृत विवरण मिलता है। इससे लगता है कि कुछ क्षेत्रों में राम की अपेक्षा राक्षस तथा वानर अधिक लोकप्रिय थे। दूसरी शताब्दी ई0 अथवा चौथी शताब्दी ई0 में रचित, बौद्धग्रंथ 'लंकावतार सूत्र' में रावण तथा बुद्ध का धर्म के विषय में संवाद उद्धृत है। लेकिन इस ग्रंथ में कहीं भी रावण-राम युद्ध की बात नहीं आई है। इससे लगता है कि लंका का राजा रावण रामकथा की उत्पत्ति के पहले प्रसिद्ध हो चुका था। दिनेश चन्द्र सेन का यह भी तर्क है कि आदर्श बौद्ध विद्वान धर्मकीर्ति, राजा रावण को दोषारोपण से बचाने का प्रयास करता है। यह भी भ्रामक है

Scanned with OKEN Scanner

कि जैनियों के अनुसार रावण जैन धर्मावलम्बी था, और बौद्धों के अनुसार बौद्ध था। डी0टी0 सुजुकी का अनुमान है कि रामकथा की लोकप्रियता के कारण 'लंकावतार सूत्र' का सम्बन्ध इससे जोड़ा गया है। लंकावतार का अर्थ ही है बुद्ध का लंका में अवतार।

यह भी आश्चर्य की बात है कि दो प्राचीन बौद्ध ग्रंथ-दीपवंश (चौथी शताब्दी ई0) और महावंश (पांचवीं श0 ई0) में राजा रावण का उल्लेख कहीं नहीं है, जबकि यह दोनों ग्रंथ सिंहल द्वीप के सबसे प्राचीन ऐतिहासिक काव्य हैं। वैदिक साहित्य में या बौद्ध त्रिपिटक में हनुमान का कहीं उल्लेख नहीं है।

यह भी बड़े आश्चर्य की बात है कि रामकथा के पूर्व रावण अथवा हनुमान आदि के विषय में कोई स्वतन्त्र कथा नहीं मिलती। ऐसा प्रतीत होता है कि रामकथा के कारण ही दशरथ, रावण, हनुमान आदि प्रसिद्धि पा सके।

कुछ विद्वानों की यह भी मान्यता है कि अयोध्याकांड की घटनाएं स्वाभाविक लगती हैं, किन्तु, दण्डकारण्य तथा लंका की घटनाएं अधिकांशतः अलौकिक और काल्पनिक प्रतीत होती हैं।

वैदिक साहित्य में रामकथा के कुछ पात्रों के नाम मिलते हैं। ऋग्वेद में इक्ष्वाकु का एक बार उल्लेख हुआ है (10, 60, 4)। अथर्ववेद में भी एक बार इक्ष्वाकु का नाम आया है। वैदिक साहित्य में दशरथ का एक बार उल्लेख हुआ है। ऋग्वेद में अन्य राजाओं के साथ-साथ दशरथ की भी प्रशंसा की गई है-

चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणाः सहस्त्रस्यांग्रे श्रेणिं नयन्ति

अर्थात् 'दशरथ के चालीस भूरे रंग के घोड़े, एक हजार घोड़ों के दल का नेतृत्व ले रहे हैं।'

वैदिक साहित्य में अनेक राम नामक व्यक्तियों का परिचय मिलता है। तैत्तिरीय आरण्यक (5, 8, 13) में एक स्थल पर 'राम' शब्द का प्रयोग, पुत्र के अर्थ में हुआ है। जनक का पहला परिचय कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय ब्राह्मण में मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में जनक वैदेह का चार भिन्न प्रसंगों में उल्लेख हुआ है। वैदिक साहित्य से दो भिन्न सीताओं की सूचना मिलती है। पहली सीता कृषि की एक देवी है और तैत्तिरीय ब्राह्मण से दूसरी सीता सूर्य की पुत्री है।

ऋग्वेद में इक्ष्वाकु, दशरथ और राम इन तीनों का एक-एक बार उल्लेख हुआ है। इससे इतनी ही जानकारी मिलती है कि ये प्रभावशाली ऐतिहासिक राजा थे। आपस में इनका कोई सम्बन्ध था या नहीं-इसका कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं है। इस तरह वैदिक साहित्य में रामायण की कथावस्तु का कोई विशेष निर्देश नहीं मिलता है। इससे एक ही अर्थ निकलता है कि इस तरह के नाम रामायण के पहले प्राचीन काल में भी प्रचलित थे।

वाल्मीकि रामायण

वाल्मीकिकृत रामायण के तीन पाठ मिलते हैं- पहला-दाक्षिणात्य पाठ, दूसरा गौडीय पाठ और तीसरा पश्मिोत्तरीय पाठ। प्रत्येक पाठ में बहुत से श्लोक ऐसे मिलते हैं

जो अन्य पाठों में नहीं पाये जाते हैं। ऐसा लगता है कि वाल्मीकिकृत रामायण प्रारम्भ में मौखिक रूप से प्रचलित थी और बहुत बाद में लिखित रूप धारण कर सकी।

उत्तरकांड की रचना बहुत बाद में हुई। इस कांड में तीनों पाठों में कोई महत्त्वपूर्ण अन्तर नहीं मिलता। केवल दाक्षिणात्य पाठ में सीता-त्याग का कारण भृगु द्वारा विष्णु को शाप देना बताया जाता है।

रामायण के रचनाकाल के विषय में लिखते हुए विद्वान प्रायः आदि रामायण तथा प्रचलित वाल्मीकि रामायण का अलग-अलग रचनाकाल निर्धारित करते हैं। एच0 याकोबी पहली अथवा दूसरी शताब्दी ई0 को प्रचलित रामायण का काल मानते हैं।[14] एम0 विन्टरनिट्ज दूसरी शताब्दी ई0 अधिक समीचीन समझते हैं।[15]

सी0वी0 वैद्य इसका काल दूसरी शताब्दी ई0 पूर्व तथा दूसरी शताब्दी के बीच में मानते हैं।[16] लेकिन वह पहली शताब्दी ई0 पू0 अधिक सम्भव समझते हैं।

कालिदास के समय में रामायण ने अपना प्रचलित रूप धारण कर लिया था। फिर भी आदि रामायण और प्रचलित रामायण में काफी भिन्नता है, क्योंकि कई शताब्दियों का अन्तराल है।

प्रामाणिक वाल्मीकिकृत रामायण में बौद्धधर्म की ओर निर्देश नहीं मिलता है। अतः इसकी रचना बुद्ध के पूर्व ही हो गई होगी। यह मोनियर विलियम्स तथा सी0 वी0 वैद्य का प्रधान तर्क है।[17]

डॉ0 याकोबी रामायण का रचनाकाल पांचवी शताब्दी ई0 से पूर्व अथवा छठी और आठवीं शताब्दी ई0 के बीच में मानते हैं।[18] इस तरह वाल्मीकि रामायण की रचना के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न विद्वानों के भिन्न-भिन्न विचार हैं।

महाभारत की रामकथा

रामायण में न तो महाभारत के किसी वीर का चित्रण है, न महाभारत की कोई घटना आई है। लेकिन महाभारत में न केवल रामकथा का, वरन् वाल्मीकिकृत रामायण का भी उल्लेख पाया जाता है। इससे स्पष्ट है कि रामायण की रचना पहले हुई और महाभारत की रचना बाद में हुई।

महाभारत में रामकथा का चार स्थलों पर वर्णन है। रामोपाख्यान इनमें सबसे विस्तृत और महत्त्वपूर्ण है। रामोपाख्यान में जब युधिष्ठिर अपने दुर्भाग्य पर शोक प्रकट कर रहे हैं तब मार्कण्डेय, राम का उदाहरण देकर युधिष्ठिर को सान्त्वना देने का प्रयत्न करते हैं। इस आख्यान में राम तथा उनके भाइयों का जन्म, कैकेयी का वर, राम का वन गमन, सुग्रीव से मैत्री, हनुमान की लंका यात्रा, लंका पर आक्रमण, राम का राज्याभिषेक, आदि का वर्णन है। इसके अलावा द्रोण पर्व, शांति पर्व, अरण्यक पर्व आदि में भी रामकथा का वर्णन है।

बौद्ध रामकथा

रामकथा जातक साहित्य में मिलती है। जातक में महात्मा बुद्ध अपने पूर्व जन्म की कथा कहते हैं। इनमें तीन जातक-रामकथा-सम्बन्धी है। 'दशरथ जातक' सबसे अधिक प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण है।

Scanned with OKEN Scanner

महात्मा बुद्ध ने यह जातककथा, अनाथपिंडिक के जेतवन आराम में कही थी। प्रसंग था कि किसी गृहस्थ ने अपने पिता की मृत्यु के शोक में अपना सारा कर्त्तव्य छोड़ दिया। भगवान बुद्ध उसे उपदेश देते हैं कि राम ने दशरथ की मृत्यु के उपरान्त बड़ी सूझ-बूझ से काम लिया था। दशरथजातक में यह बताया गया है कि वाराणसी के राजा दशरथ की तीन रानियां थीं। उनमें बड़ी रानी से दो पुत्र-राम पंडित और लक्खन तथा एक पुत्री, सीता देवी थीं। बड़ी रानी के मरने पर दूसरी रानी ज्येष्ठा होकर आई। उसका पुत्र भरत कुमार कहलाया। बाद में छोटी रानी के हठ पर दोनों पुत्रों और पुत्री को राजा ने बारह वर्षों के लिए वन भेज दिया। इस बीच पुत्र वियोग में दशरथ की मृत्यु नौवें वर्ष में ही हो गई। भरत के कहने पर भी राम वन से नौवें वर्ष में वापस नहीं लौटते हैं। बारह वर्ष के बाद राम वाराणसी लौटते हैं। अपनी बहन सीता से विवाह करते हैं और सोलह सहस्र वर्ष धर्मपूर्वक शासन करने के बाद वे स्वर्ग चले जाते हैं। इस ग्रंथ में राम के 16000 वर्ष तक शासन करने के विषय में एक गाथा उद्धृत है। महात्मा बुद्ध जातक का सामन्जस्य इसी तरह बैठाते हैं। शुद्धोदन महाराज दशरथ थे, महामाया राम की माता थीं, यशोधरा सीता थीं, आनन्द भरत थे और वे स्वयं राम पण्डित थे।

चीनी भाषा में 'अनामकं जातक' का अनुवाद मिलता है। यह रचना तीसरी शताब्दी में चीनी भाषा में अनूदित है। इसमें राम सीता का वनवास, सीताहरण, सेतुबन्ध, सीता की अग्निपरीक्षा आदि प्रसंग हैं। एक महत्त्वपूर्ण अन्तर यह है कि विमाता के कारण राम का वनवास नहीं होता है। वे स्वेच्छा से अपना राज्य छोड़ देते हैं। बालि मारा नहीं जाता है, बल्कि भाग जाता है।[19]

ऐसा लगता है कि आगे चलकर बौद्धों में रामकथा की लोकप्रियता घटने लगी। 'लंकावतार सूत्र' में रावण और बुद्ध का धर्म-विषयक संवाद है। परन्तु इसमें रामकथा के निर्देश नहीं हैं। खोतानी रामायण तथा स्याम देश के 'राम जातक' और 'ब्रह्मचक्र' में बुद्ध अपने पूर्व जन्म में राम थे-ऐसा कहा गया है। लेकिन ये रचनाएं बौद्ध साहित्य के अंग नहीं हैं।

जैन रामकथा

बौद्धों की तरह जैनियों ने भी रामकथा अपनाई है। जैन कथा साहित्य बड़ा विस्तृत है। जैनियों ने रामकथा के पात्रों को अपने धर्म में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। राम, पद्म के नाम से विख्यात हैं। तीन प्रमुख पात्र राम (पद्म), लक्ष्मण और रावण जैन धर्मावलम्बी माने जाते हैं। इन महापुरुषों का वर्णन जैन धर्म के अनेक रामायण सम्बन्धी ग्रंथों में आया है। जैसे- विमलसूरि कृत 'पउमचरियं', स्वयम्भू कृत 'पउमचरिउ', जिनसेन कृत आदि पुराण, गुणभद्र कृत उत्तर पुराण, संघदासकृत वसुदेवहिन्डी, रविसेनकृत पद्मपुराण, हरिसेनकृत वृहत कथाकोश, हेमचन्दकृत त्रिषष्ठि शलाका पुरुषचरित, देवविजयगणिनकृत रामचरित आदि।

त्रिषष्ठि शलाकापुरुष में 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 वासुदेव और 9 प्रतिवासुदेव होते हैं। बलदेव, वासुदेव और प्रतिवासुदेव तीनों सदैव समकालीन रहते हैं। राम, लक्ष्मण और रावण क्रमशः आठवें बलदेव, वासुदेव और प्रतिवासुदेव माने जाते हैं।[20]

नौ वासुदेवों में लक्ष्मण और कृष्ण विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं। प्रतिवासुदेव सदैव वासुदेव का विरोध करते हैं तथा सदैव वासुदेव के चक्र से मारे जाते हैं-जैसे रावण और जरासंध।

जैन रामकथा की एक दूसरी विशेषता यह है कि इसमें वानर और राक्षस दोनों विद्याधर वंश की भिन्न-भिन्न शाखाएं हैं।[21] विद्याधरों की उत्पत्ति जैन ग्रंथों के अनुसार इस प्रकार है:-

श्री ऋषभ ने तपस्या करने के उद्देश्य से अपने सौ पुत्रों में से भरत को अपना राज्य सौंपा था और दीक्षा ली थी। बाद में नमि और विनमि को विविध विद्याएं मिलीं तथा विन्ध्य प्रदेश में अपना राज्य स्थापित करने का परामर्श दिया गया।

'पउमचरियं' के अनुसार ये दो राजकुमार विद्याधरों के पूर्वज हैं। जैनियों के अनुसार विद्याधर मनुष्य ही माने जाते हैं। चूंकि उन्होंने अनेक विद्याएं सिद्ध की थीं इससे उनका नाम विद्याधर पड़ा। वानरवंशी विद्याधरों ने अपनी ध्वजाओं पर वानरों के चिह्न अपनाये थे इसलिए वे वानर कहलाए।

जैन रामकथा की एक अन्य विशेषता यह है कि उसमें प्रारम्भ से ही उन लौकिक ग्रंथों का उल्लेख मिलता है जिनमें राम का शिकार करना, रावण आदि का मांसाहारी होना, कुम्भकर्ण का छै महीने तक सोना, रावण के राक्षस तथा सुग्रीव के वानर होने आदि की कथाएं पाई जाती हैं। इससे पता चलता है कि जैन रामकथा, वाल्मीकि रामायण के बाद उत्पन्न हुई।

जैन रामकथा के दो भिन्न रूप प्रचलित हैं-पहला-श्वेताम्बर सम्प्रदाय में केवल विमलसूरि की रामकथा है। लेकिन दिगम्बर सम्प्रदाय में इसके दो रूप मिलते हैं-यानी विमलसूरि तथा गुणभद्र दोनों की रामकथा है। लेकिन विमलसूरि की परम्परा को अधिक महत्त्व मिला है।

विमलसूरि की कथा तथा वाल्मीकि रामायण की तुलना करने पर मुख्य कथावस्तु में कोई महत्त्वपूर्ण अन्तर नहीं है। विमलसूरि ने राम को पउम अर्थात् पद्म कहा है। इसलिए अपनी रचना का नाम 'पउमचरियं' अर्थात् पद्मचरित रखा है।

रामकथा साहित्य में अवतारवाद बड़े व्यापक रूप से आया है। इस अवतारवाद के कारण भक्तिभावना भी विकसित होने लगी। इस भक्तिभाव का बीजारोपण वेदों में भी दृष्टिगोचर होता है। भागवत धर्म में यह बीज पल्लवित हुआ। त्रेता युग में राम और द्वापर में कृष्ण का अवतार भक्ति की ओर संकेत करता है।[22] लेकिन प्राचीन राम साहित्य में कहीं भी रामभक्ति का निरूपण नहीं मिलता। यह रामभक्ति तथा रामपूजा बहुत समय बाद की घटना है।

अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण और अद्भुत रामायण में रामकथा को भक्ति के सांचे में ढालने का प्रयत्न किया गया है।

अध्यात्म रामायण

अध्यात्म रामायण की रामानन्द सम्प्रदाय में बहुत प्रतिष्ठा है और इसका प्रभाव आनन्द रामायण, रामचरितमानस तथा एकनाथ के मराठी रामायण. आदि पर प्रत्यक्ष है।

Scanned with OKEN Scanner

सोलहवीं शताब्दी ई0 के एकनाथ ने अध्यात्म रामायण को आधुनिक रचना माना है। संभवतः इसकी रचना 14वीं-15वीं शताब्दी में हुई हो। विद्वानों का मत है कि इस ग्रंथ के रचयिता रामानन्द ही हों।[23] रामभक्ति के विकास में इस ग्रंथ का अधिक महत्त्व है। इसका मुख्य उद्देश्य है-वेदान्त दर्शन के आधार पर रामभक्ति का प्रतिपादन। समस्त रचना पार्वती-शंकर संवाद के रूप में है। नारद ने ब्रह्मा से इस संवाद को सुना था। इसमें युवराज-अभिषेक के पूर्व राम-नारद संवाद है तथा मंथरा में सरस्वती का प्रवेश दिखाया गया है। मायावती सीता के अपहरण का वृत्तान्त भी है। लक्ष्मण द्वारा बारह वर्ष तक उपवास की बात आई है। राम द्वारा सेतुबन्ध के पूर्व शिवलिंग की स्थापना की चर्चा है। रावण के नाभि देश में स्थित अमृत का उल्लेख है। बैकुण्ठ जाने के उद्देश्य से रावण द्वारा सीता-हरण का उल्लेख है।

अद्भुत रामायण

इस ग्रंथ की कथा के अनुसार अम्बरीश की पुत्री 'श्रीमती' को शाप दिया जाता है। वही जानकी के रूप में जन्म लेती है। इस ग्रन्थ में सीता के अवतार के कारण के विषय में एक नई कथा दी गई है। इसके अनुसार नारद ने स्वर्ग में लक्ष्मी को शाप दिया था। इसके फलस्वरूप लक्ष्मी, मंदोदरी की पुत्री बनकर जन्मी। इसके अन्तिम भाग में सहस्रमुख रावण के वध की कथा है। यह रावण पुष्कर द्वीप का राजा था। इसके वध के निमित्त राम आदि वीर, पुष्कर गये थे। उस समय तक दशमुख रावण का वध हो चुका था। यह सुनकर सहस्रमुख रावण ने राम से युद्ध छेड़ दिया और राम समेत सभी वीरों को समाप्त कर दिया। जब सीता ने यह दुखद समाचार सुना तब उसने काली का रूप धारण कर, सहस्रमुख रावण का वध किया और फिर क्रोधावेश में वह संसार का नाश करने लगीं। ब्रह्मा ने राम को जीवित किया। राम ने एक सौ आठ नामों से देवी की वंदना की। तब धीरे-धीरे सीता अपने रूप में वापस आई। सभी लोग अयोध्या लौट गये।

आनन्द रामायण

आनन्द रामायण[24] की रचना अध्यात्म रामायण के बाद तथा एकनाथ (16वीं श0ई0) के पूर्व हुई थी। इसमें बारह हजार दो सौ बावन श्लोक हैं। इसमें शिव-पार्वती संवाद का वर्णन है। आनन्द रामायण में निम्नलिखित बातें आई हैं- रावण द्वारा कौशल्या हरण तथा दशरथ-कौशल्या विवाह, देव-दानव युद्ध में कैकेयी की वर प्राप्ति, श्रवण कुमार वध। सीता स्वयंवर में रावण की उपस्थिति। सीता की जन्म कथा। रावण का शिव से आत्मलिंग तथा पार्वती को प्राप्त करना। दोनों को खो बैठना। ऐरावण तथा मैरावण का राम लक्ष्मण को पाताल ले जाना। हनुमान द्वारा उनकी मुक्ति। सुलोचना की कथा। मुक्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से रावण द्वारा सीता हरण का उल्लेख।

इन रामायणों के अलावा हरिवंश में भी संक्षिप्त रामचरित मिलता है। वनवास से लेकर रावणवध तक की मुख्य घटनाओं का इसमें वर्णन है। इसमें दशरथ के यज्ञ का अथवा अयोनिजा सीता का कहीं उल्लेख नहीं है।[25] हरिवंश के दो स्थलों पर वाल्मीकि के काव्य का निर्देश मिलता है।

डॉ0 राजेन्द्र हाजरा की पुस्तक[26] तथा उनके अन्य लेखों के आधार पर प्राचीन महापुराण इस प्रकार हैं-मार्कण्डेय, ब्रह्माण्ड, विष्णु, वायु, मत्स्य, भागवत तथा कूर्म पुराण।

छठी अथवा सातवीं शताब्दी ई0 में रचित भागवत पुराण के रामचरित में सीता, लक्ष्मी का अवतार मानी गई है। राम ही शूर्पणखा को वीरूपित करते हैं तथा धोबी के कारण सीता त्याग का वर्णन आया है। इसमें यह बात भी आई है कि समुद्र, राम को देखकर उन्हें तुरत मार्ग दे देता है।

कूर्म पुराण में राक्षस वंश का वर्णन है। रामचरित का वर्णन है। सीता को जनक की पुत्री माना गया है। रावण युद्ध के बाद राम ने शिवलिंग की स्थापना की थी।

इन रामायणों और पुराणों के अलावा भारतीय साहित्य की भिन्न-भिन्न भाषाओं में अनेक ऐसे ग्रंथ हैं जिनमें किसी न किसी रूप में राम, सीता और रावण का वर्णन आया है।

रावणवहो अथवा सेतुबन्ध

महाराष्ट्री प्राकृत में लिखित 'रावणवहो'[27] एक प्रसिद्ध रचना है। इसका रचनाकाल प्रायः छठी शताब्दी ई0 माना जाता है। इसके रचनाकार राजा प्रवरसेन थे या उनके दरबार के कोई अन्य कवि थे। यह ग्रंथ 15 सर्गों में है, और इसमें वाल्मीकि कृत युद्धकांड की कथावस्तु अलंकृत शैली में है। इसका मूल स्रोत सम्भवतः पउमचरियं हैं।

'जानकी हरण' की कथावस्तु वाल्मीकि रामायण के प्रथम छै काण्डों पर आधारित है। इसकी रचना आठ सौ ई0 के लगभग हुई थी। इस रचना की विशेषता रही है कि इसके 20 सर्गों में श्रृंगार रस को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। दशरथ और उनकी पत्नियों के विहार, जलक्रीड़ा, मिथिला में राम विवाह के पश्चात् राम-सीता संभोग वर्णन, आदि इस श्रृंगार रस के उदाहरण हैं।

संस्कृत में कुछ ऐसे नाटक भी हैं जिनमें रामकथा किसी न किसी रूप में आई है। उनमें प्रतिमा नाटक और अभिषेक नाटक भास रचित हैं। भवभूतिकृत महावीरचरित तथा उत्तररामचरित। दिंगनाग रचित कुन्दमाला नाटक, मुरारिकृत अनर्घराघव नाटक, राजशेखर कृत बालरामायण नाटक, जयदेवकृत प्रसन्नराघव नाटक, सोमेश्वरकृत उल्लाघराघव नाटक, विरूपाक्षकृत 'उन्मत्त राघव' नाटक आदि ग्रंथ हैं जिनमें किसी न किसी रूप में रामकथा का वर्णन आया है।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में रामकथा

तमिल

आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी रामकथा अनेक रूपों में आई है। सबसे प्राचीन काव्यग्रंथ तमिल में कम्ब रामायण है। इसकी रचना 12 वीं सदी में हुई थी।[28] इसमें वाल्मीकि कृत रामायण के प्रथम छै खंड की कथावस्तु स्वतन्त्र रूप से वर्णित है। कुछ नये वृत्तान्त भी जोड़े गये हैं। ऐसी भी मान्यता है कि कम्ब के पूर्व ओट्टक्कूतन ने तमिल

Scanned with OKEN Scanner

भाषा में रामायण लिखा था। लेकिन कम्ब के रामायण को सुन कर वे अपनी रामायण नष्ट करने लगे। उसे रोकने के लिए कम्ब उनके पास गये अवश्य लेकिन वे रामायण के उत्तरकांड को ही बचा पाये। यह भी कहा जाता है कि तमिल रामायण का उत्तरकांड कम्ब रचित नहीं है।[29] यह भी कहा जाता है कि कम्ब 'शैव' थे।[30] उसकी रचना ओट्टक्कूतन द्वारा हुई थी।

कथानक की दृष्टि से कम्ब रामायण के कुछ प्रसंग विशेष रूप से उल्लेखनीय है- जैसे- विवाह के पूर्व राम द्वारा सीता को देखना और दोनों के विरह का चित्रण (बालकांड, सर्ग-10), दशरथ की मिथिला यात्रा, सीताहरण में रावण सीता का स्पर्श नहीं करता है, बल्कि भूमि खोद कर, भूमि के भाग के साथ सीता का अपहरण करता है (अरण्य कांड, सर्ग-8), विभीषण द्वारा नष्टसिंहावतार की कथा सुनाना (युद्धकांड) आदि आदि।

कुछ बातों में वाल्मीकि रामायण से यह भिन्न भी है। मेरे विचार से भाषा, अलंकार, उपमा-उपमेय की दृष्टि से वाल्मीकि के बाद इस ग्रंथ का स्थान आता है।

तेलुगु रामायण

तेलुगु भाषा में रंगनाथ कृत चौदहवीं शताब्दी की रचना द्विपद रामायण है। यह रंगनाथ रामायण के नाम से भी प्रसिद्ध है। तेलुगु भाषा में इस रामायण का बड़ा प्रचार है। छै कांडों में वाल्मीकि कृत रामायण के दक्षिणात्य पाठ का यह अनुकरण है। वैसे रंगनाथ रामायण में कहीं कहीं वाल्मीकि रामायण के उदच्य पाठ, पश्चिमोत्तरीय पाठ और गौडीय पाठ के भी अंशों की झलक मिलती रहती है।

वाल्मीकि रामायण से भिन्न प्रसंगों में रंगनाथ रामायण में हैं-मुर्गे की बांग द्वारा इन्द्र को गौतम को भ्रमित करना, सीता स्वयंवर में जनक का कहना कि सीता मुझे हल चलाते हुए मजूषा से मिली, मंथरा के वैर का कारण। तारा की उत्पत्ति आदि। इसमें शूर्पणखा के पुत्र जम्बुमालि की कथा भी आई है। सेतु निर्माण में गिलहरी के योगदान का भी जिक्र है। रावण की नाभि में अमृत का होना भी दिखाया गया है। एक स्थल पर रावण किसी प्रसंग में राम की प्रशंसा भी करता है।

तेलुगु रामायण की रचना में चार महिला रामायणकारों का नाम भी आता है-[31] वे हैं-मधुरवाणी (रघुनाथ रामायण), शीरभु सुभद्रमांवा (सुभद्रा रामायण), चेबरोलु सरस्वती (सरस्वती रामायण) और मोल्ल (मोल्ल रामायण)। तेलुगु भाषा में कुछ और रामायण भी मिलते हैं। जैसे-निर्वचनोत्तर रामायण, भाष्कर रामायण, गोपीनाथ रामायण आदि।

कन्नड़ रामायण

इस भाषा में अभिनव पम्प नागचन्द्र रचित रामचरित पुराणम्[32] का उल्लेख मिलता है। यह रचना कई रामचरित संबन्धित सम्बन्धों का आधार है। लेकिन मूल रूप में इस ग्रंथ का आधार महाराष्ट्री प्राकृत में रचित विमलसूरि की रचना पउमचरियं है। इस ग्रंथ में कुल 2343 पद्य विभिन्न छन्दों में हैं। कवि ने इस ग्रंथ में अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन नहीं कर, अर्थ गौरव, अर्थ की सरसता को अपनी शैली बनायी है। शांत रस इस काव्य का प्रधान रस है।

कवि अभिनव पम्प नागचन्द्र ने अपने पम्प रामायण की कथावस्तु में दक्षिण भारत के मुख्य तीन राज्यों की कथा का वर्णन किया है। 1. राक्षसों का राज्य लंका, 2.कपिध्वज राज्य, किष्किन्धा जिसकी राजधानी थी, 3. विद्याधर राज्य, जिसकी राजधानी रथनूपुर चक्रवालपुर था।[33]

नागचन्द्र का राम, शलाका पुरुषों में आठवां बलभद्र है। वह विष्णु का अवतार नहीं, बल्कि एक मनुष्य है। सीता के वियोग में बिलखता है। आठ हजार युवतियों से शादी करता है (आश्वास 15, 61)। लक्ष्मण की मृत्यु के पश्चात् राम उसके शव को लेकर छै महीने तक विचलित हो घूमता रहता है। इस ग्रंथ में लक्ष्मण अद्भुत शक्तियों का भंडार है। उसकी शादी 18 हजार युवतियों के साथ होती है (आश्वास 15-61)। रावण का वध लक्ष्मण के हाथों होता है।

पम्प रामायण का रावण एक उदात्त पात्र है। वह शरणागत रक्षक है। किसी का वध नहीं करता। जैन मुनियों के प्रति श्रद्धानत है। वह हिंसा विरोधी तथा पाप विरत है। सीताहरण के पश्चात् उसे आत्मग्लानि होती है। सीता के प्रति उसके व्यवहार से ऐसा प्रतीत होता है जैसे सीता उसकी बहन है। वीर होने के कारण वह राम लक्ष्मण को पराजित कर सीता को लौटाना चाहता है, लेकिन ऐसा वह कर नहीं पाता है। रावण एक सहानुभूति का पात्र बना है।

सीता, पतिव्रता शिरोमणि होने के साथ-साथ जिनागम कोविदा और कैवल्य-विरक्ता भी है। उसे क्षत्रिय होने का अभिमान है। रावण और मंदोदरी को वह यथासमय फटकारती भी है।

राम लक्ष्मण की बढ़ती प्रतिष्ठा से भरत ईर्ष्या करता है। राम के राज्याभिषेक की खबर सुनकर भरत वैराग्य की धमकी देता है। बाद में उसे पश्चाताप होता है।

इस ग्रंथ में दशरथ की चार पत्नियां हैं। मंथरा, उर्मिला, परशुराम, विश्वामित्र आदि पात्रों का वर्णन नहीं है। दशरथ पुत्रशोक में नहीं मरता बल्कि भरत का राज्याभिषेक कर जैन दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त करता है। सुग्रीव की छोटी बहन श्रीप्रभा रावण की पत्नी है। हनुमान, रावण का मित्र और सम्बन्धी है। चन्द्रनखी की कन्या अनंगपुष्पा से हनुमान की शादी होती है। हनुमान राम के कारण रावण का शत्रु होता है और अपने विद्याबल से लंका दहन करता है।

इसके अलावा कन्नड़ रामकथा साहित्य में तोरवे रामायण, मैरावण कालग, जैमिनी भारत, दक्षिणात्य पाठ आदि उल्लेखनीय ग्रंथ हैं।

मलयालम रामायण

मलयालम में रामचरितम् चौदहवीं शताब्दी की रचना है। इसके रचनाकार कोई राजा थे।[34] यह वाल्मीकि रामायण का अनुकरण है। इसके अलावा मलयालम भाषा में कण्णश्श रामायण (15वीं शता0), रामायण चम्पू, अध्यात्म रामायण[35] (1575-1650), केरल वर्मा रामायण आदि चर्चित हैं।

Scanned with OKEN Scanner

आदिवासी जातियों में रामकथा

आदिवासी समाज में भी रामकथा किसी न किसी रूप में आई है। संथाली रामायण में यह प्रचलित है कि आम खाकर दशरथ की पत्नियां गर्भवती हुईं।[36] भरत और शत्रुघन कैकयी के पुत्र थे। हनुमान रामवाण के सहारे समुद्र पार करते हैं।

बिहोर आदिवासी जाति की रामकथा में दशरथ की सात पत्नियों की चर्चा है। लक्ष्मण द्वारा रावण का वध होना, रावणवध के बाद लक्ष्मण द्वारा कुम्भकर्ण के वध का उल्लेख है।

मुंडा जाति में एक दंतकथा है कि बगुला राम की सहायता करना अस्वीकार करता है और राम उसे दंडित करते हैं। बेर वृक्ष सीता की साड़ी राम को देता है और गिलहरी सीता गमन का मार्ग बताती है और राम से वरदान पाती है।[37]

कश्मीरी रामायण

कश्मीरी रामायण का नाम रामावतार चरित है। यह रचना 18वीं शताब्दी की है। यह शिव पार्वती संवाद के रूप में प्रस्तुत की गयी है।[38] इस ग्रंथ में दशरथ यज्ञ से लेकर सीता के भूमि प्रवेश एवं राम के स्वर्गारोहण तक की कथा आई है। लेकिन इसके बाद भी काफी परिवर्तन देखने को मिलता है।

कश्मीरी रामायण की विचित्रता यह है कि कश्मीर के क्षेत्र में ही अयोध्या, लंका आदि स्थान की कल्पना की गई है। कश्मीरी रामायण के अनुसार सीता, मंदोदरी की पुत्री है और जब रावण वध के पश्चात् राम, सीता को अग्नि प्रवेश के लिए कहते हैं तब मंदोदरी इसका विरोध करती है। रावण के चित्र के कारण सीता का त्याग किया गया है।

असमिया

असमिया, बंगला तथा उड़िया राम साहित्य की एक विशेषता है कि वह वाल्मीकि के गौडीय पाठ पर आधारित है। बंगला के संत कवि पं0 कृत्तिवास ओझा ने रामायण पांचाली नामक रामायण की रचना 15 वीं शताब्दी में की। 'पांचाली रामायण', कृत्तिवास रामायण के रूप में भी चर्चित है। बंगला के कृतिवास रामायण में दो महत्त्वपूर्ण बातों का उल्लेख है- रावण ने अपने मरण के समय राम को राजनीति का उपदेश दिया है। यह भी उल्लेख है कि विभीषण पुत्र तरणीसेन ने रावण की ओर से राम से युद्ध किया था और राम के द्वारा मारा भी गया था। बंगला में नित्यानन्द आचार्य का आश्चर्य रामायण, कविचन्द्र कृत अंगद रायवार, रघुनन्दन गोस्वामी कृत राम रसायन, चन्द्रावती की रामायण गाथा आदि भी उल्लेखनीय है। माईकेल मदुसूदन दत्त ने मेघनाद वध लब्ध प्रतिष्ठ रामकाव्य लिखा है।

असमिया का राम सम्बन्धी मुख्य ग्रंथ है-माधवकंदली रामायण।[39] 14वीं शताब्दी ई0 में विरचित माधवकंदली कृत रामायण असमिया राम साहित्य का प्राचीनतम ग्रंथ है।[40] यह रामायण तीन लब्ध प्रतिष्ठित कवियों द्वारा लिखा गया। इस ग्रंथ के पांच कांड-अयोध्या कांड से युद्ध कांड तक के कांडों की रचना माधव कंदली द्वारा माने जाते हैं। शंकर देव ने उत्तरकांड की रचना की है। शंकर देव के शिष्य माधवदेव ने आदि कांड लिखा है।

इस ग्रंथ में राम को तारा ने शाप दिया था। शरणागत के पूर्व विभीषण की अपनी माता और भाई कुबेर से भेंट करायी गयी है।[41]

मराठी

मराठी साहित्य की प्राचीनतम रामकथा एकनाथ कृत भावार्थ रामायण है। इसकी रचना 16वीं शताब्दी में हुई थी। इस रामायण के मुख्य आधार हैं वाल्मीकि, अध्यात्म तथा आनन्द रामायण। यह भी कहा जाता है कि इसके कुछ अध्याय उनके शिष्यों ने लिखे हैं

मराठी राम साहित्य में कुछ नाटक भी आते हैं जैसे -सीता स्वयंवर, मोरोपन्त के चौहत्तर रामायण प्रकाशित हैं। कवियों और नाटककारों ने भी मराठी में रामकथा को अपनाया है।

गुजराती

गुजराती में आशाएत कृत रामलीला ना पदो, भालण कृत रामविवाह और राम बालचरित, मंत्री कर्मण कृत सीता हरण, हरिदास कृत सीता विरह, प्रेमानन्द कृत रणयज्ञ आदि चर्चित ग्रंथ हैं जिनमें किसी न किसी रूप में रामकथा का वर्णन किया गया है।

उर्दू-फारसी

उर्दू-फारसी में राम कथा पर अधिक नहीं लिखा गया है। मुंशी जगन्नाथ खुश्तर कृत रामायण खुस्तर, मुंशी शंकर दयाल फतेह कृत रामायण मंजूम, बांके बिहारी लाल **'बहार'** कृत रामायण बहार, सूरज नारायण मेहर कृत रामायण मेहर आदि प्रसिद्ध ग्रंथ हैं।

अकबर के आदेशानुसार अलबदायूनी ने वाल्मीकि रामायण का फारसी भाषा में अनुवाद किया है। गिरधर दास[42] ने, मुल्ला मसीह ने, लाला अमानत राय ने भी किसी न किसी रूप में उर्दू-फारसी में रामायण की कथा लिखी है।

हिन्दी साहित्य में रामकथा

गोस्वामी तुलसीदास की सभी रचनाएं उनके इष्टदेव राम से सम्बन्ध रखती हैं। इनमें रामचरितमानस सबसे अधिक लोकप्रिय ग्रंथ है। इस रचना के द्वारा हिन्दी प्रदेश में राम भक्ति की धारा अबाधगति से प्रवाहित हुई। राम भक्ति के विकास में रामचरितमानस का महत्त्व सबसे अधिक है। तुलसीदास का काल मुगल सम्राट् अकबर के समय का है। इसलिए रामचरितमानस की रचना आज से चार-पांच सौ साल पहले की है।

तुलसीदास, वाल्मीकि रामायण से अधिक प्रभावित थे। रामचरित मानस में सीता त्याग तथा लवकुश की कथा नहीं मिलती। रामचरित मानस पर अध्यात्म रामायण का भी प्रभाव है। रामचरितमानस के निम्नलिखित प्रसंग उल्लेखनीय हैं:-

मिथिला की वाटिका में राम तथा सीता का परस्पर दर्शन, मिथिला में ही परशुराम का तेजोभंग, केवट का वृत्तांत, अहिल्या उद्धार, भरत राम मिलाप के समय चित्रकूट में जनक का आगमन, माया सीता का वृत्तांत, सेतुबन्ध के समय शिव प्रतिष्ठा, हनुमान द्वारा कालनेमि वध तथा भरत से उनकी भेंट, भुशुण्डी चरित आदि। तुलसीदास के अन्य ग्रंथों में भी राम से सम्बन्धित अनेक वर्णन आये हैं। बाद के किसी कवि की रामचरित सम्बन्धी रचना उनके मानस की तुलना में ठहर न सकी।

Scanned with OKEN Scanner

सूरदास ने सूरसागर में वाल्मीकि रामायण के क्रमानुसार रामकथा के मार्मिक स्थलों पर लगभग 150 पद्यों की रचना की है।[43] पृथ्वीराजरासो में भी रामकथा विषयक लगभग 100 छन्द मिलते हैं।[44] ईश्वरदास[45] के भरत मिलाप में अयोध्या कांड की कथावस्तु आई है।

तुलसीदास के समकालीन कवियों में अग्रदास तथा नाभादास की रचनाओं में राम भक्ति आई है। भक्तिकाल की कुछ रचनाएं इस प्रकार हैं- रामचन्द्रिका, हिन्दी मिश्रित पंजाबी आदि रामायण, हृदयराम कृत हनुमन्ननाटक, लालदास कृत अवध विलास, राजस्थानी में सीताराम चौपाई, लक्ष्मणायन अवतार चरित आदि पुस्तकें हैं।

आधुनिक काल में भी रामकथा सम्बन्धी अनेक ग्रंथ हिन्दी में लिखे गये हैं। उल्लेखनीय हैं-रसिक बिहारी का राम रसायन, रघुनाथ दास का विश्राम सागर, रघुराज सिंह का राम स्वयंवर, बाघेली कुंवरि का अवध विलास, बलदेव प्रसाद मिश्र का कोशल किशोर, तथा मैथिली में चंदा झा रामायण।

खड़ी बोली में रामकाव्य अधिक समृद्ध है। उदाहरण के लिए रामचरित उपाध्याय का रामचरित चिन्तामणि, मैथिली शरण गुप्त का साकेत, अयोध्या सिंह उपाध्याय का वैदेही वनवास, बलदेव प्रसाद मिश्र का साकेतसंत, केदार नाम मिश्र का कैकेयी, बाल कृष्ण शर्मा नवीन का उर्मिला।

इन काव्यों में तीन दृष्टियों पर अधिक बल देखने को मिलता है - (1)अवतारवाद को कम महत्त्व देकर मनुष्यमात्र के रूप में चित्रण, (2) भक्ति भावना एवं शृंगारिकता के स्थान पर नवीन सामाजिक और राजनीतिक आदर्श प्रस्तुत करना एवं (3) पूर्ववर्ती रामकाव्य के उपेक्षित पात्रों को नायक-नायिका के रूप में प्रतिष्ठित करना (साकेत में लक्ष्मण-उर्मिला, संकेत संत में भरत-मांडवी, कैकेयी उर्मिला आदि)।

सिक्खों के दसवें गुरु गुरु गोविन्द सिंह ने 1698 ई0 में गोविन्द रामायण के नाम से राम कथा काव्य की रचना की। यह ग्रंथ भी बड़ा प्रसिद्ध हुआ। गोविन्द रामायण में कुल 864 छन्द हैं जिनमें 400 से अधिक छंदों में केवल युद्ध का ही वर्णन है।

हाल के वर्षों में हिन्दी के प्रख्यात नाटककार डॉ0 चतुर्भुज के दो नाटक विभिन्न रामायण की घटनाओं पर आधारित हैं। उनका पहला नाटक है मेघनाद,[46] जिसमें मेघनाद को नायक के रूप में चित्रित किया गया है। इसमें सुलोचना के सती होने की बात आई है। उनका दूसरा नाटक है-रावण।[47] इस नाटक में नाटककार ने रावण को नायक बनाया है। सम्भवतः हिन्दी में यह दोनों नाटक अकेले हैं जहां रामायण के दो विरोधी चरित्रों को अर्थात् मेघनाद और रावण को इस प्रकार चित्रित किया गया है कि आम दर्शक को उनके प्रति सहानुभूति उत्पन्न होती है।

विदेशों में रामकथा

भारतवर्ष के लगभग सभी भागों में रामकथा किसी न किसी रूप में प्रचलित है। लेकिन आश्चर्य तो तब होता है जब रामकथा, विभिन्न रूपों में पहाड़ों, जंगलों और महासागरों को पार कर विदेशों में भी अपनी धाक जमा चुकी हो। रामकथा को विदेशों में भी उनकी भिन्न-भिन्न भाषाओं में पूरा सम्मान मिला है।

तिब्बती

तिब्बती भाषा में अनेक हस्तलिपियाँ मिली हैं जिनमें राम, रावण और सीता का उल्लेख है। ये हस्तलिपियाँ सम्भवतः आठवीं या नौवीं शताब्दी की हैं।[48] एक कथा यह भी है कि दशग्रीव की पटरानी ने एक पुत्री को जन्म दिया। उसके जन्मपत्र से यह ज्ञात हुआ कि वह अपने पिता का नाश करेगी। वह समुद्र में फेंक दी जाती है। बाद में बचने पर वह भारत में कृषकों द्वारा पाली जाती है। इसी के कारण रावण का वध हुआ। इस ग्रंथ में दशरथ की दो पत्नियां हैं। विष्णु ने अवतार लेकर कनिष्ठ रानी के गर्भ से रामन (राम) के रूप में जन्म लिया और तीन दिन बाद ज्येष्ठा के गर्भ से लक्षण (लक्ष्मण) का जन्म हुआ। बाली-सुग्रीव के द्वन्द्व में पहचान के लिए माला नहीं देकर सुग्रीव की पूंछ में दर्पण बांधा गया है। यहां रावण का मर्म स्थान उसका अंगूठा बताया गया है। लव कुश का जन्म सीता त्याग के पूर्व में ही दिखलाया गया है।

खोतानी (पूर्वी तुर्किस्तान) रामायण

खोतानी रामायण की रामकथा 9वीं शताब्दी की मानी जाती है। इसकी कथा बहुत कुछ तिब्बती रामायण से मिलती है। फिर भी तिब्बती तथा खोतानी रामायण एक दूसरे के आधार नहीं हैं। तिब्बती रामायण का उत्तर रामचरित, खोतानी रामायण में नहीं है। खोतानी रामायण के भी कई प्रसंग तिब्बती रामायण में देखने को नहीं मिलता है।[49] खोतानी रामायण पर बौद्ध प्रभाव है। बौद्ध प्रस्तावना से इसका प्रारम्भ होता है। इस ग्रंथ में राम की चिकित्सा के लिए बौद्ध वैद्य जीवक आता है। इस ग्रंथ में रावण का वध नहीं होता है। राम लक्ष्मण के बनवास का कारण गौण है। बहुपतित्व की प्रथा अपनाते हुए राम-लक्ष्मण दोनों का विवाह सीता से होता है।

हिन्देशिया (इन्डोनेशिया) की रामायण

नौवीं शताब्दी के एक शिव मंदिर के शिला चित्रों से जानकारी मिलती है कि हिन्देशिया में रामकथा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। बाद में जावा और मलय में एक विस्तृत राम साहित्य की रचना की गई जिसमें रामकथा के दो रूपों की झलक मिलती है- (1) जावा के प्राचीन रामायण का रूप जो वाल्मीकि कथा के बिल्कुल निकट है, (2) अर्वाचीन रामकथा जो वाल्मीकि से बहुत भिन्न है।

हिन्देशिया की प्राचीनतम राम सम्बन्धित साहित्यिक रचना राम ककविन को माना जाता है जो दसवीं शताब्दी की रचना है। इस ग्रंथ का लेखक अज्ञात है। डच अनुवाद[50] से ज्ञात होता है कि इसका मुख्य आधार भट्टिकाव्य[51] है।

भट्टिकाव्य की अपेक्षा रामायण ककविन का विस्तार वृहत्त है। 22 सर्गों की तुलना में रामकथा का विस्तार 26 सर्गों में किया गया है। युद्ध कांड काफी विस्तृत है। रामायण ककविन में शबरी, राम को कथा सुनाती है कि विष्णु ने वाराहावतार में मेरी माला खाई थी और उनकी मृत्यु हुई थी। फिर मैंने उनकी लाश खाई थी जिससे मेरा मुख काला हो गया। वह राम से अपना मुख पोंछने के लिए अनुरोध करती है ताकि वह शुद्धता प्राप्त कर सके। इन्द्रजीत की सात पत्नियां भी युद्ध में भाग लेकर मारी जाती हैं। इस ग्रंथ

Scanned with OKEN Scanner

के अनुसार सीता को सताने वाली 300 राक्षसियां प्रतिनियुक्त थीं लेकिन त्रिजटा ही सीता की पक्षधर रही और वह इस ग्रंथ की महत्त्वपूर्ण पात्र रही है।

हिन्देशिया में रामकथा का एक अर्वाचीन रूप भी प्रचलित है जो काफी ज्यादा लोकप्रिय है। इसी के आधार पर सुमात्रा एवं जावा में राम सम्बन्धी नाटकों का अभिनय होता है। रामकथा का यह अर्वाचीन रूप हिन्देशिया से हिन्दचीन, स्याम और ब्रह्म देश तक फैला है।[52]

हिन्दचीन

सातवीं शताब्दी के एक शिलालेख से जानकारी मिलती है कि हिन्दचीन देश में वाल्मीकि रामायण प्रचलित हो चुकी थी। यहां एक वाल्मीकि मंदिर है जिसमें वाल्मीकि की मूर्ति मिली है। यहां के एक शिलालेख में कुछ पंक्तियां उद्धृत हैं जिनसे ज्ञात होता है कि वाल्मीकि को विष्णु का अवतार माना गया है।[53]

यस्य शोकात् समुत्पन्नं श्लोकं ब्रह्माभिपूज (ति)
विष्णोः पुंसः पुराणस्य मानुषस्यातरूपिणः॥

अनाम में संक्षिप्त रामकथा का प्रचार अठारहवीं शताब्दी में देखने को मिलता है। इसकी कथा वाल्मीकि से थोड़ी भिन्न है। इसमें दर्शाया गया है कि अनाम के दक्षिण में दशानन का राज्य था और अनाम के उत्तरी भाग में दशरथ का राज्य था। रावण ने दशरथ के राज्य पर आक्रमण कर सीता का हरण किया था।[54]

खमेर साहित्य की अमर कीर्ति, रामकीर्ति को माना जाता है। इसकी प्राप्त हस्तलिपियां 17 वीं शताब्दी का अनुमान लगाया जाता है जो अपूर्ण रामकथा है। इस ग्रंथ का फ्रेंच अनुवाद भी हुआ है जिससे ज्ञात होता है कि इस ग्रंथ का लेखक कोई धार्मिक बौद्ध है। बौद्ध शब्दावली का प्रयोग हर जगह देखने को मिलता है।

स्याम देश (थाईलैंड)

स्याम देश में 13 वीं शताब्दी तक रामकथा का व्यापक प्रचार प्रसार देखने को मिलता है। रत्न कोबिन्द्र युग (लगभग 1781 ई0) में रामकथा पर स्यामी भाषा में एक काव्य लिखा गया जो स्यामी साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसका श्रेय चक्री वंश के प्रथम सम्राट्, प्रथम राम को जाता है। इनके पुत्र, द्वितीय राम ने इसे नाट्य रूप दिया। विद्वानों का मत है चूंकि रामकथा स्याम देश में कई मार्गों से आई इसलिए पात्रों के नामों में परिवर्तन है।[55]

इस देश में रामकथा 'रामकियेन' अर्थात् रामकीर्ति के नाम से विख्यात है। ग्रंथ की हस्तलिपियां 17 वीं शताब्दी की मानी जाती हैं। इस ग्रंथ में नारायण को ईश्वर अर्थात् शिव से नीचे स्थान पर माना गया है। लंका का पूर्व नाम 'रंगका' बताया गया है। दशकंठ (रावण) की पत्नी मंडो (मंदोदरी) अमृत बनाने की कला जानती है जिससे युद्ध में मृत राक्षस जी उठते हैं।

18 वीं, 19वीं शताब्दी के राम सम्बन्धी चर्चित ग्रंथ रहे हैं थोनबुरी, फुत्तायोत्फा तथा फुत्तालेत्ला आदि। रामकियेन का संक्षिप्त अंग्रेजी अनुवाद 45 अध्यायों में विभक्त किया गया है।[56]

'रामकियेन' की सभी घटनाएं स्याम देश में ही घटी हैं और इसके पात्र स्यामी देशवासी हैं। इस ग्रंथ में हनुमान, अंजना एवं शिव के पुत्र हैं। विभीषण-मंदोदरी के विवाह का उल्लेख है। 'रामकियेन' के आधार पर डॉ0 सत्यव्रत शास्त्री का 'रामकीर्तिमहाकाव्यम्' संस्कृत भाषा में लिखित है जिसका पद्यानुवाद (हिन्दी) डा0 मिथिलेश कुमारी मिश्र कृत पच्चीस सर्गों में उपलब्ध है।

कुछ ऐसे भी उल्लेख स्याम देश के रामायण में देखने को मिलते हैं जो किसी दूसरे देश की रामायण में नहीं हैं। जैसे- सेतुबन्ध से पूर्व रावण का तपस्वी वेश में जाकर राम से युद्ध टालने का अनुरोध करना, विभीषण पुत्री बेंजकाया का मृत सीता के रूप में नदी में बहना, ब्रह्मा द्वारा सीता लौटाने की आज्ञा ठुकराने के कारण ब्रह्मा द्वारा रावण को शाप देना, हनुमान की अनेक प्रेमलीलाएं करना जिनमें बेंजकाया, नागकन्या सुवर्णमच्छा, मंदोदरी जैसी नारियों का उल्लेख है।[57] थाई देश के रामायण साहित्य में 'रामायण' शब्द का कहीं उल्लेख नहीं मिलता है।

सोलहवीं शताब्दी में लाओ भाषा में 'रामजातक' नामक ग्रंथ की जानकारी मिलती है।[58] इस ग्रंथ में राम और रावण चचेरे भाई हैं। राम के एक ही भाई लक्ष्मण हैं और एक बहन शांता है जिसका रावण अपहरण करता है। सीता खोज के लिए राम, वानर रूप धारण कर अंजना से हनुमान को उत्पन्न करते हैं। राम का बाली की विधवा पत्नी से विवाह कर, अंगद का पिता बनना दिखलाया गया है। विभीषण, रावण की विधवा पत्नी शांता से विवाह करते हैं। इस रामजातक के अन्त में राम-बुद्ध, रावण-देवदत्त, दशरथ-शुद्धोदन, लक्ष्मण-आनन्द और सीता-उपलवण्णा (भिक्षुणी) बताया गया है। इसी तरह 'पालक-पालाम' शीर्षक ग्रंथ में ब्रह्मा को रावण के अवतार के रूप में, बोधिसत्व को राम और लक्ष्मण के रूप में अवतरित माना गया है। इसके अलावा एच0 देदिए ने तीन और राम विषयक ग्रंथ की जानकारी दी है- तुआलाफी, लंकानीय और पोम्मचका।[59]

बर्मा

बर्मा की रामकथा काफी प्राचीन नहीं है।[60] ऐसा कहा जाता है कि बर्मा के एक राजा ने स्याम की राजधानी अयुतिया (अयोध्या) पर 1767 ई0 में आक्रमण कर नष्ट कर दिया था और जेल के काफी बन्दियों को अपने साथ लेकर बर्मा आया था। अपने जीविकोपार्जन हेतु ये आजाद कैदी स्याम की रामकथा का प्रदर्शन अभिनय के माध्यम से बर्मा में करते थे। इसी रामकथा के आधार पर लिखा गया महत्त्वपूर्ण काव्य 'राम यागन' है जिसकी रचना यू तो ने लगभग 1800 ई0 में की।

स्याम देश की रामकथा पर बर्मा की रामकथा आधारित होने के बाद भी यहां की कथाओं में मौलिकता दृष्टिगत होती है। यहां सीता हरण का अभिनय काफी लोकप्रिय है। शूर्पणखा ही मृग का रूप धारण कर राम को दूर ले जाती है। राम की सहायता के लिए लक्ष्मण का तीन लकीर खींच कर जाने का दृश्य भारतीय रामकथा की तरह ही है।

पाश्चात्य रामकथा वृत्तान्त

पन्द्रहवीं शताब्दी से विदेशी यायावरों का भारत आगमन समय-समय पर होता रहा है। भारतीय धर्म-संस्कृति-कला-दर्शन-साहित्य का काफी प्रभाव इन विदेशी यायावरों

Scanned with OKEN Scanner

पर पड़ा है। लेकिन सबसे प्रमुखता से ये यायावर रामकथा से आकर्षित हुए। लगभग सभी ने अपने यात्रा वृत्तान्त में रामकथा का वर्णन अवश्य किया है। कथानक का आधार वाल्मीकि रामायण ही है-लेकिन इसके बाद भी कथानक को इन विद्वानों ने अपने ढंग से विस्तार किया है। कुछ विद्वानों की चर्चा इस ग्रंथ में करना लाभप्रद होगा।

		जेसुइट मिशनरी : लिब्रा डा सैटा
जे0 फिनिचियो	1609 ई0	डच पादरी : दि ओपेन दौरे
ए0 रोजेरियुस	17वीं श0ई0	डच: ऑफगोर्डेरय डर ओस्ट इण्डिशे, हाइडेनन
पी0 बलडेयुस	17वीं श0ई0	स्पैनिश : असिया पोर्तुगेसा
डे फ़रिया	स्पैनिश	फ्रेंच : यात्रा वृत्तांत
जे0बी0 टार्वानियें	17वीं श0ई0	: मिथोलॉजी डेस इण्डू
डे पोलिये	18 वीं0 श0	: हिन्दू मैनर्स,कस्टम्स एण्ड सेरेमोनिस
जे0ए0 दुब्बा	19वीं श0ई0	: स्टोरिया डो मोगोर
एच0 मनुच्ची	(1653-1708)	

संदर्भ-सूची

1. 'भारती', भारती पत्रिका, 19 अप्रैल 1964 ई0।
2. 'भारती पत्रिका', रामनवमी अंक (19 अप्रैल, 1964) भारतीय विद्या भवन, चौपाटी रोड, बम्बई-7
3. वा0रा0,भाग-2: 6/118/19, पृ. 564
4. वा0रा0,भाग-2 : 6/118/20, पृ. 564
5. गुंजेश्वरी प्रसाद : 'राम ने नहीं किया था सीता का परित्याग' : कादम्बिनी : अप्रैल 2006 ई0, पृ. 39
6. भारती' पत्रिका, बम्बई, (रामनवमी अंक) : 19 अप्रैल 1964 ई0।
7. वा0रा0, भाग-2, 6/116/8, पृ. 559
8. डा0 भगवती प्रसाद : 'राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय'
9. ए0 वेबर : ऑन दि रामायण, पृ. 11
10. (क) ग्रीस पुराण कथा कोश : कमल नसीम, (हिन्दी अनु.)
    (ख)Classical Greece : C.M. Bawra
    (ग)Trojen Women : Uripidiese (हिन्दी अनुवाद)
11. (क) के0टी0 तेलांग : रामायण कॉपिड फ्राम होमर, बम्बई-1873
    (ख) एम0 मोनियर विलियम्स : इंडियन विज़डम-पृष्ठ 316, टि0-1
    (ग) ए0ए0 मैकडॉनल : संस्कृत लिटरेचर, पृ. 308
12. (क) रमेश चन्द्र दत्त : ए हिस्ट्री ऑफ सिविलाइजेशन इन एन्शंट इंडिया- पृ. 211
    (क) एस0 के0 बेवलकर : उत्तररामचरित, भूमिका, पृ. 59
13. डॉ0 कामिल बुल्के : रामकथा की उत्पत्ति, पृ. 83
14. एच0 याकोबी : डस (DAS) रामायण, पृ. 100
15. एम0 विन्टरनिट्ज : हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर, भाग-1 पृ. 500-517

16. सी0वी0 वैद्य : दि रिडिल ऑफ दि रामायण, पृ. 20, 51
17. एम0एम0 विलियम्स : इन्डियन एपिक पोइट्री (लंदन-1863) पृ. 3
18. एच0 याकोबी : डच रामायण, पृ. 1
19. अंग्रेजी अनुवाद, चीनी रामायण : सरस्वती विहार ग्रंथमाला-8 (1938 ई0)
20. (क) एम0 विन्टरनिट्ज : हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर-भाग-1, पृ. 497
    (ख) हरिसत्य भट्टाचार्य : नारायण, प्रतिनारायण एण्ड बलभद्र, दि जैन एन्टीक्वेरी, भाग-8, पृ. 36
21. एच0 लुडर्स: जर्मन ओरियन्टल सोसाइटी जर्नल, भाग 93 (1939), पृ. 89
22. (क) इनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एंड एथिक्स, 'भक्तिमार्ग'।
    (ख) हेमचन्द्र राय चौधरी : अर्ली हिस्ट्री ऑफ वैष्णव सेक्ट।
23. दि ऑथरशिप ऑफ अध्यात्म रामायण, जर्नल, गंगानाथ झा रिसर्च इन्सटीच्यूट, भाग-1, पृ. 215-39
24. गोपाल नारायण (बम्बई) का संस्करण।
25. (क) आर0सी0 हाजरा : इन्डियन कल्चर, भाग-2 पृ. 237.
    (ख) न्यू इन्डियन एंटिक्वेरी, भाग-1, पृ. 522
26. आर0 सी0 हाजरा : पुरानिक रेकॉर्ड्स ऑन हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम, ढाका, 1940 ई0।
27. राजकमल प्रकाशन ने डॉ0 रघुवंश का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया है।
28. हिस्ट्री ऑफ तमिल लैंग्वेज एण्ड लिटरेचर, मद्रास, 1956, पृ. 103
29. बी0एम0 गोपाल कृष्णाचारियर : कम्ब रामायण, बालकांड, पृ. 9
30. एम0एस0 पूर्णिलिंगपिल्ले : तमिल लिटरेचर, पृ. 223
31. अरविन्द जैन : भारत के हिन्दीतर रामकाव्य : कादम्बिनी, अक्टू0-1996, पृ. 93
32. अभिनव पम्प नागचन्द्र : रामचरित पुराणम् : विषय-प्रवेश, पृ. 9
33. अभिनव पम्प नागचन्द्र : रामचरित पुराणम् : विषय प्रवेश, पृ. 9
34. आर0नारायण पणिक्कर : भाषा साहित्य चरित्रम्, भाग-1 पृ. 172
35. सी0ए0 मेनोज : उपुतच्छन एण्ड हिज एज, यूनिवर्सिटी ऑफ मद्रास, 1940
36. गोपाल लाल वर्मा : 'संथाली लोकगीतों में श्री राम'-सारंग (दिल्ली, 7 फरवरी 1960, पृ. 43-45)
37. एम0सी0मित्र : जर्नल ऑफ डिपार्टमेंट ऑफ लेटर्स कलकत्ता, भाग-4, पृष्ठ 303-304
38. दि कश्मीरी रामायण : जी0 ए0 ग्रियर्सन का संस्करण, कलकत्ता 1930
39. ऐस्पेक्ट्स ऑफ ओल्ड असमिया लिटरेचर (गौहाटी यूनिवर्सिटी, 1952)
40. उ0च0 लेखारू : असमिया रामायण साहित्य (1948)
41. विष्णुकांत शास्त्री : असमिया में राम साहित्य (मैथिली शरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ), पृ. 831-39
42. इ0एस0ए0एच0 अबीदी : दि स्टोरी ऑफ रामायण इन इन्डो-परसियन लिटरेचर (इन्डो-इरैनिका, कलकत्ता, भाग-17, पृ. 27-29
43. हिन्दी साहित्य कोश में हिन्दी राम साहित्य शीर्षक लेख। तथा डा0 माता प्रसाद गुप्त का 'रामकाव्य'। (हिन्दी साहित्य, द्वितीय खंड, भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग, 1959, पृ0 300-331)

Scanned with OKEN Scanner

44. नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण : दूसरा खंड, नवम स्कंध, पद 460-613
45. नागरी प्रचा0 पत्रिका, वर्ष-61 (सं 2013), अंक-1 और हिन्दुस्तानी भाग-24,अंक-3 पृ. 117
46. डॉ0 चतुर्भुज : मेघनाद, प्रकाशक-साधना मंदिर, पटना-4
47. डॉ0 चतुर्भुज : रावण, मगध कलाकार प्रकाशन, श्रीकृष्णनगर, पटना-800001
48. (क) एफ0 डब्लू0 थामस : ए रामायण स्टोरी इन तिब्बतन, इंडियन स्टडीज, पृ0 193, (ख) एम0 लालू : जर्नल अजियाटिक, 1936, पृ. 560
49. बुलेटिन स्कूल ऑफ ओरियन्टल स्टडीज, भाग-10, पृ. 559
50. डच ओरियन्टल जर्नल, भाग 73-74
51. जर्नल ऑफ ग्रेटर इंडिया सोसाइटी, भाग-3, पृ. 113
52. डब्लू स्टुटरहाइम : राम लेगंडन एण्ड रामरेलिफ्स इन इन्डोनेशिया।
53. (क) बुलेटिन एकोल फासेंस एक्सट्रेम ओरियन, भाग-28, पृ0 147
(ख) जर्नल ओरियन्टल रिसर्च, भाग-6, पृ0 117
54. बुलेटिन एकोल फ्रांसेस एक्सट्रेम ओरियन, भाग-5, पृ. 138
55. स्वामी सत्यानंद पुरी : रामकीर्ति (हिन्दी अनु0), प्राक्कथन, पृ. 11-12
56. जर्नल ऑफ दि असम रिसर्च सोसाइटी, भाग-15 (1963 ई0)
57. डॉ0 कामिल बुल्के : रामकथा-उत्पत्ति और विकास, 1993 ई0 पृ. 220
58. दि रामजातक : जर्नल श्याम सोसायटी, भाग-36, पृ. 1
59. एच0 देदिएर : द रामायण इन लाओस, ज0ऑ0रि0, भाग-22, पृ. 64-66
60. जी0पी0 कानोर : दि रामायण इन बर्मा, जर्नल बर्मा रिसर्च सोसायटी, भाग-15, पृ. 80.

द्वितीय अध्याय

(क) विमलसूरि : कवि और उनका परिचय

किसी भी रचना के मर्म को समझने के लिए उसके कवि/ग्रंथकार के परिचय और उसका काल भी एक स्रोत होता है अतः 'पउमचरियं' पर शोध करने के क्रम में महाकवि विमलसूरि का परिचय भी जान लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

जैन साहित्य में रामकथा का प्रादुर्भाव तीन बातों को दर्शाता है:-

1. वाल्मीकि से बिल्कुल अलग परम्परा की अवधारणा,
2. वाल्मीकि रामायण या हिन्दू रामायण से प्रभावित होना,
3. कुछ बातों को वाल्मीकि से पहले की परम्परा को मानना और कुछ अत्यन्त लोकप्रियता के कारण वाल्मीकि रामायण से कुछ बातों को लेना।

विमलसूरि ने 'पउमचरियं' लिखकर पहले पहल लोकप्रिय रामकथा को जैन धर्म के सांचे में ढालने का प्रयास किया है।[1] कवि का कहना है कि यह पद्मचरित आचार्यों की परम्परा से चला आ रहा था, नामावलीबद्ध था (1, 8) और साधु परम्परा (साहुपरम्पराए 118, 102) द्वारा लोकप्रिय हो गया था। इसका अर्थ यह हो सकता है कि रामचरित केवल नाम के रूप में रहा होगा। अर्थात् "उसमें कथा के प्रधान-प्रधान पात्रों, उनके माता-पिताओं, स्थानों और भवान्तरों आदि के नाम रहे होंगे। वह पल्लवित कथा के रूप में न रहा होगा और उसी की विमिलसूरि ने विस्तृत चरित के रूप में रचना की होगी।"[2]

इसके बाद भी कवि का कहना है कि नारायण तथा बलदेव की कथा पूर्वगत (पुव्वगए, 118, 118) में वर्णित थी और मैंने वही कथा अपने गुरु से सुनी थी।

विमलसूरि कृत 'पउमचरियं' जैन महाराष्ट्री काव्य का प्राचीनतम ग्रंथ है। इस ग्रंथ के अध्ययन से जानकारी मिलती है कि विमलसूरि रामकथा से परिचित थे। उन्हें वाल्मीकिकृत रामायण की कथा की भी जानकारी थी। लेकिन इसके बाद भी विमलसूरि ने अपने काव्य रचना के दौरान मूलकथा में कुछ अपनी दृष्टि प्रस्तुत की है। विमलसूरि ने राम को 'पउम' अर्थात् 'पद्म' कहा है। इसी कारण उन्होंने इस ग्रंथ का शीर्षक 'पउमचरियं' किया है। इस नामकरण का यह भी कारण रहा हो कि जैन साहित्य में कृष्ण के भाई बलराम को भी राम कहा जाता था। इसी कारण विमलसूरि ने 'राम' शब्द नहीं जोड़ कर 'पउम' कहा हो। पद्म नामकरण का यह भी कारण हो सकता है कि अपराजिता ने 'पउमसरिसमुहं' (25, 7) पुत्र को उत्पन्न किया और दशरथ ने 'पउमुप्पलदलच्छो' (पद्मकमल दल नेत्र वाले, 25, 8) पुत्र को देख कर उसका नाम 'पउम' रखा हो।[3]

Scanned with OKEN Scanner

अवराइया कयाई, गुरुभारा सोहणे तिहि-मुहुत्ते।
पुत्तं चेव पसूया, वियसियवरपउमसरिसमुहं॥
जम्मूसवो महन्तो, तस्स कओ दसरहेण तुट्ठेणं।
नामं च विरइयं से, पउमो पउमुप्पलदलच्छो॥[4]

अर्थात्- गर्भवती अपराजिता ने कभी शुभ तिथि एवं मुहूर्त में खिले हुए उत्तम कमल के समान मुखवाले पुत्र को जन्म दिया। तुष्ट दशरथ ने उसका बड़ा भारी जन्मोत्सव मनाया और पद्मकमल के दल की सी कान्ति वाले उसका नाम पद्म रखा।

जहां तक पउमचरियं की परम्परा को मानने की बात है और जैसा विमलसूरि ने स्वयं लिखा है कि गुरु-शिष्य की परम्परा में 'पउमचरियं' की कथा सामने आई है। सर्वप्रथम भगवान महावीर द्वारा यह कथा इन्द्रभूति गौतम को कही गई थी, जिसने अपने शिष्यों को सुनायी और फिर यह बात आगे बढ़ी। राहू से विजय ने सुनी और विजय ने विमलसूरि को यह कथा सुनाई:-

नामावलियनिबद्धं आयरियपरंपरागयं सव्वं।
वोच्छामि पउमचरियं, अहाणुपुव्विं समासेण॥[5]

अर्थात्- मैं पद्म (राम) की कथा को, जिसमें अनेक नाम आते हैं और जो आचार्य परम्परा से मुझे प्राप्त हुई है, उसे यथाक्रम संक्षेप से कहूँगा।

भगवान महावीर के निर्वाण के 530 वर्ष पश्चात् विमल ने इसकी रचना की। विमलसूरि की रचना पउमचरियं, बाद के जैन कवियों के लिए एक आदर्श के रूप में थी।

यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि हमारे प्राचीन मनीषियों ने अपने बारे में कहीं कुछ नहीं लिख छोड़ा है। अगर कुछ लिखा भी तो वह अपूर्ण है और विवादों से भरा है। मुख्यतः इस कारण से हम उनके व्यक्तिगत जीवन के बारे में अंधेरे में ही हाथ मारते रहते हैं। यही हाल जैन रामायण पउमचरियं के महाकवि विमलसूरि का भी है। उनके बारे में भी विश्वस्त सूत्रों का बड़ा अभाव है। जिस तरह संस्कृत रामायण के रचनाकार महर्षि वाल्मीकि की प्रसिद्धि है उसी तरह से जैन रामायण पउमचरियं के रचनाकार विमलसूरि की भी प्रसिद्धि है।

ऐसा कहा जाता है कि विमलसूरि विजय नाम के एक विद्वान के शिष्य थे। विजय भी राहू नाम के एक विद्वान मनीषी के शिष्य थे। यह राहू एक धार्मिक व्यक्ति था। विमलसूरि और उनके शिक्षक का सम्बन्ध नाईल कुल वंश से था। इस कुल के लोग स्वतन्त्र विचार वाले लोग होते थे। उन लोगों ने साधना की। कुछ नई विधि अपनाई जिसके कारण पुराने कुल के लोगों ने इन्हें अपने से दूर कर दिया। यह भी पता चलता है कि विमलसूरि ने पद्मचरित की तरह राघवचरित की रचना भी की थी। यह रचना नारायण अर्थात् लक्ष्मण और बलदेव अर्थात् राम के सम्बन्ध में है।[6]

प्राकृत कथा साहित्य में ही नहीं बल्कि समस्त जैन कथा वाङ्मय में तिरसठ शलाका पुरुषों के सम्बन्ध में कथाएं आई हैं। उन शलाका पुरुषों में राम, लक्ष्मण और

रावण भी हैं, जो बलदेव, वासुदेव और प्रतिवासुदेव के रूप में आये हैं। फिर उन शलाका पुरुषों में किसी एक महापुरुष के कथासूत्र को आधार मानकर उसकी वृत्तन्तों की कथाएं दी गई हैं।

इस तरह उन महापुरुषों के नाम के स्वतन्त्र चरित्र ग्रंथ लिखे गये हैं। ऐसे अनेक कथाग्रंथ हैं जिनमें काव्यमयी शैली में श्रृंगार, करुण आदि रसों से अलंकृत करके अन्त में वैराग्य की स्थिति दिखलाई गई है। कथा को विस्तार देने के लिए उसमें प्रमुख चरित्र के साथ अनेक उपचरित्र की कथा का वर्णन भी जोड़ा गया है। फिर उन सब के पूर्व जन्म या आगामी जन्म का परस्पर सम्बन्ध बताकर व्यक्ति के शुभाशुभ कर्मों के फल का परिणाम भी दिखलाया गया है। यद्यपि आख्यायिका शैली का सम्यक् विकास हरिभद्र से होता है तो भी तरंगवती में इस शैली के सभी गुण मिल जाते हैं। इसमें अन्य अलंकारों का भी पूरा जमघट है।

इस युग की प्रतिनिधि रचनाएं तीन हैं- पउमचरियं, तरंगवती और वसुदेवहिंडी। रामकथा सम्बन्धी सबसे प्राचीन प्राकृत रचना 'पउमचरियं' है जिसके रचयिता विमलसूरि हैं।[7]

इन्होंने इस ग्रंथ की प्रशस्ति में अपने को नगेन्द्रवंश जिनकर, राहू सूरि का प्रशिष्य और पूर्वधर कहा है। यह भी पता चलता है कि राहू सूरि के शिष्य का नाम विजय सूरि था। और इन्हीं विजय सूरि के शिष्य विमलसूरि थे।

राहू नामायरिओ, ससमयपरसमयगहियसब्भावो।
विजओ य तस्स सीसो, नाइलकुलवंसनन्दियरो॥
सीसेण तस्स रइयं, राहवचरियं तु सूरिविमलेणं।
सोऊणं पुव्वगए, नारायण-सीरिचरियाइं॥
जेहिं सुयं ववगयमच्छरेहिं तब्भत्तिभावियमणेहिं।
ताणं विहेउ बोहिं, विमलं चरियं सुपुरिसाणं॥

(पउमचरियं : भाग-2, पृ.598)

अर्थात्- स्वसिद्धान्त और पर सिद्धान्त के भाव को ग्रहण करने वाले राहु नाम के एक आचार्य हुए। उनका नागिलवंश के लिए मंगलकारक विजय नाम का एक शिष्य था। उसके शिष्य विमलसूरि ने पूर्व-ग्रंथों में आये हुए नारायण तथा हलधर के चरितों को सुनकर यह राघव चरित रचा है। मत्सरहित और उन राम की भक्ति से भावित मन वाले जिन्होंने यह चरित सुना उन सुपुरुषों को बोधि और विमल चरित्र मिले।

आर्य नागल से ही नगेन्द्र वंश निकला होगा। पउमचरियं की प्रशस्ति में इन्हें नाइल कुल का वंशज कहा गया है।[8]

इस चरितकाव्य का रचनाकाल वीर निर्वाण संवत् 530 बताया गया है अर्थात् विक्रम संवत् 72 ई0 कहा है। लेकिन भाषा के आधार पर डा0 याकोबी आदि विद्वान पउमचरियं को तीसरी अथवा चौथी शताब्दी की रचना मानते हैं।[9] इस ग्रंथ का संस्कृत रूपान्तर रविषेणाचार्य ने 660 ई0 में किया है जो 'पद्मचरित' के नाम से प्रसिद्ध है।[10]

Scanned with OKEN Scanner

इस ग्रंथ में हम उन शब्दों का खुला प्रयोग पाते हैं जिनको व्याकरण में देशी शब्द कहा गया है। इस रचना में दीनार, ग्रह/नक्षत्र आदि शब्द भी आये हैं जो इस कृति को तीसरी सदी से पहले मानने में बाधा उत्पन्न करते हैं। वास्तव में इसकी रचना तिथि वही है जो ग्रंथ की प्रशस्ति में उपलब्ध है।

दीनार का उल्लेख एवं पर्वतवासियों का उल्लेख भी इस बात का प्रमाण है कि विमलसूरि का समय द्वितीय शताब्दी के पश्चात् होना चाहिए। उत्तरकालीन छन्दों का प्रयोग उक्त मत की पुष्टि करता है।[11]

पउमचरियं का कवि अपने को विमल कहता है। ऐसी स्थिति में दूसरे कवियों के द्वारा कीर्ति कहा जाना कहां तक सही हो सकता है। डा0 डी0एन0 शर्मा का मत है कि पउमचरियं के कर्त्ता का पूरा नाम संभवत: 'विमलकीर्ति' है जिसके आधे अंश का उपयोग कवि ने स्वयं और आधे का बाद के विद्वानों ने किया है। क्योंकि कोई भी बड़ा विद्वान नम्रतावश अपना परिचय पूरा नाम न कह कर आमतौर पर अपने नाम के पहले अंश से ही कर देता है और अन्य लोग श्रद्धावश बाद में सम्मानसूचक कोई शब्द जोड़ते हैं। लगता है यही विमलकीर्ति बाद में विमलसूरि कहलाये।[12]

विमलसूरि के काल के बारे में डा0 याकोबी ने बड़े विस्तार से लिखा है। उनके मतानुसार कवि के कथनानुसार पउमचरियं की रचना पहली सदी में हुई।

प्रो0 लड्डू और गोरे, विमलसूरि के काल के बारे में भिन्न मत रखते हैं। इन दोनों का मत है कि विमलसूरि का काल ईसा पूर्व पहली अर्द्ध शताब्दी और ईसा के बाद के एक शताब्दी के मध्य में था। कुछ अन्य विद्वानों ने भी अपने अपने मत देकर इस मान्यता को उलझा दिया है। मुनि जिनविजय जी मानते हैं कि याकोबी के कथनानुसार विमलसूरि तीसरी शताब्दी के बाद के नहीं थे।

प्रो0 याकोबी पउमचरियं की भाषा के बारे में कहते हैं-यह महाराष्ट्री काव्य का प्राचीनतम ग्रंथ है। इसे व्याकरण की दृष्टि से संशोधित अथवा आधुनिक प्राकृत नहीं कहा जा सकता है।

पउमचरियं से यह भी पता चलता है कि विमलसूरि को वाल्मीकि की रामायण के बारे में पूरी जानकारी थी। क्योंकि अपनी रचनाओं में विमलसूरि ने ऐसी कई बातों का उल्लेख किया है। विशेषरूप से रावण, कैकेयी, बालि आदि चरित्रों के बारे में। विमलसूरि का रावण दुखान्त नायक है। विमलसूरि ने वैदिक बलि प्रथा आदि का विवरण भी दिया है। गरुड़ के बारे में लिखते हुए विमलसूरि ने गरुड़शास्त्र और सर्पदंश आदि की जानकारी दी है।[13]

विमलसूरि की रचनाओं में एक काव्यग्रंथ है। प्रश्नोत्तरमाला या विमल प्रश्नोत्तरमाला या रत्नमालिका। पउमचरियं और हरिवंशचरियं विमलसूरि की रचनाएं रही हैं। लेकिन हरिवंशचरियं रचना नहीं मिलती। इस रचना में कृष्णावतार के साथ कृष्ण से सम्बन्ध रखने वाले अन्य पाण्डव आदि पौराणिक आख्यान भी निबद्ध हैं।

कुवलयमाला के रचनाकार उद्योतन सूरि ने अपने ग्रंथ में कुवलयमाला में

विमलसूरि के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए बताया है कि हरिवंशचरियं की रचना विमलसूरि ने ही की है।

बुहयण-सहस्स-दइयं हरिवंसुप्पत्ति-कारयं पढमं।
वंदामि वंदियं पि हु हरिवरिसं चेव (भी0एल0 हरिवंसंचेव) विमलपयं॥

अपनी रचना पउमचरियं में अनेक स्थलों पर विमलसूरि, वाल्मीकि से भिन्न मत भी रखते हैं। जैसे वानरों के हाथ से राक्षसों की पराजय। राक्षसों का मांस भक्षण, कुम्भकर्ण का छै महीने तक सोना, रावण द्वारा इन्द्र का बन्दी होना। बालि की धोखे से हत्या। वानरों द्वारा समुद्र पर सेतु का निर्माण आदि।[14]

पउमचरियं के आधार पर आगे के अनेक रचनाकारों ने दूसरी अन्य रामकथाएं भी लिखीं-जैसे- रविषेण का 'पद्मपुराण', स्वयंभू का 'पउमचरिउ', जिनसेन सूरि का 'हरिवंश पुराण', हेमचन्द्र का 'त्रिषष्ठिशलाकापुरुष', देव विजयगणि का 'रामचरित', आदि। इनके अलावा हस्तिमल्ल के 'मैथिली कल्याण' और 'अन्जना पवनंजय नाटक' तथा भट्टारक सोमसेन रचित 'राम पुराण' भी विमलसूरि से प्रभावित हैं।

जैन साहित्य में महापुरुषों के चरित्र को नवीन काव्य शैली में लिखने का प्रारम्भ विमलसूरि ने किया। जिस प्रकार संस्कृत साहित्य में आदि काव्य वाल्मीकि कृत रामायण माना जाता है उसी प्रकार प्राकृत का आदि काव्य विमलसूरि कृत पउमचरियं है। इस काव्य की प्रशस्ति में काव्य के अन्त में इसके कर्त्ता और रचनाकाल का भी निर्देश पाया जाता है। यह भी कहा गया है कि विजय के शिष्य विमलसूरि ने नारायण और बलदेव के चरित्र सुन इस काव्य की रचना की जिसकी समाप्ति महावीर के सिद्ध होने के उपरान्त वर्षों बाद हुई। पउमचरियं की समाप्ति का काल आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा सन् 7 ईसवी में सिद्ध होता है। किन्तु कुछ विद्वान ग्रंथ रचना के इस काल को ठीक नहीं मानते। अत: ये विद्वान इसका रचनाकाल तीसरी-चौथी सदी मानते हैं। इसकी भाषा में हमें महाराष्ट्री प्राकृत का प्राय: निखरा हुआ रूप दिखाई देता है।[15]

पउमचरियं के कर्त्ता ने यह सूचित किया है कि उन्होंने रामायण और बलदेव अर्थात् लक्ष्मण और राम का चरित्र पूर्वगत में से सुना था।

पउमचरियं में कई बातों में वाल्मीकि रामायण से कुछ अलग दृष्टि पाई जाती है। यहां हनुमान, सुग्रीव आदि वानर नहीं बल्कि विद्याधर हैं। रावण के दसमुख नहीं थे। उसके गले में पहनाये गये हार के मणियों में प्रतिबिम्बित नौ अन्य मुखों के कारण वह दसमुख कहलाया। सीता जनक की ही औरस कन्या थी। उसका एक भाई भामंडल भी था। राम ने बर्बरों द्वारा किये गये आक्रमण के समय जनक की सहायता की और उसी के कारण जनक ने सीता का विवाह राम के साथ करने का निश्चय किया। सीता के भाई भामंडल को उसके बचपन में ही एक विद्याधर हर ले गया था। युवक होने पर और अपने सच्चे माता-पिता से अपरिचित होने के कारण वह सीता का चित्र देखकर उस पर आसक्त हो गया और उसी से अपना विवाह करना चाहता था। लेकिन धनुष-परीक्षा में राम की विजय हुई।

Scanned with OKEN Scanner

पउमचरियं के रचनाकार विमलसूरि ने कहीं यह नहीं लिखा है कि वे किस मत को मानते थे। लेकिन इतना तय है कि वे किसी मत के विरोधी नहीं थे। कुछ लोग उन्हें दिगम्बर सम्प्रदाय से जोड़ते हैं और कुछ लोग उन्हें श्वेताम्बर परम्परा से जोड़ते हैं। लेकिन कुछ लोग उन्हें दोनों में से किसी परम्परा का पक्षधर नहीं मानते। इसलिए यह कहना कठिन है कि वे किस परम्परा के मानने वाले थे।[16]

दिगम्बर परम्परा में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय है।:-

दिगम्बर परम्परा यह मानती है कि प्रथम तीर्थंकर के जन्म के 15 माह पहले से धन के स्वामी कुबेर ने धन की वर्षा की। लेकिन श्वेताम्बर परम्परा यह मानती है कि तीर्थंकर के जन्म के दिन ही ऐसा हुआ। भगवान महावीर की आत्मा सीधे त्रिशला के गर्भ में आई थी। तीर्थंकरों के माता-पिता, जन्म स्थल और नक्षत्र आदि का वर्णन तिलोयपण्णत्ति के समान है। मुनि कुलभूषण और देशभूषण जिनके प्रति राम वंशगिरि पर्वत पर सम्मान प्रकट करते हैं, यह सब बातें दिगम्बर परम्परा में आई हैं।

भगवान महावीर कैवल्य प्राप्त होने पर विपुलगिरि के पथ में उपदेश देते पाये जाते हैं-

अइसयविहूइसहिओ, गण-गणहर-सयलसंघपरिवारो।
विहरन्तो च्चिय पत्ते, विउलगिरिन्दं महावीरो।।[17]

अर्थात्- शिष्य समुदाय, गणधर एवं सकल संघ के साथ विहार करते हुए तथा ज्ञानादि अतिशयों की विभूति से युक्त महावीर एक बार विपुलाचल के ऊपर पधारे।

लेकिन दिगम्बर परम्परा में महावीर ने अपना पहला उपदेश ही विपुलगिरि पर्वत पर दिया था। श्वेताम्बर में यह बात भी आई है कि तीर्थंकरों की माताओं ने चौदह स्वप्न देखे थे।

वसह, गय, सीह, वरसिरि, दामं, ससि, रवि, झयं च, कलसं च,।
सर, सायरं, विमाणं-वरभवणं, रयणकूड, ङग्गी।।[18]

अर्थात्- वे स्वप्न थे-वृषभ, गज, सिंह, लक्ष्मी, माला, चन्द्रमा, सूर्य, ध्वजा, कलश, सरोवर, सागर, विमान-उत्तम भवन, रत्नराशि और अग्नि।

श्वेताम्बर परम्परा में चक्रवर्तियों की चौंसठ हजार पत्नियां हैं।

चउसट्ठि सहस्साइं, जुवईणं परमरूवधारीणं।[19]

अर्थात्- भरत के अन्तःपुर में चौंसठ हजार अत्यन्त रूपवती स्त्रियां थीं।

सगरो वि चक्कवट्टी, चउसट्ठिसहस्सजुवइकयविहवो।
भुंजयइ एगच्छत्तं, सयलसमत्थं इमं भरहं।।[20]

अर्थात्- चौंसठ हजार युवतियों की समृद्धिवाला सगर चक्रवर्ती भी पूर्ण प्रभुत्वयुक्त इस समग्र भरत क्षेत्र का उपभोग करने लगा।।

दिगम्बर सम्प्रदाय 96000 पत्नियां बताती हैं।

इस तरह बहुत सी बातें जो दिगम्बर परम्परा से भिन्न श्वेताम्बर परम्परा में आई है। दोनों ही परम्परा विमलसूरि को अपना मानती है। इसलिए यह कहना कठिन है कि उन्हें किस मत के दायरे में रखा जाये-दिगम्बर मत में या श्वेताम्बर मत में। लेकिन यह तय है कि उन्होंने किसी मत की मुखालफत नहीं की है।

पउमचरियं में सृष्टि का वर्णन करते हुए विमलसूरि ने बारह कल्प की चर्चा की है जो श्वेताम्बर परम्पर भी मानती है। एक स्थल पर इन्होंने ब्रह्मोत्तर कल्प की बात कही है जो दिगम्बर के सोलह कल्पों मे एक है।

डॉ0 याकोबी एवं अन्य विद्वानों के बीच पउमचरियं के रचनाकाल के सम्बन्ध में मतभेद हैं। पउमचरियं की प्रशस्ति में उल्लिखित काल भी ग्रंथ के अन्य वर्णन और संदर्भ, भाषायी दृष्टिकोण, ऐतिहासिक, राजनीतिक और सामाजिक तथ्यों पर पूर्णरूपेण खरे नहीं उतरते।

डॉ0 के0 आर0 चन्द्रा की मान्यता है कि रचनाकार ने ग्रंथ की प्रशस्ति में इसका रचनाकाल महावीर के निर्वाण के 530 वर्ष पश्चात् का बताया है। लेकिन दूसरी पाण्डुलिपि[21] के अनुसार महावीर के निर्वाण के 520 वर्ष बाद की जानकारी मिलती है। यह तिथि चौथी शताब्दी ई0 की हो सकती है अथवा छठी शताब्दी ई0 पू0 की हो सकती है। डॉ0 याकोबी महावीर के निर्वाण के अनुसार इस ग्रंथ का रचनाकाल 63 अथवा 53 ई0 का मानते हैं।

अन्य प्रमाण

778 ई0 में रचित उद्योतनसूरि की रचना 'कुवलयमाला' में सर्वप्रथम विमलसूरिकृत 'पउपचरियं' का उल्लेख आया है।[22] इससे यह प्रमाणित होता कि 778 ई0 से पूर्व में पउमचरियं की रचना निस्सन्देह हो चुकी थी। उद्योतनसूरि ने अपने ग्रंथ में रविषेणाचार्य कृत 'पद्मचरितम्' का भी उल्लेख किया है।

के0एच0 ध्रुव ने 'पउमचरियं' की रचना 'पद्मचरितम्' के पश्चात् की मानी है।[23] उनका तर्क है कि पउमचरियं में उल्लिखित छन्द आधुनिक हैं और प्रत्येक उद्देश्य एवं पर्व के अन्त में 'विमल' का प्रयोग होना बहुत प्राचीन प्रथा नहीं है। वैसे सेतुबंध के अध्याय के अन्त में भी रचनाकार की झलक देखने को मिलती है। इन तथ्यों से हम यही कह सकते हैं कि रविषेण द्वारा रचित 'पद्मचरितम्', मूल 'पउमचरियं' का वृहत् संस्कृत ग्रंथ है और 'पद्मचरितम्' 677 ई0 की रचना है। अतएव पउमचरियं निश्चय ही इससे पूर्व की रचना होनी चाहिए।

पउमचरियं के तथ्य

पउमचरियं के पर्व 68 की गाथा 32 में दीनार का उल्लेख आया है। यह घटना उस समय की है जब सुग्रीव पुत्र अंगद रावण के समक्ष पहुंचकर सीताहरण के लिए उसे प्रताड़ित करता है और यह भी कहता है कि उसने अपने लोगों के हाथों रावण को पांच दीनार में बेचा है।

दीनारेसु हसन्तो, पंचसु विक्केइ रक्खसाहिवई।
नियपुरिसस्स हत्थे, सवइ पुणो तिव्वसद्देणं।।[24]

अर्थात्- हंसते हुए उसने राक्षसाधिपति को पांच दीनार में अपने आदमी के हाथ

Scanned with OKEN Scanner

बेच दिया। फिर कठोर शब्द से उसे गाली-गलौच करने लगा।

डॉ० भी०एस० अग्रवाल[25] ने जानकारी दी है कि 'दीनार' नामक सिक्का सर्व प्रथम कुषाण शासनकाल में चलाया गया था और कुषाणकाल 45-78 ई० का है। गुप्तकाल के स्वर्ण सिक्के दीनार कहे जाते थे।[26] इन तथ्यों से ज्ञात होता है कि दीनार पहली शताब्दी के पूर्व का नहीं रहा है।

'पउमचरियं' के उद्देश्य 17 के गाथा 107-112 तक में हनुमान के जन्म के नक्षत्र की स्थिति का वर्णन किया गया है जो सही नहीं है। नेमिचन्द्र शास्त्री ने जानकारी दी है[27] कि मात्र सात ग्रहों/नक्षत्रों का ही वर्णन 'पउमचरियं' में किया गया जो प्राचीनता का द्योतक है। जब कि नक्षत्रों/ग्रहों का तुंगत्व यह बतलाता है कि यह वराहमिहिर के सिद्धान्तों के अनुकूल है।

राजनीतिक और ऐतिहासिक तथ्य

'पउमचरियं' के उद्देश्य 34 में एक कथा आई है-सिंहोदर-रुद्रभूति और बालिखिल्य की। कल्याणमालिनी नामक युवती के पिता बालिखिल्य को म्लेच्छ राजा ने कैद किया था। उज्जैन के राजा सिंहोदर से बालिखिल्य को मुक्त कराने का अनुरोध किया गया। लेकिन सिंहोदर ने अपनी असमर्थता व्यक्त की। जब राम और लक्ष्मण सीता के साथ उस नगर में आये और इस दुखद घटना को सुना तब सीता ने मदद का भरोसा दिलाया। राम, लक्ष्मण नर्मदा नदी पार कर विन्ध्य के जंगल में पहुंचे। तत्पश्चात् रुद्रभूति को पराजित कर बालिखिल्य का उद्धार किया।

'पउमचरियं' में आगे (55.16) राम और उनके सहयोगी जो श्रीपर्वत, महेन्द्र, मलय क्षेत्र के निवासी थे, ने भी रावण से युद्ध किया। ये तीनों क्षेत्र दक्षिण में हैं। इस ग्रंथ में यह भी उल्लेख किया गया है कि श्रीपुर जो श्रीपर्वत की तराई में था, के राजा हनुमत थे। हनुमत को श्रीशैल भी कहा जाता है। ऐसा कहा जाता है कि बाल्यकाल में हनुमत आकाश से पहाड़ी चट्टान पर गिरे थे। श्रीपर्वत और उसके निवासियों का बार-बार उल्लेख होना यह सिद्ध करता है कि ये सब राम के अनन्य सहयोगी थे और हमारे रचनाकार विमलसूरि श्रीपर्वतीय आन्ध्र से प्रभावित थे और जो आन्ध्र देश के इक्ष्वाकु थे और जिनका शासनकाल तीसरी शताब्दी का था।

पउमचरियं के पर्व 37 में उल्लेख किया गया है कि नन्दावर्त नगर के राजा अतिवीर्य का जब अयोध्या निवासी भरत के साथ मतभेद हुआ तब राम और लक्ष्मण विजयपुर को छोड़कर भरत की मदद के लिए आये और अतिवीर्य को पराजित किया। गुप्तकाल के पूना ताम्र अभिलेख[28] में 'नन्दिवर्द्धन' का उल्लेख आया है जो वर्तमान समय में रामटेक के निकट नगरधन अथवा नन्दर्धन है और जो नागपुर से तेरह मील की दूरी पर अवस्थित है।

नन्दिवर्द्धन वाकाटकों की राजधानी था। प्रवरसेन द्वितीय ने अपनी राजधानी इस स्थान से 430 ई० के आसपास प्रवरपुर लाई थी।[29] उसके पुत्र नरेन्द्र सेन को भवदत्त वर्मन का सामना करना पड़ा। यह घटना लगभग पांचवीं शताब्दी की है। ऐतिहासिक घटनाओं को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि उस क्षेत्र में और उस काल में राजनीतिक हलचल

तीव्रतर थी। संभवतः उसी राजनीतिक हलचल का प्रतिबिम्ब हमें 'पउमचरियं' की घटनाओं में भी देखने को मिलता है।

हरदेव बाहरी यह स्वीकार करते हैं कि दीनार, श्वेताम्बर और नक्षत्र आदि इस तरह इस ग्रंथ में उल्लिखित हैं जिनके कारण 'पउमचरियं' का रचनाकाल तीसरी अथवा चौथी सदी में मानना उचित न होगा। लेकिन उस समय की राजनीतिक स्थितियां और ये ऐतिहासिक व्यक्तियों को Interpolation नहीं माना जा सकता (can not be regarded as interpolations)। इसलिए 'पउमचरियं' की रचना 5 वीं शताब्दी से पूर्व की नहीं हो सकती।

साहित्यिक और भाषायी साक्ष्य

'पउमचरियं' में इक्ष्वाकुवंश के राजाओं की जो सूची है (दशरथ के पूर्वज) वह ब्राह्मण ग्रंथों की सूची से साम्य रखती है। लेकिन यह सूची वाल्मीकि रामायण से साम्य नहीं रखती। पउमचरियं की प्रशस्ति में (118. 111) अन्य बातों के अलावा पुराण के अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष की भी चर्चा है। लेकिन यह परिभाषा प्राचीनकालीन पुराणों की परिभाषा से मेल नहीं खाती। हाँ, बाद के ब्राह्मण ग्रंथों की परिभाषा से अवश्य मेल खाती है।

'पउमचरियं' में उद्धृत गाथा के छन्द परिष्कृत रूप में देखने को मिलते हैं। महाराष्ट्री भाषा का उदयकाल सामान्यतः दूसरी शताब्दी का माना जाता है। लेकिन महाराष्ट्री प्राकृत में रचित 'पउमचरियं' की महाराष्ट्री भाषा उत्कृष्ट देखने को मिलती है। अपभ्रंश भाषा का भी प्रभाव कहीं कहीं दृष्टिगत होता है। कवि कालिदास के 'विक्रमोर्वशीय' के एक अंक में भी अपभ्रंश भाषा देखने को मिलती है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि नाईल वंश की उत्पत्ति दूसरी शताब्दी में हुई। दीनार, सूरि के रूप में विमल, सुरंग और ग्रह/नक्षत्र आदि तथ्य हमें दूसरी शताब्दी के आगे पहुंचाते हैं। 'पउमचरियं' में सल्लेखन का उल्लेख हमें गृहस्थ के बारह व्रतों की ओर संकेत देता है जो कुन्दकुन्दाचार्य के 'चरितपाहुड' से मेल खाता है। पूज्यपाद के 'सर्वार्थसिद्धि' में गृहस्थों के लिए छै अणुव्रत बताये गये हैं। ग्रंथ में उल्लिखित श्रीपर्व, किलकिला और आनन्द का संदर्भ हमें 'पउमचरियं' का रचनाकाल तीसरी-चौथी शताब्दी के मध्य की ओर ले जाता है। नन्दवर्तपुर और दसपुर जैसी राजनीतिक घटनाएं पांचवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की ऐतिहासिक घटना की ओर ले जाती है। इस ग्रंथ का भाषा शिल्प भी मध्य इन्डो-आर्यन की ओर ले जाता है।

इन साक्ष्यों के आधार पर डॉ० के० आर० चन्द्रा, 'पउमचरियं' में वर्णित रचनाकाल को भ्रामक बताते हैं। उनकी मान्यता है कि 'पउमचरियं' का सही रचनाकाल (530-57=473 ई०) 473 ई० है।[30]

(ख) महर्षि वाल्मीकि- कवि और उनका परिचय

"महर्षि वाल्मीकि आदिकवि हैं तथा वाल्मीकीय रामायण आदि महाकाव्य है। कवि के सच्चे रूप की कल्पना हमने वाल्मीकि से सीखी है और महाकाव्य के महत्व

को हमने रामायण से ग्रहण किया है। यदि वाल्मीकि न होते तो हम कवि के वास्तविक स्वरूप तथा अभिराम आदर्श को कहां से सीखते? और यदि उनकी प्रसन्न-गम्भीर रामायण हमें नहीं मिलती तो हम महाकाव्य के माहात्म्य तथा गौरव को कैसे पहचानते? कवि और काव्य के विशुद्ध रूप की कसौटी है- आदिकवि का परम पावन, मननीय तथा माननीय, आदि काव्य रामायण। कवि का पद ऋषि के समान है। ऋषि का भी अर्थ है-द्रष्टा। वस्तुओं के विचित्र भाव, धर्म तथा तत्व को भली भांति अवगत करने वाला व्यक्ति ही 'ऋषि' के महनीय पद का वाच्य है। 'कवि' का भी अर्थ है-क्रांतदर्शी 'कवयः क्रान्तदर्शिनः' अर्थात् नेत्रों के व्यापार से दूर रहने वाले अतीत एवं भविष्य के पदार्थों को यथार्थ रूप से देखने वाला पुण्यात्मा पुरुष।''

'' 'मा निषाद' पद्य के उच्चारण करते ही ब्रह्मा स्वयं ऋषि के सामने उपस्थित हुए और कहने लगे-महर्षे! तुम्हारी आर्ष चक्षु का अब उन्मेष हो गया है। तुम आद्यकवि हो। भवभूति ने भी कहा है-

'ऋषे प्रबुद्धोऽसि वागात्मनि ब्रह्माणि। तद् ब्रूहि रामचरितम्।
अव्याहतज्योतिरार्ष ते चक्षु प्रतिभति। आद्यः कविरसि।''[31]

लौकिक संस्कृत के प्रथम महाकवि के रूप में महर्षि वाल्मीकि को विभूषित किया जाता है और उनके द्वारा रचित रामकथा पर आधारित रामायण भूतल का प्रथम काव्य माना जाता है।[32] भारतवर्ष के लिए यह गौरव का विषय है कि महर्षि वाल्मीकि ने यहां जन्म लिया। वे और उनकी रामायण देश की बहुमूल्य राष्ट्रीय निधि हैं। 'यह समस्त काव्यों का बीज है।'[33]

अबतक महर्षि वाल्मीकि पर अनेक काम हुए हैं। अनेक कवियों, लेखकों, विद्वानों ने अपनी-अपनी दृष्टि से रामकथा पर अनेकानेक रचनाएं पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की हैं। शोधार्थियों ने भी विभिन्न पक्षों पर मनन चिन्तन किया है। प्राप्त स्रोतों और विवरणों के अनुसार महर्षि वाल्मीकि के व्यक्तित्व और कृतित्व को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है जो इस प्रकार है:-

महर्षि वाल्मीकि की कथा अद्भुत है। अनेक विद्वानों ने उनके बारे में अपने-अपने विचार दिये हैं। उनके विचारों में समता नहीं है। भिन्नता ही भिन्नता है। कहीं उन्हें भृगुवंशीय बताया गया है, कहीं उन्हें ब्राह्मण सुमति का पुत्र बताया गया, कहीं उन्हें भयंकर डाकू बताया गया है और कहीं उन्हें अद्वितीय विद्वान बताया गया है। लेकिन इतना सभी विद्वान मानते हैं कि रामायण की रचना उन्होंने ही की और राम की कथा को जन-जन तक पहुंचाने का काम उनकी लेखनी से ही सम्भव हुआ। आज भी वाल्मीकिकृत रामायण की चर्चा विश्व के कोने-कोने में हो रही है और यह वाल्मीकि की प्रतिभा का ही कमाल है कि उस पुस्तक को अद्भुत ख्याति अनेक भाषाओं में मिली है।

श्रीराम का अवतार त्रेतायुग में आज से सैकड़ों वर्ष पहले हुआ था। हाल में चेन्नई की एक संस्था ने अनेक वर्षों के शोध के बाद दावा किया है कि राम पौराणिक नहीं बल्कि एक ऐतिहासिक व्यक्ति थे। इस संस्था ने यह भी दावा किया है कि उनका

जन्म 5114 ईसा पूर्व 10 जनवरी को हुआ था। इस तरह राम के जन्म के सात हजार एक सौ बाईस साल पूरे हुए हैं।[34]

एम0 विन्टरनिट्ज ने महर्षि वाल्मीकि का काल ईसा से तीन शताब्दी पूर्व का माना है।[35]

वाल्मीकि रामायण के अध्ययन से यह जानकारी मिलती है कि महर्षि वाल्मीकि, राम के समकालीन थे। उन्होंने अपने आश्रम में निर्वासित सीता को शरण दी थी। सीता को अपने आश्रम में ले जाकर महर्षि वाल्मीकि ने मुनि पत्नियों से उनका परिचय कराया-

स्नुषा दशरथस्यैषा जनकस्य सुता सती।
अपापा पतिना त्यक्ता परिपाल्या मया सदा।।[36]

अर्थात्- सती सीता राजा दशरथ की पुत्रवधू और जनक की पुत्री हैं। निष्पाप होने पर भी पति ने इनका परित्याग कर दिया है। अतः मुझे ही इनका सदा लालन-पालन करना है।

वाल्मीकि के आश्रम में ही लव कुश का जन्म हुआ था। उन्हीं की देख-रेख में उन दोनों पुत्रों की शिक्षा-दीक्षा हुई थी।

वाल्मीकि रामायण से यह भी ज्ञात होता है कि नारद ने वाल्मीकि को यह बताया कि राम उस युग के सर्वगुण सम्पन्न, सर्वश्रेष्ठ पुरुष थे:-

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान् वशी।।[37]

अर्थात्- इक्ष्वाकु के वंश में उत्पन्न हुए एक ऐसे पुरुष हैं, जो लोगों में राम नाम से विख्यात हैं, वे ही मन को वश में रखने वाले, महाबलवान्, कांतिमान्, धैर्यवान् और जितेन्द्रिय हैं।

विभिन्न ग्रंथों से वाल्मीकि के सम्बन्ध में और भी जानकारी मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि वाल्मीकि नाम के एक नहीं अनेक ऋषि हुए हैं। उनमें किस ऋषि ने वाल्मीकि रामायण की रचना की है-प्रश्न विचारणीय है।

प्रामाणिक वाल्मीकि रामायण के युद्धकांड की फलश्रुति (रा0-6,128,105) को छोड़कर वाल्मीकि का संकेत नहीं मिलता है। रामायण के बालकांड, उत्तरकांड[38] और महाभारत में उल्लेख किया गया है कि रामायण के रचयिता वाल्मीकि हैं।

'तैत्तिरीय प्रातिशाख्य' में एक वैयाकरण वाल्मीकि का उल्लेख किया गया है। लेकिन ए0 बेवर[39] और एच0 याकोबी[40] और ए0एन0 उपाध्ये जैसे विद्वान इस मत से सहमत नहीं हैं कि वे ही रामायण के रचयिता हैं।

महाभारत के उद्योग पर्व में गरुड़वंशी विष्णुभक्त सुपर्ण पक्षियों की सूची में वाल्मीकि का नाम आया है। लेकिन विशेषज्ञों की मान्यता है कि सुपर्णवंशी वाल्मीकि और आदिकवि वाल्मीकि दोनों अलग-अलग ऋषि हैं। वे तर्क देते हैं। महाभारत में वर्णित सुपर्ण वाल्मीकि विष्णुभक्त हैं लेकिन कवि वाल्मीकि ने शिव की शरण ली थी।[41]

Scanned with OKEN Scanner

महाभारत के द्रोण पर्व (118, 48) और शांति पर्व (200, 4) में उल्लिखित वाल्मीकि को कवि वाल्मीकि कहा गया है। इनके अलावा शांति पर्व (57, 40) में भार्गव कवि तथा अनुशासन पर्व (18, 8-10) में एक वाल्मीकि का उल्लेख है। महाभारत में कई स्थलों पर महर्षि वाल्मीकि का भी वर्णन है।[42] इससे यह ज्ञात होता है कि महाभारत के व्यास मुनि को वाल्मीकि की जानकारी हो चुकी थी और महाभारत में उल्लिखित भार्गव, सुपर्ण वाल्मीकि, महर्षि वाल्मीकि आदि अलग-अलग ऋषिगण रहे हैं। इनका सम्बन्ध आदि कवि वाल्मीकि से नहीं है। हाँ, इस ग्रंथ में किसी भी वाल्मीकि का जीवनवृत्त नहीं है। इन तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि आदिकवि वाल्मीकि से भिन्न तीन और वाल्मीकि हुए हैं जो वैयाकरण वाल्मीकि, सुपर्ण वाल्मीकि और महर्षि वाल्मीकि के नाम से चर्चित रहे हैं।

"रामायण के भिन्न-भिन्न पाठों की तुलना करने पर स्पष्ट होता है कि रामायण का उत्तरकांड बहुत बाद का लिखा हुआ है। वास्तव में उत्तरकांड तथा बालकांड दोनों वाल्मीकिकृत रचना में विद्यमान नहीं थे।"[43]

ऐसा प्रतीत होता है कि बालकांड के रचनाकाल के समय तक आदिकवि वाल्मीकि और ऋषिवर वाल्मीकि की अभिन्नता सर्वमान्य होने लगी थी।

बालकांड के प्रारम्भ में रामायण की उत्पत्ति की कथा मिलती है। नारद से वाल्मीकि रामकथा का वर्णन सुनते हैं और ब्रह्मा के आदेश से वे इस कथा को श्लोकबद्ध करते हैं। लव कुश के गायन द्वारा वाल्मीकि की रामकथा राम और उनके भाइयों को सुनाने का उल्लेख है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे वाल्मीकिकृत रामायण की सम्पूर्ण कथा लव-कुश के गायन के माध्यम से "फ्लैशबैक में फिल्मों की तरह पाठकों के सामने प्रस्तुत किया गया है।

उत्तरकांड के अनुसार सीता परित्याग के समय लक्ष्मण सीता को बताते हैं कि वाल्मीकि ब्राह्मण हैं और वे दशरथ के सखा हैं-

राज्ञो दशरथस्यैव पितुर्मे मुनिपुंगवः॥
सखा परमको विप्रो वाल्मीकिः सुमहायशाः।[44]

अर्थात्- यहां मेरे पिता राजा दशरथ के घनिष्ठ मित्र महायशस्वी ब्रह्मर्षि मुनिवर वाल्मीकि रहते हैं।

राम द्वारा आयोजित अश्वमेध यज्ञ के समय महर्षि वाल्मीकि भी आमंत्रित हैं। यज्ञ में वाल्मीकि सीता के सतीत्व का साक्ष्य देते हैं और अपने परिचय में प्रचेता के दसवें पुत्र बताते हैं और अपनी बातों पर बल देते हुए कहते हैं-'मैंने कभी पाप नहीं किया है--

प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन।
न स्मराम्यनृतं वाक्यमिमौ तु तव पुत्रकौ॥
बहुवर्षसहस्राणि तपश्चर्या मया कृता।[45]
मनसा कर्मणा वाचा भूतपूर्व न किल्बिषम्।

अर्थात्- 'रघुकुलनन्दन! मैं प्रचेता (वरुण) का दसवां पुत्र हूँ। मेरे मुंह से कभी झूठ बात निकली हो, इसकी याद मुझे नहीं है। मैं सत्य कहता हूँ ये दोनों आपके ही

पुत्र हैं। मैंने कई हजार वर्षों तक भारी तपस्या की है। मैंने मन, वाणी और क्रिया द्वारा भी पहले कभी कोई पाप नहीं किया है।'

उपर्युक्त तथ्यों से यह प्रमाणित होता है कि रामायण के उत्तरकांड के रचयिता को वाल्मीकि का दस्यु होना स्वीकार्य नहीं है।

प्रचलित वाल्मीकि रामायण में भार्गव च्यवन का दो प्रसंगों में उल्लेख हुआ है-बालकांड में राजा सगर की कथा के अन्तर्गत (1,70,32) तथा उत्तरकांड में लवणवध के वृत्तंत में (7, सर्ग-60-64)। इनमें भार्गव च्यवन और वाल्मीकि के सम्बन्ध का कहीं संकेत नहीं मिलता। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तरकांड की रचना के समय तक वाल्मीकि का सम्बन्ध भार्गवों से जुड़ गया हो, क्योंकि वाल्मीकि को प्रचेता का दसवां पुत्र माना गया है। कुमारसंभव[46] (2,11) में कालिदास ने भी प्रचेता और वरुण को एक ही माना है। ऋग्वेद (6,65 और 10.16) में भी ऐसा उल्लेख देखने को मिलता है।[47] आगे चलकर वाल्मीकि को भार्गव की उपाधि मिल गयी है।

महाभारत में रामचरित के रचयिता भार्गव का जो उल्लेख है वह संभवतः वाल्मीकि ही हैं क्योंकि जिस श्लोक का उल्लेख है वह प्रचलित रामायण के दाक्षिणात्य पाठ के एक श्लोक से बहुत कुछ साम्य है।

परवर्ती रचनाओं अर्थात् विष्णुपुराण (3,3,18) और मत्स्यपुराण (12,51) में वाल्मीकि को भार्गव माना गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि भार्गव च्यवन तथा वाल्मीकि के वृत्तन्तों के सम्मिश्रण से वाल्मीकि को भार्गव की उपाधि मिल गई हो।

'वाल्मीकि' की उत्पत्ति प्रायः 'वल्मीक' से मानी जाती है। अर्थात् दीमकों की बांबी से उत्पन्न। कहा भी गया है-'वल्मीके भवः अण् इञ्'। महाभारत के आरण्यक पर्व से ज्ञात होता है कि भृगु के पुत्र च्यवन ने खड़े होकर तपस्या करते हुए इतना समय व्यतीत किया कि उनका शरीर वल्मीक से आच्छादित हो गया था।

वाल्मीकि तथा च्यवन दोनों के सम्बन्ध में ऐसी मान्यता है कि वे वल्मीक से निकले थे। इसी कारण दोनों की कथाएं मिश्रित हो गई। कृत्तिवास रामायण में तो वाल्मीकि को च्यवन का पुत्र बना दिया गया है।

अश्वघोष ने अपने बुद्धचरित[48] में उल्लेख किया है कि जिस काव्य की रचना करने में च्यवन समर्थ नहीं थे, उसकी वाल्मीकि ने सृष्टि की:-

वाल्मीकिरादौ च ससर्ज पद्यं
जग्रन्थ यन्न च्यवनो महर्षिः॥ 1,43 ॥

एक प्रचलित कथा सुनने को मिलती है कि वाल्मीकि पहले डाकू थे और लम्बे समय तक तप करने के बाद ही वे रामायण की रचना करने में समर्थ हुए। लेकिन यह कथा विश्वसनीय नहीं प्रतीत होती। आर०सी० हाजरा ने अपने पुराणिक रेकार्डस में जानकारी दी है कि स्कन्दपुराण में सर्वप्रथम इस कथा का विकसित रूप मिलता है। इस पुराण की अधिकांश सामग्री आठवीं शताब्दी के बाद की है।[49]

महाभारत के अनुशासन पर्व से जानकारी मिलती है कि वाल्मीकि युधिष्ठिर से कहते हैं कि किसी विवाद में मुनियों ने मुझको ब्रह्मघ्न कहा था। इस कथनमात्र से मैं

Scanned with OKEN Scanner

पापी बन गया था। मैंने शिव की शरण ली और उन्होंने मुझको पापमुक्त कर कहा था-'तेरा यश श्रेष्ठ होगा।'

स्कन्दपुराण के वैष्णवखंड के वैशाखमासमाहात्म्य[50] में एक व्याध का वृत्तान्त मिलता है जो 'रामनाम' का जप करते हुए वरदान प्राप्त करता है कि वह अगले जन्म में वल्मीक नामक ऋषि के कुल में उत्पन्न होकर वाल्मीकि के नाम से यश प्राप्त करेगा।

स्कन्दपुराण के अवंतीखंड के आवन्त्य क्षेत्रमाहात्म्य में विष्णु शर्मा की कथा आई है। वह डाकू था और उसने सात ऋषियों को मारने के लिए रोक रखा था। उन ऋषियों ने अपने परिजनों से पूछने के लिए विष्णु शर्मा को भेजा कि वे परिजन से पूछ लें कि उसके पापफल के वे भागी बनेंगे? लेकिन विष्णुशर्मा अपने परिजन के जवाब से असंतुष्ट रहे और उन्होंने घोर तप किया। तेरह वर्षों बाद ऋषियों के पुनः वहां पहुंचने पर पाया कि विष्णुशर्मा का शरीर वल्मीक से ढंका है। ऋषियों ने उन्हें निकाल कर वाल्मीकि नाम दिया और रामायण लिखने का आदेश दिया।[51]

इसी प्रकार स्कन्दपुराण के नागरखंड में लोहजंघ नामक द्विज की कथा और प्रभासखंड के प्रभासक्षेत्रमाहात्म्य में शमीमुख ब्राह्मण के पुत्र वैशाख की कथा का वर्णन आया है जो चोरी कर अपने अपने परिजनों का जीविकोपार्जन करते थे। इन्हें भी सप्तऋषियों से भेंट हुई है। घोर तप के बाद इनका शरीर भी वल्मीक से ढंक जाता है जिसके कारण इन्हें वाल्मीकि कहा गया है।

'तत्वार्थसंग्रह रामायण'[52] में दस्यु वाल्मीकि की कथा आई है जिसमें कई अलौकिक घटनाओं का सन्निवेश किया गया है। अपने परिजनों से निराश व्याध जब सप्तऋषियों के समक्ष लौटता है तब वे उन्हें राम की महिमा बताने लगते हैं। इसी बीच एक आकाशवाणी होती है कि वे व्याध को 'म रा' मंत्र सिखायें। व्याध के कठित तप को देख कर इन्द्र को चिन्ता हुई। लेकिन आचार्य वृहस्पति ने इन्द्र को समझाया और कहा कि यह तपस्वी महर्षि बन कर रामायण की रचना करेगा।

इसी ग्रंथ के उत्तरकांड (7, 6) में उल्लेख किया गया है कि वाल्मीकि ने लक्ष्मी से वरदान पाया था कि त्रेतायुग में विष्णु दशरथ के यहां जन्म लेंगे। उस समय मैं पृथ्वी से प्रकट होकर राजा जनक की पुत्री बनूंगी। अन्त में लोकापवाद से लाभ उठाकर मैं पुत्री की तरह तुम्हारे आश्रम में शरण लेने आऊंगी।

आनन्द रामायण[53] में वाल्मीकि के तीन जन्मों की कथा का वर्णन देखने को मिलता है। पहले जन्म में वे स्तम्भ नामक ब्राह्मण हैं, दूसरे जन्म में व्याध हैं और तीसरे जन्म में कृणु का पुत्र हैं एवं तपस्या करने के पश्चात् वाल्मीकि बनते हैं। इसी ग्रंथ में उल्लेख किया गया है कि शंभु ने ब्रह्मा को रामचरित सुनाया था। नारद ने वह कथा ब्रह्मा से सुना और फिर नारद ने वाल्मीकि से वह कथा सुनाई। क्रौंचवध के अवसर पर श्लोक की उत्पत्ति हुई और वाल्मीकि ने 'शतकोटिविस्तरम्' रामायण की रचना की।

कृत्तिवास रामायण[54] में उल्लेख किया गया है कि रत्नाकर नाम का व्याध है जो च्यवन का पुत्र माना जाता है-'च्यवन मुनिर पुत्र नाम रत्नाकर'। इस ग्रंथ में सात ऋषियों से भेंट का वर्णन नहीं दिखलाकर, ब्रह्मा और नारद से भेंट दिखलाया गया है। वैराग्य

पापी बन गया था। मैंने शिव की शरण ली और उन्होंने मुझको पापमुक्त कर कहा था-'तेरा यश श्रेष्ठ होगा।'

स्कन्दपुराण के वैष्णवखंड के वैशाखमासमाहात्म्य[50] में एक व्याध का वृत्तान्त मिलता है जो 'रामनाम' का जप करते हुए वरदान प्राप्त करता है कि वह अगले जन्म में वल्मीक नामक ऋषि के कुल में उत्पन्न होकर वाल्मीकि के नाम से यश प्राप्त करेगा।

स्कन्दपुराण के अवंतीखंड के आवन्त्य क्षेत्रमाहात्म्य में विष्णु शर्मा की कथा आई है। वह डाकू था और उसने सात ऋषियों को मारने के लिए रोक रखा था। उन ऋषियों ने अपने परिजनों से पूछने के लिए विष्णु शर्मा को भेजा कि वे परिजन से पूछ लें कि उसके पापफल के वे भागी बनेंगे? लेकिन विष्णुशर्मा अपने परिजन के जवाब से असंतुष्ट रहे और उन्होंने घोर तप किया। तेरह वर्षों बाद ऋषियों के पुनः वहां पहुंचने पर पाया कि विष्णुशर्मा का शरीर वल्मीक से ढंका है। ऋषियों ने उन्हें निकाल कर वाल्मीकि नाम दिया और रामायण लिखने का आदेश दिया।[51]

इसी प्रकार स्कन्दपुराण के नागरखंड में लोहजंघ नामक द्विज की कथा और प्रभासखंड के प्रभासक्षेत्रमाहात्म्य में शमीमुख ब्राह्मण के पुत्र वैशाख की कथा का वर्णन आया है जो चोरी कर अपने अपने परिजनों का जीविकोपार्जन करते थे। इन्हें भी सप्तऋषियों से भेंट हुई है। घोर तप के बाद इनका शरीर भी वल्मीक से ढंक जाता है जिसके कारण इन्हें वाल्मीकि कहा गया है।

'तत्वार्थसंग्रह रामायण'[52] में दस्यु वाल्मीकि की कथा आई है जिसमें कई अलौकिक घटनाओं का सन्निवेश किया गया है। अपने परिजनों से निराश व्याध जब सप्तऋषियों के समक्ष लौटता है तब वे उन्हें राम की महिमा बताने लगते हैं। इसी बीच एक आकाशवाणी होती है कि वे व्याध को 'म रा' मंत्र सिखायें। व्याध के कठित तप को देख कर इन्द्र को चिन्ता हुई। लेकिन आचार्य वृहस्पति ने इन्द्र को समझाया और कहा कि यह तपस्वी महर्षि बन कर रामायण की रचना करेगा।

इसी ग्रंथ के उत्तरकांड (7, 6) में उल्लेख किया गया है कि वाल्मीकि ने लक्ष्मी से वरदान पाया था कि त्रेतायुग में विष्णु दशरथ के यहां जन्म लेंगे। उस समय मैं पृथ्वी से प्रकट होकर राजा जनक की पुत्री बनूंगी। अन्त में लोकापवाद से लाभ उठाकर मैं पुत्री की तरह तुम्हारे आश्रम में शरण लेने आऊंगी।

आनन्द रामायण[53] में वाल्मीकि के तीन जन्मों की कथा का वर्णन देखने को मिलता है। पहले जन्म में वे स्तम्भ नामक ब्राह्मण हैं, दूसरे जन्म में व्याध हैं और तीसरे जन्म में कृणु का पुत्र हैं एवं तपस्या करने के पश्चात् वाल्मीकि बनते हैं। इसी ग्रंथ में उल्लेख किया गया है कि शंभु ने ब्रह्मा को रामचरित सुनाया था। नारद ने वह कथा ब्रह्मा से सुना और फिर नारद ने वाल्मीकि से वह कथा सुनाई। क्रौंचवध के अवसर पर श्लोक की उत्पत्ति हुई और वाल्मीकि ने 'शतकोटिविस्तरम्' रामायण की रचना की।

कृत्तिवास रामायण[54] में उल्लेख किया गया है कि रत्नाकर नाम का व्याध है जो च्यवन का पुत्र माना जाता है-'च्यवन मुनिर पुत्र नाम रत्नाकर'। इस ग्रंथ में सात ऋषियों से भेंट का वर्णन नहीं दिखलाकर, ब्रह्मा और नारद से भेंट दिखलाया गया है। वैराग्य

उत्पन्न होने पर ब्रह्मा ने रत्नाकर को नदी में स्नान करने का सुझाव दिया। नदी पर रत्नाकर की दृष्टि पड़ते ही नदी सूख गई। ब्रह्मा ने रत्नाकर से राम नाम जपने को कहा, लेकिन रत्नाकर के पापी मुंह से यह पावन नाम उच्चरित नहीं होता है। तत्पश्चात् उसे 'म रा' जपने का परामर्श दिया जाता है।

एक अन्य कथा के अनुसार शिव और नारद से व्याध की भेंट होती है।[55] डे पोलिये[56] ने जानकारी दी है कि वाल्मीकि दो ऋषियों के कहने पर बारह वर्षों तक तपस्या की और वे 'भावी रामायण' लिखने में समर्थ हुए। मिथॉलॉजी डेस इंदू में यह भी वर्णन किया गया है कि वाल्मीकि ब्रह्मा के अवतार हैं।

डब्लू क्रूक[57] ने बताया है कि परमेश्वर ने गुरु नानक को वाल्मीकि के पास भेजा था। गुरु नानक के कहने पर वाल्मीकि ने अपनी पत्नी से पूछा कि तुम मेरे लिए अपने प्राण दे सकती हो? नकारात्मक उत्तर सुनकर वाल्मीकि ने चंडालगढ़ (चुनार, उत्तर प्रदेश) के गदा पहाड़ पर तपस्या की। वह स्थान कालान्तर में भंगियों का तीर्थ-स्थान बन गया। इन दिनों उत्तर भारत के हिन्दू भंगी अपने को वाल्मीकि के भक्त मानकर उनकी पूजा करते हैं। फादर कामिल बुल्के ने यह भी जानकारी दी है कि भंगियों द्वारा वाल्मीकि की पूजा संभवतः प्राचीन नहीं है। लेकिन फिर भी पांचवी शताब्दी ई0 तक राम की भांति वाल्मीकि को भी विष्णु का अवतार माना गया है। क्योंकि पांचवीं शताब्दी ई0 में रचित ग्रंथ 'विष्णु धर्मोत्तर पुराण' के प्रथम खंड में उल्लिखित है कि त्रेतायुग के अन्त में विष्णु वाल्मीकि के रूप में जन्म लेकर रामायण लिखने वाले थे (अध्याय-74-38)। इस रचना के तृतीय खंड में कई स्थलों पर वाल्मीकि की पूजा का भी उल्लेख किया गया है।[58]

एक प्रश्न और भी विवादास्पद बना हुआ है। वाल्मीकि का आश्रम आखिर था कहाँ? रामायण के बालकांड के अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि तमसा तथा गंगा के समीप ही वाल्मीकि आश्रम है-

स मुहूर्ते गते तस्मिन् देवलोकं मुनिस्तदा।
जगाम तमसातीरं जाह्नव्यास्त्वविदूरतः।।[59]

अर्थात्- उनके देवलोक पधारने के दो ही घड़ी बाद वाल्मीकि जी तमसा नदी के तट पर गये, जो गंगाजी से अधिक दूर नहीं था।

लेकिन यह 'तमसा' अयोध्या कांड (2, सर्ग-45-46) की तमसा से भिन्न गंगा की कोई उपनदी है। उत्तरकांड से यह जानकारी मिलती है कि वह नदी गंगा के दक्षिण में ही थी। क्योंकि सीता बनवास के समय लक्ष्मण और सीता अयोध्या से गंगा पार करने के पश्चात् ही वाल्मीकि आश्रम के निकट पहुंचते हैं :-

तदेतज्जाह्नवीतीरे ब्रह्मर्षीणां तपोवनम्।।[60]

अर्थात्- शुभे! यह रहा गंगाजी के तट पर ब्रह्मर्षियों का पवित्र एवं रमणीय तपोवन।

शत्रुघ्न के विषय में कहा जाता है कि वे वाल्मीकि आश्रम से पश्चिम की ओर जाते हुए 'यमुनातीरम्' पर उतरते हैं (सर्ग 66, 15)। कालान्तर में एक और परम्परा प्रचलित होने लगी जिसके अनुसार वाल्मीकि का आश्रम गंगा के उत्तर में माना जाता था।

Scanned with OKEN Scanner

रामायण टीकाकार कतक और गोविन्दराज उपर्युक्त 'यमुनातीरम्' के स्थान पर 'गंगातीरम्' ज्यादा विश्वसनीय मानते हैं।

रामायण के दाक्षिणात्य पाठ के एक प्रक्षेप के अनुसार राम, लक्ष्मण और सीता चित्रकूट के निकट ही वाल्मीकि के आश्रम में पहुंचते हैं।

इति सीता च रामश्च लक्ष्मणश्च कृतांजलिः।
अभिगम्याश्रमं सर्वे वाल्मीकिमभिवादयन्।।[61]

अर्थात्- ऐसा निश्चय करके सीता, श्रीराम और लक्ष्मण ने हाथ जोड़कर महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में प्रवेश किया और सबने उनके चरणों में मस्तक झुकाया।

पौराणिक कोश देखने से हमें जानकारी मिलती है कि उत्तरी बिहार के चंपारण जिलान्तर्गत भैंसालोटन ग्राम में वाल्मीकि आश्रम था। उनका यहां आश्रम होने के कारण ही राज्य सरकार ने दिनांक 14.01.1964 ई0 से इस स्थल का नामकरण 'वाल्मीकिनगर' किया है।[62]

उपर्युक्त तथ्यों से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि वैयाकरण वाल्मीकि, सुपर्ण वाल्मीकि और महाभारत में वर्णित महर्षि वाल्मीकि आदिकवि वाल्मीकि से भिन्न हैं। रामायण के बालकांड से ज्ञात होता है कि संभवतः प्रथम शताब्दी ई0 पूर्व से आदिकवि वाल्मीकि और महर्षि वाल्मीकि की अभिन्नता सर्वमान्य होने लगी थी और उन्हें राम का समकालीन बना दिया गया था। उत्तरकांड के रचनाकाल के समय तक वाल्मीकि को अयोध्या के राजवंश से घनिष्ठता स्थापित की गई थी। वाल्मीकि को ब्राह्मण की उपाधि मिल गई थी और वे प्रचेता के दसवें पुत्र माने जाने लगे।

वाल्मीकि की उत्पत्ति के विषय में भी निष्कर्ष यह निकलता है कि उनकी तपस्या के दौरान समस्त शरीर वल्मीक से आच्छादित हो गया था। महाभारत के भार्गव च्यवन की कथा भी इसी प्रकार प्रचलित थी। इससे च्यवन और वाल्मीकि के वृत्तान्तों का सम्मिश्रण होकर वाल्मीकि को भार्गव की उपाधि मिल गई।

वाल्मीकि आश्रम के स्थान पर चाहे कितना भी विवाद रहा हो लेकिन अध्यात्म रामायण (2,6), आनन्द रामायण (1,6), तुलसीकृत रामचरितमानस (2, 124) आदि बहुसंख्यक अर्वाचीन रामकथाओं में वाल्मीकि का आश्रम यमुना के पार चित्रकूट के पास ही स्थित अधिक विश्वसनीय माना गया है।

जिस प्रकार वाल्मीकि और उनके आश्रम को लेकर विवाद बना रहा उसी प्रकार विश्व के प्राचीनतम लौकिक संस्कृत के प्रथम महाकाव्य के रचनाकाल पर भी विवाद बना रहा है। इसके पीछे कई कारण हैं। कुछ विद्वान आदि रामायण और वाल्मीकि रामायण का काल निर्धारण अलग अलग करते हैं। यह भी प्रचलित रहा कि वाल्मीकि रचित रामायण का वर्तमान रूप (सात कांडों का) अधिकांश विद्वान दूसरी शताब्दी ई0 का मानते हैं।

विद्वान ए0 श्लेगेल[63] रामायण की रचना ग्यारहवीं शताब्दी ई0 पूर्व मानते हैं लेकिन जी0 गोरेसियो[64] इस ग्रंथ की रचना बारहवीं शताब्दी ई0 पूर्व का मानते हैं।

एम0 विन्टरनिट्ज और एच0 याकोबी अपने अनुसंधान के पश्चात् लगभग काफी निकट पहुंचते हैं। एच0 याकोबी[65] प्रचलित रामायण का काल पहली अथवा दूसरी शताब्दी ई0 को मानते हैं। एम0 विन्टरनिट्ज[66] दूसरी शताब्दी ई0 को अधिक समीचीन मानते हैं।

सी0वी0 वैद्य[67] इसकी रचना का काल दूसरी शताब्दी ई0 पू0 तथा दूसरी शताब्दी ई0 के बीच मानते हैं, यद्यपि वे पहली शताब्दी ई0 पू0 अधिक संभव मानते हैं।

कालिदास के समय में रामायण ने अपना प्रचलित रूप धारण कर लिया था। महाभारत के आरण्यक पर्व के रचनाकाल में बालकांड और उत्तरकांड की कुछ सामग्रियां प्रचलित हो चुकी थी। इसलिए अधिक संभव है कि प्रचलित रामायण का रूप दूसरी शताब्दी ई0 के बाद का नहीं है। आदि रामायण, प्रचलित रामायण से इतना भिन्न है कि अभी उस पर और गहन शोध करने की आवश्यकता है। इसलिए वाल्मीकिकृत रचना कम से कम तीसरी शताब्दी ई0 पूर्व की होगी।[68]

प्रामाणिक वाल्मीकिकृत रामायण में बौद्धधर्म विषयक कोई निर्देश नहीं मिलता। इसलिए यह स्पष्ट है कि वाल्मीकि रामायण की रचना बुद्ध से पूर्व अर्थात् पांचवीं शताब्दी ई0 पूर्व में हुई होगी। यह एम0 मोनियर विलियम्स और सी0 वी0 वैद्य का प्रधान तर्क है।[69]

ए0 बी कीथ डॉ0 याकोबी के ग्रंथ के बीस वर्ष बाद उनके तर्कों का विश्लेषण और खंडन के पश्चात् आदि रामायण की रचना चौथी शताब्दी ई0 पूर्व का मानते हैं। एम0 विन्टरनिट्ज प्रायः ए0बी0 कीथ से सहमत हैं। लेकिन वे वाल्मीकि को तीसरी शताब्दी ई0 पूर्व का मानते हैं।[70]

यह मान्यता इससे भी संभव प्रतीत होता है कि वाल्मीकि ने लगभग तीन सौ ई0 पूर्व में अपनी अमर रचना की सृष्टि की हो। इसकी पुष्टि पाणिनि से भी होती है। पाणिनि में रामायण, वाल्मीकि अथवा रामायण की चर्चा या उसके प्रमुख पात्रों का कोई उल्लेख नहीं है। लेकिन उनके समय में रामकथा प्रचलित हो चुकी थी और सूत्रों में कैकेयी, कौशल्या और शूर्पणखा का संकेत मिलता है।

संदर्भ-सूची

1. एच0 याकोबी : 'पउमचरियं', भावनगर 1914:
2. नाथूराम प्रेमी : जैन साहित्य और इतिहास, पृ. 280
3. फादर कामिल बुल्के : रामकथा-उत्पत्ति और विकास, पृ.53
4. पउमचरियं : 25, 7, और 8, पृ.216
5. पउमचरियं-भाग-1, 1, गाथा-8, पृ. 2.
6. डा0 देवनारायण शर्मा : पउमचरिउ तथा रामचरितमानस-एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ.31.
7. डा0 नेमिचन्द्र शास्त्री: हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन: पृ. 293-34

Scanned with OKEN Scanner

जैनाचार्य की आत्मानन्द शताब्दी स्मारक "महाकवि विमलसूरि..." पृ0-101

8\. (क) एच0 याकोबी : इन्साक्लोपीडिया ऑफ रिलिजन एंड एथिक्स-भाग-7 और मॉड
9\. रिव्यू 1914 दिसम्बर।
(ख) ए0बी0 कीथ : हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ0-34
(ग) ए0सी0 वूलनर : इन्ट्रोडक्शन टु प्राकृत
10\. ... मानिक चन्द्र ग्रंथमाला नं0 29-31, 'पद्मचरित : बम्बई, विक्रम सं0-1985.
11\. ... डा0 नेमिचन्द्र शास्त्री : प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ.31
12\. ... डा0 डी0एन0 शर्मा : पउमचरिउ तथा रामचरितमानस:एक सांस्कृतिक अध्ययन-पृ0-33-3
13\. विमलसूरि: पउमचरियं-भाग-1, पृ.8
14\. इन्साइक्लोपीडिया ऑफ इन्डियन लिटरेचर : भाग-5, पृ.4577-78
15\. डा0 हीरालाल जैन-भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृ0-130
16\. डा0 के0आर0चन्द्रा : ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ पउमचरियं।
17\. पउमचरियं, भाग-1, 2, 37, पृ0-11
18\. पउमचरियं, भाग-1, 3.62, पृ.22
19\. पउमचरियं, भाग-1, 4.58, पृ0-35
20\. पउमचरियं, भाग-1, 5.168, पृ0-49
21\. उपमितिभव प्रपंच कथा, प्राक्कथन, पृ0 10
22\. जैन साहित्य और इतिहास, पृ.88
23\. जैन युग पुस्तक-1, अंक-5, पौष 1982
24\. पउमचरियं, भाग-2, 8.32, पृ.404
25\. अंगविज्जय', पृ. 92-93
26\. कलेक्टेड वर्क्स ऑफ आर0जी0 भंडारकर-भाग-1, पृ.46
27\. ए लेटर फ्रौम प्रो0 नेमिचन्द्र शास्त्री, आरा, दिनांक-17.2.1961, टू डॉ0 के0 आर0 चन्द्र
28\. सेलेक्टेड इन्सक्रीप्शन : भाग-1, पृ.407
29\. डॉ0 ए0 एस0 अल्टेकर : दि वाकाटक गुप्ता एज, पृ.105
30\. के0 आर0 चन्द्र : न्यू लाईट आन दि डेट ऑफ 'पउमचरियं', जर्नल ऑफ दि ओरियन्टल इन्स्टीच्यूट, बड़ौदा, भाग-13, नं0-4, पृ.378
31\. कल्याण : संक्षिप्त वाल्मीकी रामायणांक- 'आदिकवि वाल्मीकि', लेखक- बलदेव उपाध्याय, एम0ए0 साहित्याचार्य, पृ.12
32\. वाल्मीकि रामायण : खंड-1 प्रथम संस्करण, सं0 2017, गीताप्रेस, पृ.1
33\. 'काव्यबीजं सनातनम्'--वृहद्धर्म पुराण-1/30/47
34\. ओम प्रकाश तिवारी, रिपोर्टर, मुम्बई, दैनिक जागरण (पटना नगर): दिनां 16.11.07
35\. एम0 विन्टरनिट्ज, हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर, (पउमचरियं-भाग-1, पृ0-6)
36\. वा0रा0, भाग-2, 7, सर्ग-49, श्लो0-21, पृ0-727
37\. वा0रा0, खंड-1, सर्ग-1, श्लो0-8 पृ0-25
38\. वाल्मीकि रामायण: बालकांड, उत्तरकांड
39\. बेवर, ऑन दि रामायण- टिप्पणी, पृ.17
40\. एच0 याकोबी, डस (DAS) रामायण, टिप्पणी-पृ.66

41\. इन्साइक्लोपिडिया ऑफ इन्डियन लिटरेचर-भाग-5, मुख्य संपा0-मोहनलाल, पृ0-4483
42\. महाभारत
43\. फादर कामिल बुल्के, रामकथा-उत्पत्ति और विकास, पृ.24
44\. वा0रा0: भाग-2, 7, सर्ग-47, श्लो0-16, पृ0-724
45\. वा0रा0: खंड-2, 7, सर्ग-96, श्लो0-19, पृ0-808.
46\. कालिदास : कुमारसंभव
47\. ऋग्वेद।
48\. अश्वघोष : बुद्धचरित् (1.43)
49\. आर0 सी0 हाजरा : पुराणिक रेकार्ड्स, पृ.165
50\. स्कन्दपुराण : वैष्णव खंड, वैशाखमासमाहात्म्य
51\. स्कन्दपुराण : अवंतीखंड, आवन्त्यक्षेत्रमाहात्म्य
52\. तत्वार्थसंग्रह रामायण : अयोध्याकांड, उत्तरकांड
53\. आनन्द रामायण: राज्यकांड (अध्याय-14)
54\. कृत्तिवास रामायण
55\. इन्डियन एन्टीक्वेरी
56\. मिथॉलॉजी डेस इंदू, भाग-1, पृ.178
57\. ट्राइब्स एंड कास्ट्स, भाग-1, पृ.262
58\. फादर कामिल बुल्के : रामकथा-उत्पत्ति और विकास, पृ0-33-34
59\. वा0रा0 भाग-1, 1, सर्ग-2, श्लो0-3 पृ0-31
60\. वा0रा0, खंड-2, सर्ग-47, श्लो0-15,पृ0-723
61\. वा0रा0, खंड-1, 2, सर्ग-56, श्लो0-16,पृ0-342
62\. राणा प्रसाद शर्मा : पौराणिक कोश, पृ.462
63\. ए0 डब्लू श्लेगेल : जर्मन ओरियन्टल जर्नल, भाग-3, पृ0-379
64\. जी0 गोरेसियो: रामागण, भाग-10, भूमिका
65\. एच0 याकोबी : डस (DAS) रामायण, पृ0-100
66\. एम0 विन्टरनिट्ज : हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर, भाग-1, पृ0500, 517
67\. सी0वी वैद्य : दि रिडिल ऑफ दि रामायण, पृ0-20 और 51
68\. फादर कामिल बुल्के : रामकथा-उद्भव और विकास, पृ0-24
69\. एम0एम0 विलियम्स : इन्डियन एपिक पोएट्री (लंदन-1863), पृ0-3
70\. (क) जर्नल रायल एशियाटिक सोसायटी-1915 (पृ0-318-28)
(ख) दि एज ऑफ दि रामायण

Scanned with OKEN Scanner

तृतीय अध्याय

(क) पउमचरियं की कथावस्तु :-

विमलसूरिकृत 'पउमचरियं में कुल एक सौ अठारह पर्व संग्रहीत हैं। इनमें एक से पैंतीस तक के पर्व को उद्देश्य कहा गया है और छत्तीस से लेकर एक सौ अठारह तक के अंश पर्व के रूप में जाने जाते हैं। इसके सम्बन्ध में डॉ0 के0 आर0 चन्द्रा ने भी अपनी पुस्तक 'दि क्रिटिकल स्टडीज़ ऑफ पउमचरियं' में कोई कारण बता पाने में अपनी असमर्थता व्यक्त की है।[1]

ग्रंथकार विमलसूरि ने अपनी रचना पउमचरियं का प्रारम्भ तीर्थंकरों की वंदना से किया है। वे कहते हैं कि पद्म की कथा (पउमचरियं) परम्परागत रूप से जो मिली है, उसका वर्णन वे कर रहे हैं। उन्होंने अपना नाम बताया और जिस शैली में वह रचना करने वाले हैं- उसका उल्लेख किया:-

सुत्ताणुसारसरसं, रइयं गाहाहि पायडफुडत्थं।
विमलेण पउमचरियं, संखेवेणं निसामेह[2] ॥

अर्थात्- सूत्रों (आगमों) के अनुसार तथा रसपूर्ण यह पद्मचरित विमल ने प्रकट एवं स्फुट अर्थ से प्राकृत गाथाओं में लिखा है। इसे तुम संक्षेप से सुनो।

पउमचरियं नामक इस पुराण में सात अधिकार हैं- 1. विश्व की स्थिति, 2. वंशोत्पत्ति, 3. युद्ध के लिए प्रस्थान, 4. युद्ध, 5. लवण एवं अंकुश की उत्पत्ति, 6. निर्वाण, 7. अनेक भव।

संक्षेप में भगवान महावीर की जीवनी, विपुलगिरि पर्वत पर उनका आगमन, राजा श्रेणिक द्वारा उनके प्रति सम्मान प्रदर्शन का उल्लेख है। दूसरे दिन राजा श्रेणिक भगवान महावीर के प्रथम गणधर गौतम से भेंट करते हैं और रामकथा सम्बन्धी अपनी शंकाओं का उल्लेख करते हैं। राजा श्रेणिक, गौतम से सच्ची कथा कहने का अनुरोध करते हैं। अब गौतम सच्ची कथा कहने लगते हैं।

गौतम, राजा से दृष्टि का संक्षिप्त वृत्तान्त, समय चक्र और चौदह कुलकर वंश का भी विवरण देते हैं। वह भगवान ऋषभदेव की जीवनी बताते हैं और तीन सामाजिक भेदों-क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की उत्पत्ति की जानकारी देते हैं। फिर दो भाइयों-भरत और बाहुबली के युद्ध और चौथी सामाजिक रचना ब्राह्मण के सम्बन्ध में उल्लेख करते हैं।

ब्राह्मण के सम्बन्ध में 'लोक स्थिति-ऋषभ-ब्राह्मण अधिकार' नामक चतुर्थ उद्देश्य में कहा गया है--

मा हणसु पुत्त ! एए, जं उसभजिणेण वारिओ भरहो।
तेण इमे सयल च्चिय, वुच्चन्ति य माहणालोए ॥[3]

अर्थात्- 'हे पुत्र! इन्हें मा हण (मत मार)'-इस प्रकार कह कर ऋषभ जिनेश्वर ने भरत को रोका, अतः वे सब लोक में 'माहण' (ब्राह्मण) कहलाए।

उसके बाद गौतम, इक्ष्वाकु, सोम और विद्याधर आदि की उत्पत्ति का हाल बताते हैं। फिर भगवान अजित तथा विद्याधर राजा मेघवाहन को लंकापुरी और पातालालंकरपुर के प्रथम राजा के रूप में उल्लेख करते हैं--

एवं तु महावंसे, वोलीणे मेहवाहणो जाओ।
रक्खससुओ महप्पा, मणवेगाए समुप्पन्नो ॥
तस्स य नामेण इमो, रक्खसवंसो जयम्मि विक्खाओ।[4]

अर्थात्- कवि ने लिखा है-अनेक पीढ़ियों के बाद इस महा वंश में मेघवाहन हुआ। मनोवेगा नाम की पत्नी से उसे महात्मा राक्षस नामक पुत्र हुआ। उसके नाम से राक्षस वंश जगत् में प्रसिद्ध हुआ। फिर चक्रवर्ती सगर के पुत्रों की मृत्यु की कथा आती है और राक्षसवंश की उत्पत्ति की कथा आती है।

गौतम आगे विद्याधर श्रीकंठ को किष्किन्धिपुर के पहले राजा के रूप में उल्लेख करते हैं। यह किष्किन्धिपुर वानरद्वीप में अवस्थित था। श्रीकंठ का एक वंशज अमरप्रभ, वानर वंश की स्थापना करता है:-

वानरचिन्धेण इमे, छत्ताइ निवेसिया कई जेण।
विज्जाहरा जणेणं, वुच्चन्ति हु वाणरा तेणं।।[5]

कवि ने ग्रंथ में उल्लेख किया है कि वानर के चित्र मंगलकारी होते हैं। इसलिए इनके चित्र छातों में, तोरणों में, ध्वजाओं पर, महलों के शिखर एवं मुकुटों में चित्रित किये जाने चाहिए-आगे चलकर विद्याधर ही वानर कहलाए।

यह अपने राज्य का प्रतीकचिह्न वानर के रूप में स्वीकार करता है। उसके बाद किष्किन्धिपुर और लंकापुरी के बीच द्वन्द्व युद्ध की बात आती है। यह वानर कुल की ओर से अशनिवेग थे और राक्षस की ओर से सुकेश थे। बाद में सुकेश के पुत्र मालि अपने पैतृक राज लंका पर अधिकार कर लेता है।

अशनिवेग के पौत्र और सहसरार के पुत्र इन्द्र से मालि की शत्रुता होती है। मालि, इन्द्र पर आक्रमण करता है लेकिन मारा जाता है। इन्द्र-सोम, वरुण, कुबेर और यम को चार दिशाओं का दिक्पाल नियुक्त करता है। वैश्रवण (वेसमण या धनद) को पांचवें लोकपाल के रूप में लंका का शासक नियुक्त करता है। मालि का छोटा भाई सुमालि, भय के कारण पाताललोक में जा छिपता है। सुमालि के पुत्र का नाम रत्नश्रवा है। रत्नश्रवा का विवाह कैकसी से होता है। कैकसी से दशमुख रावण, भानुकर्ण (कुम्भकर्ण), चन्द्रनखा और विभीषण का जन्म होता है। रावण को विभिन्न विद्याओं की जानकारी होती है। इससे उसे अपने पैतृक राज्य लंका पर अधिकार करने में मदद मिलती है।

आगे गौतम, रावण के साथ मन्दोदरी और अन्य कन्याओं के विवाह का हाल तथा उसकी वीरता की कहानियों का वर्णन करते हैं। मन्दोदरी के अलावा अन्य कन्याओं से दशमुख के गान्धर्व विवाह के सम्बन्ध में कवि ने अपने ग्रंथ में उल्लेख किया है:-

Scanned with OKEN Scanner

अहवहमुहेण ताओ गन्धव्व विहीए पवरकन्नाओ।
रूव-गुणसालिणीओ, परिणीयाओ सहरिसेणं॥[6]

इसके पश्चात् हर्षयुक्त दशमुख ने रूप एवं गुणशाली उन उत्तम कन्याओं के साथ गन्धर्व विधि से विवाह किया।

रावण, धनद को परास्त करता है। भवनालंकार हाथी का दमन करता है। यम को पराजित करता है और किष्किन्धिपुर का राज्य, किष्किन्धि के पुत्र आदित्यरजा को वापस दिलाता है।

इसके बाद खर-दूषण द्वारा चन्द्रनखा के अपहरण की घटना आती है।

खरदूसणेणं, अणुरागसमोत्थरन्तहियएणं।
विज्जाबलेण हरिया, चन्दणहा चन्दसरिसमुही॥[7]

अर्थात्- 'अनुरागवश उछलते हुए हृदयवाले खरदूषण ने विद्या के बल से चन्द्रमा के समान मुखवाली चन्द्रनखा का अपहरण किया।'

फिर आदित्यरजा के पुत्र बालि की रावण से शत्रुता की बात आती है। बालि अपने भाई सुग्रीव को राज्य सौंपकर स्वयं वैराग्य ग्रहण करता है:-

ठविऊण कुलाधारं, सुग्गीवं उज्झिऊण गिहवासं।
निक्खान्तो च्चिय वाली, पासे मुणिगयणचन्दस्स॥[8]

अर्थात्-' अपने कुल के आधाररूप सुग्रीव को राज्य पर स्थापित करके और गृहवास का त्याग करके बालि ने गगनचन्द्र नामक मुनि के पास दीक्षा अंगीकार की।'

फिर रावण द्वारा अष्टापद पर्वत (कैलाश) उठाने की बात आती है जिससे बालि परेशान होता है।

रावण अनेक खेचर सरदारों को वश में करता है और पातालालंकारपुर पहुँचता है। वहां खर-दूषण द्वारा उसका स्वागत होता है। रावण युद्ध अभियान पर चलता है और महेश्वर राजा तथा अन्य राजाओं को अपने वश में करता है।

राजगृह के राजा मरुत के पशुबलि यज्ञ को रावण रोकता है और उसकी पुत्री कनकप्रभा से विवाह करता है। कनकप्रभा से कृतचित्र का जन्म होता है। रावण, कृतचित्र का विवाह मथुरा के राजा मधु से करता है। फिर वह नल-कूबर को पराजित करता है और उसकी पत्नी उपरम्भा का प्रेम प्रस्ताव अस्वीकार कर देता है। इसके बाद रावण इन्द्र को पराजित करता है।

रावण अनन्तवीर्य के प्रति श्रद्धा समर्पित करता है और प्रतिज्ञा करता है कि किसी स्त्री की सहमति के बिना वह उससे आनन्दभोग नहीं करेगा।

रावण, वरुण से युद्ध करता है लेकिन पराजित हो जाता है। पवनंजय नाम के एक वानर राजा की मदद से वह वरुण से संधि कर लेता है। लेकिन इस बीच वह युद्ध की तैयारी जारी रखता है। कुछ समय बाद पवनंजय के पुत्र हनु की मदद से रावण, वरुण को पराजित करता है। इस तरह वह भारतवर्ष के तीनों भागों का सम्राट् हो जाता है।

यहाँ राजा श्रेणिक, गौतम से निवेदन करते हैं कि वे जैन धर्म के महान् पुरुषों के

बारे में, विशेष रूप से आठवें महापुरुष, बलदेव अर्थात पद्म अर्थात् राम के बारे में बतायें। गौतम उसके बाद तिरेसठ महापुरुषों के बारे में बताते हैं।

राम की कथा बताने से पहले गौतम, हरिवंश की उत्पत्ति की बात बताते हैं और तीर्थकंर मुनिसुव्रत जो हरिवंश परम्परा के थे, उनके बारे में बताते हैं। फिर उसी वंश के मिथिला नरेश विश्वकेतु और उनके पुत्र जनक के बारे में बताते हैं। फिर इक्ष्वाकु राजाओं के बारे में भी बताते हैं-जैसे वज्रबाहु, कीर्तिधर, सुकोशल, नहुष और सुदास आदि। फिर उनके वंशज अनन्तरथ और दशरथ कथा भी आती है। दशरथ राजा होते हैं। उनका विवाह अपराजिता और सुमित्रा से होता है।

विमलसूरिकृत पउमचरियं के पर्व 1 से 20 तक के अंश में विद्याधर वंश, राक्षस वंश और वानरवंश का उल्लेख किया गया है। इसी राक्षसवंश में रावण का उल्लेख हुआ है।

इस काव्य में रत्नश्रवा और केकसी की चार संतान हैं-दशमुख (रावण), भानुकर्ण (कुम्भकर्ण), चन्द्रनखा (शूर्पणखा) और विभीषण। रत्नश्रवा ने जब अपने बड़े पुत्र को पहलीबार देखा था तब उसके गले में एक माला थी। नौ मोतियों में उसका सिर प्रतिबिम्बित हो रहा था जिसके कारण रत्नश्रवा ने उसे दशमुख का संबोधन किया--

रयणकिरणेसु एत्तो मुहाईं नव नियवयणसरिसाइं।
हारे दिट्ठाईं फुडं, तेण कयं दहमुहो नामं॥[9]

अर्थात्- रत्नों की किरणों के कारण उसके मुख के जैसे ही दूसरे नौ मुख हार में अत्यन्त स्पष्ट दिखाई दिये, जिससे उसका नाम दशमुख रखा गया।

कथा के आगे दशमुख अपने मौसेरे भाई वैश्रमण (वैश्रणव) के वैभव देखकर ईर्ष्या करता है। वह अपने दूसरे भाइयों के साथ गहन तप करता है और कई तरह की विद्याओं को प्राप्त करता है। इसी के आगे दशमुख मंदोदरी सहित छै हजार विद्याधर कन्याओं के साथ विवाह करता है। वैश्रमण तथा यम को युद्ध में पराजित कर पुष्पक विमान प्राप्त करता है और लंका में प्रवेश करता है:-

सो एरिसबलसहिओ, उप्पइओ उययसामलं गयणं।
वच्चइ य दाहिणदिसं, लंकानयरीसवडहुत्तो॥[10]

अर्थात्- ऐसे सैन्य के साथ वह जल के समान नीलवर्ण वाले आकाश में उड़ा और लंका नगरी के सम्मुख दक्षिण दिशा की ओर प्रयाण किया।

कथा के आगे रावण-बालि संघर्ष की विवेचना है। रावण अपने दूत को भेजकर बालि से उसकी बहन श्रीप्रभा को पत्नीस्वरूप भेजने का आदेश देता है। साथ ही वह बालि से अपने दरबार में आकर प्रणाम करने का आदेश भिजवाता है। बालि को तो मात्र जिनवरेन्द्र के समक्ष ही प्रणाम करना स्वीकार्य है। वह रावण की आज्ञा ठुकरा कर अपने भाई सुग्रीव को राज्य देकर जैन दीक्षा लेने चला जाता है।

ठविऊण कुलाधारं, सुग्गीवं उज्झिऊणगिहवासं।
निक्खन्तो च्चिय वाली, पासे मुणिगयण चन्दस्स॥[11]

Scanned with OKEN Scanner

अर्थात्- अपने कुल के आधार रूप सुग्रीव को राज्य पर स्थापित करके और गृहवास का त्याग करके बालि ने गगनचन्द्र नामक मुनि के पास दीक्षा अंगीकार की।

लेकिन राज्यप्राप्ति के बाद अनुज सुग्रीव ने रावण को प्रणाम किया और अपनी बहन श्रीप्रभा को भी रावण को समर्पित कर दिया। आगे फिर बालि-रावण युद्ध होता है। रावण द्वारा उठाये हुए पर्वत को बालि अपने पैर के अंगूठे से दबाता है। इसका उल्लेख कवि ने 9 वें उद्देश्य के 75-76 गाथा में किया है। इसी तरह कवि ने कथा का विस्तार करते हुए सहस्रकिरण, नलकूबर, इन्द्र, वरुण आदि शक्तिशाली राजाओं पर विजय प्राप्त करते हुए रावण को दिखाया है। कवि ने यहां यम, इन्द्र, वरुण आदि को देवता न मान कर सामान्य राजा के रूप में चित्रित किया है। खरदूषण किसी विद्याधर वंश का राजकुमार है और वह रावण की बहन चन्द्रनखा से विवाह करता है।

कवि ने आगे रावण को एक धर्मभीरू जैनी के रूप में चित्रित किया है। रावण जिन-मंदिरों का जीर्णोद्धार करता है। वह ऐसे यज्ञों पर प्रतिबन्ध लगाता है जहां पशुओं की बलि दी जाती है। नलकूबर की पत्नी उपरंभा के प्रेम प्रस्ताव को अस्वीकार करता है। अनन्तवीर्य से धर्मोपदेश प्राप्त कर रावण प्रतिज्ञा करता है कि वह परनारी के साथ रमण नहीं करेगा।

कथा में हनुमान का वर्णन किया गया है। हनुमान पवनंजय तथा अंजना सुन्दरी का पुत्र है। वह वरुण के विरुद्ध रावण की सहायता करता है और चन्द्रनखा की पुत्री अनंगकुसुमा से शादी करता है। इसके बाद भी हनुमान की और शादियों का उल्लेख है। रावण चरित्र के अन्त में जिनवरों, तीर्थंकरों, बलदेवों, वासुदेवों और प्रतिवासुदेवों के नामों का उल्लेख किया गया है।

पउमचरियं के उद्देश्य 21 से 32 तक के अंशों में कवि विमलसूरि ने जनक और दशरथ की वंशावली का वर्णन किया है।

दशरथ का विवाह अपराजिता और सुमित्रा के साथ हुआ है। नारद, दशरथ को आकर सूचना देते हैं कि विभीषण उसकी हत्या करने की योजना बना रहा है। किसी ज्योतिषी ने रावण को बताया है कि सागरमार्ग से प्रवेश कर दशरथ पुत्र और जनकपुत्री, रावण के वध का कारण बनेगी। इसी तरह नारद ने जनक को भी सावधान किया। दोनों राजा अपना-अपना राज्य छोड़, पृथ्वी पर भ्रमण करने लगते हैं। दूसरे किसी को इसकी जानकारी न हो इसलिए मंत्रियों ने दोनों राजाओं की मूर्तियां बनवा कर उनके महलों में रखवा दिया। आगे चलकर विभीषण ने दशरथ की मूर्ति का सिर कटवाया।

तडिविलसिएण सिग्घं, विहीसणाणत्तियाएँ भवणवरं।
पविसेऊण य दिन्नं, सोसं चिय कित्तिमनिवस्स॥[12]

अर्थात्- विभीषण की आज्ञा से महल में दाखिल होकर कृत्रिम राजा का मस्तक फौरन ही तलवार से काट डाला गया।

बाहर भ्रमण करते हुए दशरथ और जनक कैकेयी के स्वयंवर में आये और कैकेयी ने दशरथ के गले में माला डाली। स्वयंवर में उपस्थित दूसरे राजाओं का दशरथ के साथ

युद्ध होता है। इस युद्ध में दशरथ के रथ को कैकेयी ने ही कुशलता से चलाया जिसके कारण दशरथ को विजय मिली। दोनों राजा अपनी-अपनी राजधानी लौट गये। दशरथ ने कैकेयी की वीरता से प्रसन्न होकर एक वर मांगने को कहा। कैकेयी ने अवसर आने पर वर मांगने की बात कही।

इन उद्देश्यों के बीच दशरथ की संतान के रूप में राम अथवा पद्म अपराजिता (कौशल्या) से जन्म लेते हैं, लक्ष्मण सुमित्रा से और भरत एवं शत्रुघ्न, कैकेयी से। उन लोगों को युद्ध की शिक्षा मिलती है।

छब्बीसवें उद्देश्य में पुत्री सीता और पुत्र भामण्डल का जन्म, राजा जनक की महारानी विदेहा के गर्भ से होता है। लेकिन पुत्र का अपहरण हो जाता है और उसे एक बागीचे में फेंक दिया जाता है। रथनूपुर का विद्याधर राजा खेचर चन्द्रगति उस बालक को देख लेता है और उसका पालन पोषण करता है। उस बालक का नाम भामण्डल होता है।

इस बीच एक म्लेच्छ राजा का जनक के राज्य पर आक्रमण होता है। जनक दशरथ से मदद मांगते हैं। दशरथ अपने पुत्र राम और लक्ष्मण को मदद के लिए भेजते हैं। राम म्लेच्छों के विरुद्ध राजा जनक की सहायता करते हैं जिसके कारण राजा जनक अपनी पुत्री सीता से विवाह कराने का वचन देते हैं। आगे चलकर सीता-स्वयंवर के अवसर पर राम ने धनुष चढ़ाया और राम-सीता का विवाह सम्पन्न हुआ।

अह ते महाभुयगां, निययसहावट्ठिया परमसोमा।
धणुयं पि विगयजालं, गहियं रामेण सहस त्ति॥[13]

अर्थात्- उस समय वे बड़े-बड़े सर्प अपने पूर्व रूप में स्थित हो अत्यन्त सौम्य बन गये और अग्नि की ज्वाला से रहित धनुष को भी राम ने सहसा उठा लिया।

दशरथ को वैराग्य हुआ। वे राम का राज्याभिषेक करना चाहते हैं। भरत भी ऐसा ही सोचते हैं। कैकेयी चिन्तित हुई। भरत को सांसारिक बंधनों में बांधे रखने के लिए कैकेयी ने अपने वर के बल पर राजा दशरथ से भरत के लिए राज्य मांग लिया। लेकिन भरत अपने बड़े भाई का अधिकार प्राप्त नहीं करना चाहता है। राम को जब इसकी जानकारी मिलती है तब पिता के वचन की रक्षा करने के उद्देश्य से राम, लक्ष्मण और सीता दक्षिण की ओर स्वेच्छा से गये। पश्चातापिनी कैकेयी के अनुरोध पर भरत, वन में जाकर राम से राज्य स्वीकारने का अनुरोध करते हैं। अनुरोध ठुकराने पर भरत अयोध्या लौटकर स्वयं राज्यभार ग्रहण करते हैं। आगे चलकर भरत किसी मुनि के समक्ष यह प्रतिज्ञा करते हैं कि राम के लौटने पर मैं दीक्षा ग्रहण करूँगा।

भरहो नमिऊण मुणी, तस्स य पुरओ अभिग्गहं धीरो।
गण्हइ रामदरिसणे, पव्वज्जा हं करिस्सामि ॥[14]

अर्थात्- मुनि को नमस्कार करके धीर भरत ने उसके समक्ष यह अभिग्रह लिया कि राम का दर्शन होने पर मैं दीक्षा लूंगा।

वन-भ्रमण

उद्देश्य 33 का प्रारम्भ चित्रकूट से होता है। राम अथवा लक्ष्मण द्वारा कई राजाओं

Scanned with OKEN Scanner

की पराजय का वर्णन मिलता है। उद्देश्य 33 में वज्रकर्ण के विरोधी सिंहोदर की पराजय, उद्देश्य चौतीस में म्लेच्छों के राजा, जिसने कल्याणमालिनी के पिता को कारागार में रखा था, की पराजय, भरत के विरोधी अतिवीर्य की पराजय की कथा पर्व सैंतीस में उल्लिखित है। इन युद्धों में और कई अवसरों पर लक्ष्मण को विवाह हेतु कन्याएं प्रदान की जाती हैं। वे सभी को स्वीकार भी करते हैं और कहते हैं कि लौटते समय उन्हें ले जाऊंगा। इस प्रकार वज्रकर्ण आठ कन्याओं को तथा सिंहोदर आदि राजाओं द्वारा तीन सौ कन्याएं लक्ष्मण को प्रदान की जाती हैं।

सीहोयरमाईहिं, अन्नेहि वि पत्थिवेहि कन्नाणं।
थणजहणसालिणीणं, सयाणि तिण्णेव दिन्नाइं।।[15]

अर्थात्- सिंहोदर आदि दूसरे राजाओं ने भी स्तन एवं जघन से सुन्दर दिखाई देने वाली तीन सौ कन्याएं दीं। इनके अलावा लक्ष्मण वनमाला, रतिमाला और जितपद्मा को भी प्राप्त करते हैं।

बीच-बीच में राम लक्ष्मण की भेंट कई मुनियों-ब्राह्मणों से होती है। उद्देश्य पैंतीस में कपिल नामक ब्राह्मण से भेंट होने का वर्णन है। देवभूषण तथा पद्मभूषण नामक मुनियों से भेंट पर्व उन्चालीस में उद्धृत है। राम की आज्ञा से राजा सुरप्रभ ने वंश पर्वत पर बहुत से मंदिरों का निर्माण करवाया। इसी कारण इसका नाम रामगिरि रखा गया।

रामेण जम्हा भवणोत्तमाणि, जिणिन्दचन्दाण निवेसियाणि।
तत्थेव तुंगे मिलप्पभाणि, तम्हा जणे रामगिरी पसिद्धो।।[16]

अर्थात्- चूंकि राम ने उस ऊंचे पर्वत पर जिनेन्द्रों के निर्मल कान्तिवाले उत्तम भवन स्थापित किये थे, इसलिए लोगों में वह रामगिरि के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

दण्डकारण्य में प्रवेश करने के पश्चात् एक मुनि ने सीता से निवेदन किया कि वह जटायु की रक्षा करें।

भणिया य साहवेणं, जणयसुया पक्खिणं इमं भद्दे! ।
रक्खेज्जसु पययमणा, सम्मद्दिट्ठी इहारण्णे।।[17]

अर्थात्- साधु ने जनकसुता सीता से कहा कि, हे भद्रे! इस अरण्य में सम्यग्दृष्टि इस पक्षी की प्रयत्नपूर्वक तुम रक्षा करो।

सीता हरण और खोज

महाकवि विमलसूरि ने अपने महाकाव्य के पर्व 43 से 53 तक के अंश में सीताहरण एवं उनकी खोज के सम्बन्ध में वर्णन किया है। विमलसूरि ने सीताहरण का कारण अपनी दृष्टि से दिया है। चन्द्रनखा और खरदूषण का पुत्र शम्बूक सूर्यहास खंग की सिद्धि के लिए बारह वर्षों तक घोर साधना करता है। साधना सफल होने पर खंग प्रकट हुआ। एक संयोग था कि उस साधना स्थल के निकट लक्ष्मण आ गये। खंग देख प्रसन्न हुए और उसकी परीक्षा हेतु बांस काटने लगे। यह दुर्भाग्य था कि भूलवश खंग की धार शम्बूक को लगी और शम्बूक का सिर धड़ से अलग हो गया।

दाहिणकरग्गगहियं, विण्णासन्तेण वाहियं खग्गं।
घणनिचयबद्धमूलं, छिन्नं वंसत्थलं तेणं ॥

ताव च्चिय तत्थ सिरं, पेच्छइ पडियं सकुण्डलाडोवं।
देहं च रुहिरकछद्दम-समोल्लियं विद्दुमावयवं।।[18]

अर्थात्- दाहिने हाथ में धारण करके उसने जिज्ञासा से तलवार चलाई और सघन और बद्धमूल बांस के समूह को काट डाला। उसी समय उसने वहां कुण्डल से अलंकृत एक मस्तक गिरा हुआ देखा। विद्रुम के समान अवयव वाली देह रुधिर के कीचड़ से लिप्त हो गई थी।

चन्द्रनखा अपने मृत पुत्र को देख विलाप करने लगी। वह राम और लक्ष्मण के पास पहुंची। दोनों के मोहक सूरत को देख चन्द्रनखा उन पर मोहित होती है। चन्द्रनखा उनसे पत्नी बनाने का प्रस्ताव रखती है। असफल होने पर चन्द्रनखा ने अपने पति को मृत पुत्र की सूचना दी। रावण को भी सूचित करती है। खरदूषण के आक्रमण करने पर लक्ष्मण उसकी सेना को अकेले रोक लेते हैं।

रावण, सीता के सौंदर्य से आकर्षित होता है। रावण अवलोकनी विद्या से जानता है कि लक्ष्मण ने राम को बुलाने के लिए उन्हें सिंहनाद का संकेत बताया है। अतः उसने सिंहनाद कर राम को लक्ष्मण के पास भेज दिया और सीताहरण करने में वह सफल हुआ।

सीताहरण के बाद राम और सुग्रीव की मित्रता का वर्णन है। इस ग्रंथ में बताया गया है कि साहसगति ने सुग्रीव का रूप धारण कर उसकी पत्नी और उसके राज्य को छीन लिया है। राम साहसगति का वध कर सुग्रीव को उसका राज्य और उसकी पत्नी को लौटा कर सुग्रीव की मदद करते हैं। प्रसन्न हो सुग्रीव अपनी तेरह कन्याओं को राम को समर्पित करते हैं। सुग्रीव के आदेश से विद्याधर सीता की खोज करने जाते हैं। रत्नजटी से सुग्रीव को जानकारी मिलती है कि रावण ने सीता का हरण किया है। रावण का नाम सुन उसकी वीरता से डर कर सभी विद्याधर युद्ध से इन्कार करते हैं। अब सुग्रीव को अनन्तवीर्य का कथन स्मरण आता है जिसमें उसने रावण से कहा था कि जो कोटि-शिला उठा सकेगा, उससे तेरी मृत्यु होगी।

साहू अणन्तविरिओ, मरणं परिपुच्छिओ दहमुहेणं।
जंपइ जो कोडिसिलं, उद्धरिही सो तुमं च सत्तू ।।[19]

अर्थात्- रावण ने साधु अनन्तवीर्य से मरण के बारे में पूछा था। इस पर उन्होंने कहा था कि जो कोटिशिला को उठा लेगा वही तुम्हारा शत्रु होगा।

आगे चलकर लक्ष्मण, कोटि शिला उठाते हैं। लेकिन अभी भी विद्याधर को रावण से भय महसूस हो रहा है। वे हनुमान को रावण के पास भेजने का सुझाव देते हैं ताकि वे विभीषण की सहायता से रावण को समझायें। इसी यात्रा के क्रम में हनुमान अपने नाना महेन्द्र को परास्त करते हैं जिन्होंने उनकी माँ अंजना को पूर्व में घर से निकाला था। दधिमुख नगर के राजा की तीन कन्याओं से भेंट करते हैं। लंका के पास पहुंचकर हनुमान वज्रमुख का वध करते हैं। उसकी कन्या लंकासुन्दरी को परास्त कर उसके साथ रातभर कीड़ा करते हैं। लंका प्रवेश कर हनुमान, विभीषण और सीता से मिलते हैं। आगे चलकर वह लंका की वाटिकाओं और महलों का विध्वंस करते हैं एवं इन्द्रजित द्वारा बांध कर

रावण के दरबार में पहुंचाये जाते हैं। रावण को धमका कर हनुमान रावण के महल को ध्वस्त करते हैं और सीता का संदेश वापस आकर राम को सुनाते हैं।

युद्ध

पउमचरियं ग्रंथ में पर्व 54 से 77 तक कवि ने युद्ध का वर्णन अपनी तरह से किया है। इस ग्रंथ में समुद्र नामक राजा की कथा का वर्णन आया है। वह वानरों की सेना को आगे बढ़ने से रोक देता है। नल से समुद्र का युद्ध होता है और समुद्र परास्त होता है। समुद्र अपनी चार कन्याएं लक्ष्मण को समर्पित करता है।

रयणसिरी कमलसिरी, रयणसलाया तहेव गुणमाला।
एयाउ समुद्देणं, दिन्नाओ लच्छिनिलयस्स॥[20]

अर्थात्- रत्नश्री, कमलश्री, रत्नशलाका तथा गुणमाला-ये कन्याएं समुद्र ने लक्ष्मण को दीं।

सीता को लौटाने का अनुरोध करने पर रावण ने विभीषण को नगर से निकलने का आदेश दिया। विभीषण अपनी सेना के साथ हंसद्वीप में आकर राम की शरण लेता है। इसी समय सीता का भाई भामंडल भी युद्ध में भाग लेने के लिए राम के निकट पहुंचता है।

राम और लक्ष्मण के स्थान पर सुग्रीव और भामंडल इन्द्रजित् के नागपाश में बांधे गये तथा गरुड़केतु लक्ष्मण द्वारा मुक्त हुए।

रावण का शक्तिवाण लक्ष्मण को लगता है और वह मूर्छित होते हैं। द्रोणमेघ की कन्या विशल्या उनकी चिकित्सा करती है और फिर लक्ष्मण-विशल्या का विवाह सम्पन्न होता है। यहीं दोनों की पूर्व कथा भी वर्णित है जिससे ज्ञात होता हो कि ये दोनों पहले पुनर्वसु और अनंगशरा थे।

कवि ने अपने काव्य में जानकारी दी है कि रावण अपने दूत सामन्त के माध्यम से राम के पास संधि का प्रस्ताव भेजता है। अपने राज्य का एक अंश और तीन हजार कन्याओं को प्रदान करना रावण इस शर्त पर स्वीकार करता है कि राम सीता का त्याग कर दें और कुम्भकर्ण, इन्द्रजित् और मेघवाहन को मुक्त कर दें।

पेसेहि मज्झ पुत्ते, मुइंचसु एक्कोयरं नियमबन्धुं,
अणुमण्णसु जणयसुया, जइ इच्छसि अत्तणो खेमं॥[21]

अर्थात्- यदि तुम अपनी कुशल चाहते हो तो मेरे पुत्रों को भेज दो, मेरे अपने सहोदर भाई को छोड़ दो और जनकसुता को अनुमति दो।

आगे चलकर रावण बहुरूपा नामक विद्या की साधना शांतिनाथ के मंदिर में करता है। रावण सीता पर दवाब डालता है कि वह उसके साथ रमण करे। लेकिन सीता के प्रतिकार के फलस्वरूप वह पश्चाताप करते हुए निर्णय करता है कि राम लक्ष्मण को पराजित कर, वह उन्हें सीता लौटा देगा। रावण की पत्नी मन्दोदरी रावण को वरदान का स्मरण दिलाते हुए जानकारी देती है कि लक्ष्मण के हाथों उसकी मौत होगी। रावण मन्दोदरी की बातों को अनसुना कर देता है। युद्ध में आगे चलकर लक्ष्मण (नारायण) ही

रावण (प्रतिनारायण) का वध करते हैं। कवि ने लक्ष्मण के चक्र से रावण के विशाल वक्षस्थल के गिरने का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है:-

अइमाणिणस्स एत्तो, लंकाहिवइस्स अहिमुहस्स रणे।
चक्केण तेण सिग्घं, छिन्नं वच्छत्थलं विउलं॥[22]

अर्थात्- तब अत्यन्त अभिमानी और युद्ध में सामने अवस्थित लंकाधिपति रावण का विशाल वक्षस्थल उस चक्र ने शीघ्र ही चीर डाला।

कवि ने पर्व 75 में दर्शाया है कि रावण वध के पश्चात् कैदी कुम्भकर्ण, रावणपुत्र इन्द्रजित् और मेघवाहन कैद से मुक्त होते हैं और विरक्त हो तपस्या करने जाते हैं। इधर मन्दोदरी, चन्द्रनखा समेत आठ हजार महिलाएं भी महल त्याग कर साधना का जीवन अपनाती है।

लंका में राम का पदार्पण होता है और देवताओं द्वारा सीता से मिलने पर पुष्पवृष्टि होती है। सीता के निर्मल चरित्र का देवता साक्ष्य देते हैं। इस ग्रंथ में यहां कहीं सीता की अग्नि परीक्षा का संकेत देखने को नहीं मिलता।

राम लक्ष्मण रावण के महल में ठहरते हैं एवं उन कन्याओं को बुलवाया जाता है जिनके साथ उनकी मंगनी हो चुकी है। लंका में ही उनका विवाह सम्पन्न होता है और राम लक्ष्मण छै वर्षों तक लंका में रहते हैं।

उत्तरचरित

नारद, लंका आकर पुत्र वियोग में दुखी अपराजिता (कौशल्या) की व्यथा, राम लक्ष्मण से सुनाते हैं। राम-लक्ष्मण साकेत लौटने का निर्णय करते हैं। राम-लक्ष्मण के साकेत आगमन पर, भरत को वैराग्य हुआ। वे दीक्षित हो निर्वाण प्राप्त करते हैं। आगे चलकर लक्ष्मण के राज्याभिषेक और विद्याधर राजाओं पर विजय प्राप्ति का वर्णन किया गया है।

लक्ष्मण की विशल्या आदि आठ पटरानियों समेत सोलह हजार पत्नियां, राम की सीता, प्रभावती, रतिनिभा और श्रीदामा समेत आठ हजार पत्नियों का वर्णन कवि ने पर्व 85 से 91 के बीच में किया है।

आगे कवि ने सीता त्याग का वर्णन अपनी तरह से किया है। लंका से लौटने पर नागरिकों के बीच सीता को दोषी होने की चर्चा राम सुनते हैं। वे लक्ष्मण से परामर्श कर सीता-त्याग की बात करते हैं। लेकिन लक्ष्मण राम के विचार से असहमत होते हैं। फिर भी राम अपने सेनापति कृतान्तवदन को जिन-मंदिर दिखलाने के बहाने सीता को भयानक वन में छोड़ आने का आदेश देते हैं। वन में सीता के करुण विलाप सुन, पुंडरीकपुर के राजा वज्रजंघ उसे अपने भवन ले जाता है जहां गर्भवती सीता अपने दो पुत्रों लवण तथा अंकुश को जन्म देती हैं।

एवं नवमे मासे, संपुण्णे सवणसंगए चन्दे।
सावणपंचदसीए, सुयाण जुयलं पसूया सा ॥[23]

अर्थात्- इस प्रकार नौ महीने पूरे होने पर जब चन्द्रमा श्रवण नक्षत्र से युक्त था तब श्रावण पूर्णिमा के दिन उसने पुत्रों के युगल को जन्म दिया।

Scanned with OKEN Scanner

लवण का विवाह वज्रजंघ की पुत्री शशिकुला से होता है और अंकुश का विवाह पृथ्वीपुर के राजा पृथु को पराजित कर उसकी कन्या कनकमाला के साथ होता है। नारद से इन दोनों को अपनी माँ की दुर्दशा का हाल मिलता है और सीता के विरोध के बावजूद ये दोनों साकेत पर आक्रमण करते हैं। लवण और अंकुश से राम लक्ष्मण का युद्ध होता है।

सुग्रीव, हनुमान, विभीषण के अनुरोध पर सीता को साकेत बुलाया जाता है। लोकापवाद से मुक्त होने के लिए राम सीता से अग्नि परीक्षा देने के लिए अनुरोध करते हैं। तीन सौ हाथ गहरे अग्निकुंड में सीता ज्योंहि प्रवेश करती हैं, प्रज्ज्वलित अग्निकुंड स्वच्छ जल से भर जाता है और सर्वत्र फैलने लगता है। बढ़ते जल-प्रवाह को रोकने के लिए जनता, सीता से प्रार्थना करती है और सीता के जल स्पर्श से वह जलप्रवाह स्थिर हो गया। राम ने सीता से क्षमा याचना की और साकेत में रहने का अनुरोध किया। लेकिन सीता ने अनुरोध को ठुकरा कर जैन दीक्षा ली।

आगे चलकर कवि ने अपनी गाथा के माध्यम से बलभद्र (राम) और नारायण (लक्ष्मण) के भ्रातृभाव की परीक्षा लेने के लिए दो देवताओं का आगमन दिखलाया है। लक्ष्मण को विश्वास दिलाते हुए देवता बताते हैं कि राम का देहान्त हो गया है। शोकातुर लक्ष्मण मरते हैं और नरक जाते हैं। लक्ष्मण की अन्त्येष्टि के पश्चात् राम को विरक्ति होती है और वे दीक्षा लेकर सत्रह हजार वर्षों तक साधना कर निर्वाण प्राप्त करते हैं। अन्त में लक्ष्मण, रावण और सीता के सम्बन्ध में कहा जाता है कि अनेक बार जन्म लेने के बाद उन्हें मुक्ति मिल जायेगी।

(ख) वाल्मीकि रामायण की कथावस्तु

वेद जिस परमतत्व का वर्णन करते हैं, वही श्रीमन्नारायण तत्व श्रीमद्रामायण में श्री रामरूप से निरूपित है। परम पुरुषोत्तम के दशरथनन्दन श्री राम के रूप में अवतीर्ण होने पर साक्षात् वेद ही श्रीवाल्मीकि के मुख से श्री रामायण रूप में प्रकट हुए, आस्तिकों की चिरकाल से ऐसी मान्यता है। इसलिए श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण की वेदतुल्य ही प्रतिष्ठा है। यों भी महर्षि वाल्मीकि आदि कवि हैं, अत: विश्व के समस्त कवियों के गुरु हैं। उनका 'आदिकाव्य' श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भूतल का प्रथम काव्य है। वह सभी के लिए पूज्य वस्तु है। भारत के लिए तो वह परम गौरव की वस्तु है और देश की सच्ची बहुमूल्य राष्ट्रीय निधि है। श्री व्यास देवादि सभी कवियों ने इसी का अध्ययन कर पुराण, महाभारत आदि का निर्माण किया है।

पठ रामायणं व्यास काव्यबीजं सनातनम्।
यत्र रामचरित्रं स्यात् तदहं तत्र शक्तिमान्॥

वृहद्धर्मपुराण, प्रथम खंड, 30/47,51

रामायणं पाठितं मे प्रसन्नौस्मि कृतस्त्वया।
करिष्यामि पुराणानि महाभारतमेव च॥

विद्वानों ने रामकथा काव्य के आदि कवि वाल्मीकि को माना है। विभिन्न धर्मों-सम्प्रदायों-संस्कृतियों में जितनी भी रामकाव्य की रचना की गई है उन सभी ग्रंथों का आधार वाल्मीकिकृत रामायण ही है। विभिन्न देशों में भी रामकथा पर लिखे गये ग्रंथों के आधार वाल्मीकिकृत रामायण ही हैं। मूलकथा एक है लेकिन कथा की विवेचना दूसरे कवियों ने अपनी-अपनी दृष्टि से की है। उनके काव्य पर तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आदि स्थितियों की झलक मिलती है और वे कवि इन स्थितियों से प्रभावित रहे हैं।[24]

गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित वाल्मीकि रामायण में उल्लेख किया गया है कि भारत में रामायण के चार पाठ प्रचलित हैं:-

(क) पश्चिमोत्तर शाखा (लाहौर का 1931 का संस्करण)

(ख) बंगशाखीय (Gorresio's edition)गौडीय संस्करण

(ग) दाक्षिणात्य संस्करण (गुजराती प्रिन्टिंग प्रेस बम्बई का तीन टीका वाला संस्करण तथा मध्य विलास बुक डिपो, कुम्भकोणम् का संस्करण)।

(घ) उत्तर भारत का संस्करण (काश्मीरी संस्करण)।

इनमें दाक्षिणात्य तथा औदीच्य संस्करण तो सर्वथा एक ही है। इनमें कहीं नाममात्र का भी अन्तर नहीं है। पश्चिम-पूर्व वालों में अध्यायों का अन्तर है। लेकिन उन पर कोई स्वतन्त्र टीका नहीं मिलती है। इसलिए दाक्षिणात्य संस्करण का ही सर्वत्र प्रचार है क्यों कि यही ग्रंथ प्रामाण्य है।[25]

गीताप्रेस, गोरखपुर से वाल्मीकीय रामायण दो खंडों में प्रकाशित है। प्रथम भाग का प्रथम संस्करण संवत् 2017 में प्रकाशित हुआ है जिसमें कुल चार कांडों को संकलित किया गया है। वे हैं:- (1) बालकांड, (2) अयोध्याकांड, (3) अरण्यकांड और (4) किष्किन्धाकांड। दूसरे खंड में तीन कांडों का संकलन किया गया है। वे हैं- (5) सुन्दरकांड, (6) युद्धकांड और (7) उत्तरकांड।

वाल्मीकि रामायण के युद्धकांड के अन्त में रामायण का माहात्म्य लिखा गया है-

रामायणमिदं कृत्स्नं शृण्वतः पठतः सदा।
प्रीयते सततं रामः स हि विष्णुः सनातन॥

अर्थात्- ''जो नित्य इस सम्पूर्ण रामायण का श्रवण एवं पाठ करता है, उस पर सनातन विष्णु स्वरूप भगवान श्रीराम सदा प्रसन्न रहते हैं।''

भक्त्या रामस्य ये चेमां संहितामृषिणा कृताम्।
ये लिखन्तीह च नरास्तेवां वासस्त्रि विष्टपे॥ (123)

अर्थात्- ''जो लोग श्री रामचन्द्र जी में भक्तिभाव रखकर महर्षि वाल्मीकि निर्मित इस रामायण संहिता को लिखते हैं, उनका स्वर्ग में निवास होता है।''

आयुष्यमारोग्यकरं यशस्यं,
सौभ्रातृकं बुद्धिकरं शुभं च।

Scanned with OKEN Scanner

श्रोतव्यमेतन्नियमेन सद्भि-
राख्यानमोजस्करमृद्धि कामैः।

अर्थात्- ''यह काव्य आयु आरोग्य, यश तथा भ्रातृप्रेम को बढ़ाने वाला है। यह उत्तम बुद्धि प्रदान करने वाला और मंगलकारी है। अतः समृद्धि की इच्छा रखने वाले सत्पुरुषों को इस उत्साहवर्द्धक इतिहास का नियमपूर्वक श्रवण करना चाहिए।[26]

जब किसी ग्रंथ का माहात्म्य लिखा जाता है तो सामान्यतः वह ग्रंथ वहीं समाप्त हो जाता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मूल वाल्मीकि रामायण का युद्धकांड ही पुस्तक का अन्तिम अंश है। युद्धकांड के बाद जो उत्तरकांड जोड़ा गया है, उसमें छोटी-छोटी कहानियां बतौर क्षेपक हैं। इन क्षेपकों में सीता परित्याग और शम्बूक वध की कथा भी आई है।

यहां हम शोध प्रबन्ध के तीसरे अध्याय का वर्णन कर रहे हैं जिसमें सर्वप्रथम महाकवि विमलसूरि कृत 'पउमचरियं' की मूलकथा का वर्णन किया जा चुका है। अब गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित प्रथम संस्करण (संवत्-2017) श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के खंड-एक और श्री वाल्मीकीय रामायण-खंड-2 के 32वां संस्करण (संवत्-2064) की मूलकथा का संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है।

वाल्मीकि रामायण की मूलकथा

1. बालकांड

वाल्मीकि रामायण की कथा बालकांड से प्रारम्भ होती है। इस कांड में कुल सतहत्तर सर्ग संकलित हैं। प्रारम्भ में महर्षि वाल्मीकि ने नारद मुनि से पूछा:-

कोऽन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढ़व्रतः॥

अर्थात्- इस समय इस संसार में गुणवान, वीर्यवान, धर्मज्ञ, उपकार मानने वाला, सत्यवक्ता और दृढ़प्रतिज्ञ कौन है ?

इसी तरह उन्होंने नारद से पूछा सदाचार से युक्त, समस्त प्राणियों का हितसाधक, विद्वान, सामर्थ्यशाली, एकमात्र प्रियदर्शन पुरुष, मन पर अधिकार रखने वाला, क्रोध को जीतने वाला, कान्तिमान और किसी की भी निन्दा नहीं करने वाला एवं संग्राम में कुपित होने पर किससे देवता भी डरते हैं ?

तीनों लोकों की खबर रखने वाले नारद ने वाल्मीकि के प्रश्नों का उत्तर देते हुए इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न रामनाम से विख्यात बुद्धिमान, नीतिज्ञ, वक्ता, धर्म के ज्ञाता, सत्य प्रतिज्ञ, प्रजा का हितैषी, वेद-वेदांगों के तत्ववेत्ता, धनुर्वेद में प्रवीण पुरुष की कथा सुनाई। कथा कहने के क्रम में नारद ने बताया किस तरह श्री राम ने पिता के वचन की रक्षा करने के लिए वन-गमन किया। खर, दूषण, त्रिशिरा आदि चौदह हजार राक्षसों को युद्ध में मार गिराया। रावण ने सीता का हरण किया। सीता के वियोग में विक्षिप्त राम समुद्रतट पर पहुंचते हैं और समुद्र के कहने पर नल की मदद से सेतु निर्माण करते हैं--

दर्शयामास चात्मानं समुद्रः सरितां पतिः।
समुद्रवचनाच्चैव नलं सेतुमकारयत्॥

अर्थात्- तब नदीपति समुद्र ने अपने को प्रकट कर दिया, फिर समुद्र के ही कहने पर राम ने नल से पुल निर्माण कराया।

रावण पर विजय प्राप्त करने के बाद साध्वी सीता की अग्निपरीक्षा हुई और अग्नि के कहने पर राम ने सीता को निष्कलंक माना। विभीषण को लंका के राज्य पर अभिषिक्त कर राम, लक्ष्मण और सीता पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या वापस आये।

नारद के मुख से सबका हित करने वाले राम के सारे प्रकट और गुप्त चरित्र को सुनकर महर्षि वाल्मीकि नारद को विदा कर अपने शिष्यों के साथ तमसा नदी के तट पर पहुंचे। वन की शोभा निहारते हुए वाल्मीकि की नजर क्रौंच पक्षी के एक जोड़े पर पड़ी। इसी बीच किसी निषाद ने क्रौंच पक्षी के जोड़े में से नर क्रौंच को मार गिराया। खून से लथपथ नर क्रौंच को देख वाल्मीकि हतप्रभ हुए। वियोगी क्रौंची के करुण क्रन्दन ने वाल्मीकि को और भी झकझोर दिया। अकस्मात् वाल्मीकि के मुंह से निकल पड़ा-

मा निषाद प्रतिष्ठांत्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

अर्थात्- निषाद! तुझे नित्य-निरन्तर-कभी भी शांति न मिले। क्योंकि तूने इस क्रौंच के जोड़े में से एक को, जो काम से मोहित हो रहा था, बिना किसी अपराध के ही हत्या कर डाली।

शोक में अकस्मात् चार चरणों में आबद्ध वाक्य निकलने पर वाल्मीकि सोचने लगे। उन्होंने अपने शिष्य भरद्वाज को कहा कि मेरा यह वाक्य श्लोक नामक छन्द में आबद्ध काव्य का रूप ले सकता है।

आश्रम लौटने पर भी महर्षि वाल्मीकि उन्हीं पंक्तियों पर चिन्तन कर रहे थे। इसी समय ब्रह्मा प्रकट हुए। वाल्मीकि ने उक्त चार वाक्यों को दुहराकर निषाद को दिये शाप के लिए खेद प्रकट किया। ब्रह्मा जी मुस्कुराए और उन्होंने वाल्मीकि से कहा कि तुम्हारे मुख से निकला हुआ यह छन्दोबद्ध वाक्य श्लोकरूप ही होगा। तुम श्रीराम के सम्पूर्ण चरित्र का वर्णन करो। श्रीराम का जो गुप्त या प्रकट वृत्तान्त है तथा लक्ष्मण, सीता और राक्षसों के जो सम्पूर्ण गुप्त या प्रकट चरित्र हैं, वे सब अज्ञात होने पर भी तुम्हें ज्ञात हो जायेंगे। तुम्हारी कोई बात झूठी नहीं होगी। इतना कहकर ब्रह्मा अन्तर्धान हो गये।

महर्षि वाल्मीकि ने अपने योगबल से राम के सम्पूर्ण जीवन की बातें जान लीं। चौबीस हजार श्लोकों में रामायण की रचना कर वाल्मीकि ने लव कुश को सब जानकारी दी। अयोध्या में लव कुश का गायन सुन राम भी प्रसन्न हुए और उन्होंने वाल्मीकि का सम्मान किया।

लव कुश ने रामायण गायन के क्रम में ही इक्ष्वाकु वंश के राजा सगर की कथा को सुनाते हुए अयोध्या के राजा दशरथ के प्रभुत्व, कुशल प्रशासन और लोकहित की जानकारी दी है। अपनी वंशावली के विस्तार के लिए राजा दशरथ अश्वमेध यज्ञ करना चाहते हैं। लेकिन अपने मंत्री सुमन्त्र से विप्रवर ऋष्यश्रृंग की कथा सुन राजा दशरथ उन्हें आमंत्रित करने को इच्छुक हुए। वेदों के ज्ञाता ऋष्यश्रृंग ऋषि से राजा दशरथ ने पुत्र हेतु

Scanned with OKEN Scanner

यज्ञ करने का अनुरोध किया। ऋषि ने पुत्रेष्टि नामक यज्ञ के उपरान्त उन्हें चार पुत्रों की प्राप्ति का वचन दिया।

इसी बीच रावण के आतंक से त्रस्त देवतागण ब्रह्मा के पास गये और रावण वध के सम्बन्ध में अनुरोध किया। ब्रह्मा ने देवताओं को बताया कि अहंकारी रावण ने गन्धर्व, यक्ष, देवता और राक्षसों के हाथो नहीं मरने का वरदान मुझसे अवश्य पाया है। लेकिन मनुष्य को तुच्छ मान उसने इसका ध्यान नहीं रखा। उन्होंने विष्णु को मनुष्य जन्म लेने का अनुरोध किया। विष्णु ने कहा मैं चार रूपों में मनुष्य रूप में प्रकट होकर रावण आदि का वध करूँगा।

भयं त्यजत भद्रं वो हितार्थं युधि रावणम्।
सपुत्रपौत्रं सामात्यं समन्त्रिज्ञातिबान्धवम्॥[27]

अर्थात्- देवगण! तुम्हारा कल्याण हो। तुम भय को त्याग दो। मैं तुम्हारा हित करने के लिए रावण को पुत्र, पौत्र, अमात्य, मंत्री और बन्धु-बान्धवों सहित युद्ध में मार डालूँगा।

ब्रह्मा ने विष्णु के अवतार की सहायता के लिए अन्य देवताओं को भी विभिन्न रूपों में जन्म लेने का आदेश दिया। वानर रूप में अनेक पुत्र उत्पन्न हुए। ऋषि, सिद्ध विद्याधर, नाग ने भी बन्दर-भालुओं के रूप में जन्म लिया। इन्द्र ने वानर राज बाली को उत्पन्न किया, सूर्य ने सुग्रीव को, कुबेर ने गन्धमादन को, विश्वकर्मा का पुत्र नल और अग्निदेव का पुत्र नील हुआ। वायु देवता के औरस पुत्र हनुमान हुए।

ऋष्यश्रृंग के पुत्रेष्टि यज्ञ करते हुए अग्निकुंड से एक दिव्य पुरुष प्रकट हुए। उनके हाथ में खीर की एक परात थी। राजा दशरथ को उस दिव्य पुरुष ने खीर प्रदान किया और अपनी पत्नियों को खिलाने का परामर्श दिया। दशरथ ने खीर का आधा भाग कौसल्या को दिया। शेष बचे आधे भाग का आधा उन्होंने सुमित्रा को दिया। शेष आधे का आधा भाग कैकेयी को दिया। और जो शेष बचा वह फिर से सुमित्रा को प्रदान किया। कौसल्या से राम, कैकेयी से भरत और सुमित्रा से लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न का जन्म हुआ। राजपुरोहित महर्षि वशिष्ठ ने उनका नामकरण किया। वे सब शस्त्र और शास्त्र की शिक्षा पाने लगे। आगे चल कर विश्वामित्र के अनुरोध पर राम और लक्ष्मण मुनि विश्वामित्र का यज्ञ सम्पन्न कराने के लिए गये।

विश्वामित्र के आश्रम में राक्षसों के उत्पात से उनके यज्ञ की रक्षा करते हुए राम ने ताड़का नाम की राक्षसी का वध किया। विश्वामित्र ने राम और लक्ष्मण को कई शक्तिशाली अस्त्र प्रदान किये। बला और अतिबला नामक मंत्र दिये।

क्षुत्पिपासे न ते राम भविष्येते नरोत्तम।
बलामतिबलां चैव पठतस्तात राघव॥
गृहाण सर्वलोकस्य गुप्तये रघुनन्दन।[28]

अर्थात्- नरश्रेष्ठ श्रीराम! तात रघुनन्दन ! बला और अतिबला का अभ्यास कर लेने पर तुम्हें भूख-प्यास का भी कष्ट नहीं होगा। अतः रघुकुल को आनन्दित करने वाले राम! तुम सम्पूर्ण जगत् की रक्षा के लिए इन दोनों विद्याओं को ग्रहण करो।

ताड़का के पुत्र मारीच और सुबाहु ने यज्ञ में विघ्न डाला। राम ने उन दोनों पर

आक्रमण किया। मारीच घायल होकर समुद्रतट पर जा गिरा। सुबाहु की वहीं मृत्यु हो गई। यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ।

मिथिला के राजा जनक ने अपनी कन्या के लिए स्वयंवर का आयोजन किया था। निमन्त्रण पाकर मुनि विश्वामित्र, राम-लक्ष्मण के साथ मिथिला की ओर चले। रास्ते में विश्वामित्र ने गंगा की उत्पति की कथा राम को सुनाई। रास्ते में अहिल्या का उद्धार हुआ।

मिथिला में राम ने धनुर्भंग किया। फलस्वरूप सीता के साथ उनका विवाह हुआ। राजा जनक और उनके भाई कुशध्वज की पुत्रियों का विवाह राजा दशरथ के अन्य पुत्रों के साथ सम्पन्न हुआ। इस तरह दशरथ के चार पुत्र और मिथिला की चार राजकुमारियों का शुभ विवाह सुखपूर्वक सम्पन्न हुआ।

रास्ते में परशुराम से भेंट हुई। उन्होंने राम की परीक्षा ली। राम उस परीक्षा में सफल हुए। परशुराम ने उन्हें श्रेष्ठ मान लिया और फिर परशुराम महेन्द्र पर्वत की ओर चले गये।

2. अयोध्याकांड

अयोध्याकांड में कुल एक सौ उन्नीस सर्ग संग्रहीत हैं। इस कांड के प्रारम्भ में वर्णन किया गया है कि राम अपने गुणों के कारण सभी के प्रिय हैं। राजा दशरथ ने सभी लोगों से राय मशविरा कर अपने जीवनकाल में राम का राज्याभिषेक करने का निश्चय किया। गुरु वशिष्ठ ने बताया कि अगले ही दिन शुभ मुहूर्त्त है। इसलिए राम का राज्याभिषेक अगले दिन कर दिया जाये। समय के अभाव में न तो ननिहाल से भरत और शत्रुघ्न को बुलाना संभव था और न राजा जनक को। राजा दशरथ ने राम को बुलाकर अपना निर्णय कह सुनाया और उन्हें राजनीति के उपदेश दिये। वशिष्ठ ने भी धर्म के अन्य निर्देश दिये। अभिषेक का समाचार नगर में फैल गया। राजमहल में तथा नगर में आनन्द मनाया जाने लगा।

उधर रानी कैकेयी की दासी कुबड़ी मंथरा को जब यह बात मालूम हुई तब वह ईर्ष्या से जल-भुन गई। उसने रानी कैकेयी को जब यह सूचना दी तो रानी, राम के राज्याभिषेक की खबर सुन बहुत प्रसन्न हुई। मंथरा ने दूसरा पासा फेंका और रानी के दिमाग में यह जहर भर दिया कि राम के राजा होने के बाद उसका (कैकेयी का) और भरत का बड़ा नुकसान होगा। सारा जीवन दुख में बीतेगा। मंथरा की बात का असर कैकेयी पर पड़ा और लगा कि मंथरा सही कह रही है।

अनेक वर्ष पहले देवासुर संग्राम में कैकेयी ने सारथी के रूप में राजा दशरथ की जान बचाई और उस समय दशरथ ने दो वर देने की प्रतिज्ञा की थी। आज वह शुभ क्षण आ गया था कि कैकेयी, दशरथ से उनकी प्रतिज्ञा के अनुसार दोनों वर मांग ले।

दशरथ ज्यों ही कैकेयी के भवन में राम के राज्याभिषेक का समाचार देने आये, कैकेयी ने दोनों वर मांग लिए। पहला वर था भरत का राज्याभिषेक और दूसरा वर था राम का चौदह वर्षों के लिए वनवास।

नव पंच च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः।
चीराजिनधरो धीरो रामो भवतु तापसः।
भरतो भजतामद्य यौवराज्यमकण्टकम् ॥[29]

Scanned with OKEN Scanner

अर्थात्- धीर स्वभाव वाले श्रीराम तपस्वी के वेश में वल्कल तथा मृगचर्म धारण करके चौदह वर्षों तक दण्डकारण्य में जाकर रहें। भरत को आज निष्कण्टक युवराज पद प्राप्त हो जाय।

एष मे परमः कामो दत्तमेव वरं वृणे।
अद्य चैव हि पश्येयं प्रयान्तं राघवं वने।।[30]

अर्थात्- यही मेरी सर्वश्रेष्ठ कामना है। मैं आपसे पहले का दिया हुआ वर ही मांगती हूँ। आप ऐसी व्यवस्था करें, जिससे मैं आज ही श्रीराम को वन की ओर जाते देखूं।

दशरथ ने कैकेयी के दोनों वर की मांग पर उसे बड़ा समझाया। बाद में काफी भर्त्सना की। कुलघातिनी, कुलकलंकिनी जैसे शब्दों से कैकेयी को डराना-धमकाना चाहा। उसके पैर भी पड़े। लेकिन कैकेयी टस से मस नहीं हुई। बाद में कैशल्या और सुमित्रा को जब इन बातों की जानकारी हुई तब उन्हें भी बड़ा दुख हुआ।

राम को जब यह बात मालूम हुई तब वे पिता के वचन को रखने के लिए सहर्ष तैयार हो गये। लक्ष्मण ने विरोध किया।

प्रोत्साहितोयं कैकेय्या संतुष्टो यदि नः पिता।
अमित्रभूतो निःसगं वध्यतां बध्यतामपि।।[31]

अर्थात्- यदि कैकेयी के प्रोत्साहन देने पर उसके ऊपर संतुष्ट हो पिताजी हमारे शत्रु बन रहे हैं तो हमें भी मोह-ममता छोड़ कर इन्हें कैद कर लेना या मार डालना चाहिए।

लेकिन राम ने लक्ष्मण को समझाया। इस तरह सारी स्थिति प्रतिकूल हो गई। सभी को समझा-बुझा कर राम-लक्ष्मण और सीता ने वन के लिए प्रस्थान किया। नगरवासियों ने काफी विरोध किया। रथ के साथ काफी दूर तक गये। रात में एक स्थान पर राम-लक्ष्मण ने वृक्ष के नीचे विश्राम किया। नगरवासी भी वहीं सो गये। रात के अंधेरे में ही चुपचाप राम, लक्ष्मण और सीता ने नगरवासियों को सोता छोड़कर सुमन्त्र के साथ रथ पर वहां से निकल गये।

दूसरे रोज निषाद राज के राज्य में राम-लक्ष्मण-सीता पहुंचे। वनवासियों ने राम, लक्ष्मण और सीता का हृदय से स्वागत किया। वहीं उन्होंने नाव से गंगा पार किया। रोते हुए सुमन्त्र को अयोध्या विदा किया और तीनों व्यक्ति गहरे वन में आगे बढ़े। चलते-चलते चित्रकूट पर्वत पर पहुंचे। यह स्थान उनलोगों को बड़ा प्रिय लगा और वे वहीं पर्णकुटी बनाकर रहने लगे।

सुमन्त्र अयोध्या लौट आये। सुमन्त्र को देखते ही पुरवासी राम के सम्बन्ध में पूछने लगे। राजा दशरथ पुत्रशोक में व्याकुल पड़े थे। बार-बार कह रहे थे कि मुझे वहां ले चलो जहां राम हैं। पूरा रनिवास शोक से भरा था। लोग छाती पीट रहे थे। राजा दशरथ ने कौशल्या को पूर्व की एक घटना बताई कि कैसे अन्जाने में उन्होंने एक वनवासी को बाण चलाकर मार दिया था। उस वनवासी के अंधे माता-पिता ने मरते हुए यह शाप दिया था कि राजन, तुमने मुझे पुत्र वियोग दिया है। वैसा ही पुत्र वियोग तुम्हें भी हो।

पुत्रव्यसनजं दुःखं यदेतन्मम साम्प्रतम्।
एवं त्वं पुत्रशोकेन राजन् कालं करिष्यसि।।[32]

अर्थात्- राजन! इस समय पुत्र के वियोग से मुझे जैसा कष्ट हो रहा है, ऐसा ही तुम्हें भी होगा। तुम भी पुत्रशोक से ही काल के गाल में जाओगे। यह कथा कहते हुए दशरथ ने प्राण त्याग दिये। महल में हाहाकार मच गया।

उधर भरत को अपने ननिहाल में दुःस्वप्न आ रहे थे। लगता था कि कुछ अनिष्ट होने वाला है। इसी बीच अयोध्या के दूत ने पहुंच कर भरत और शत्रुघ्न से शीघ्रातिशीघ्र घर लौटने की विनती की। भरत और शत्रुघ्न ने अयोध्या लौटकर यहां का जो दृश्य देखा तो अत्यन्त विस्मित और दुखी हो गये। अपनी मां को अनेक अपशब्द कहे। शत्रुघ्न ने मंथरा की काफी पिटाई की। भरत, कौशल्या के सामने जाकर रोने लगे।

इस तरह दशरथ का अन्तिम संस्कार कर और राज्यसिंहासन पर बैठने की प्रार्थना को अस्वीकार कर सेना के साथ राम को वापस लाने के लिए भरत अन्य लोगों के साथ वन की ओर चले।

निषादराज ने जब इस समाचार को सुना कि भरत विशाल सेना के साथ आये हुए हैं तो उसे शंका हुई कि शायद राम पर आक्रमण करने की तैयारी से वे आये हैं। इसलिए उसने अपने सभी केवटों को सावधान कर दिया। भरत ने निषादराज के प्रति कृतज्ञता प्रकट की और कहा कि मैं राम को लौटाने आया हूँ। फिर वह स्वयं भी भरत के साथ हो लिया। निषादराज ने भरत को यह भी बताया कि राम वहां केवल जल पीकर रहे थे और चटाई पर सोये थे।

सबेरे गंगा पार करके भरत प्रयागराज में भरद्वाज मुनि के आश्रम में पहुंचे। भरद्वाज ने उन्हें बताया कि श्रीराम चित्रकूट पर्वत पर हैं। भरत, राम को मनाने के लिए आगे बढ़े। लक्ष्मण ने दूर से देखा कि एक विशाल सेना आ रही है। लक्ष्मण ने समझा कि शत्रु रूप में भरत आ रहा है। लेकिन राम ने उसकी शंका को दूर किया। भरत निकट आने पर राम के चरणों में गिर पड़े। राम की जटा को देखकर और उनके वनवासी रूप को देखकर भरत रोने लगे। भरत ने अनुरोध किया कि हमारे कुल में ज्येष्ठ पुत्र ही राजा होता है-

तथानुपूर्व्या युक्तश्च युक्तं चात्मनि मानद।
राज्यं प्राप्नुहि धर्मेण सकामान् सुहृदः कुरु।।[33]

अर्थात्- दूसरों को मान देनेवाले रघुवीर! आप ज्येष्ठ होने के नाते राज्य-प्राप्ति के क्रमिक अधिकार से युक्त हैं, न्यायतः आपको ही राज्य मिलना उचित है। अतः आप धर्मानुसार राज्य ग्रहण करें और अपने सुहृदों को सफल मनोरथ बनावें।

भरत ने राम को यह भी सूचना दी कि महाराज दशरथ स्वर्ग सिधार गये। सर्वप्रथम आप उन्हें जलांजलि दीजिये। पिता की मृत्यु की सूचना पाकर राम रोने लगे। मंदाकिनी नदी में राम ने अपने पिता को जलांजलि दी। फिर पिंडदान किया। सभी लोगों ने राम से अयोध्या वापस लौटने का अनुरोध किया। लेकिन राम तैयार नहीं हुए। उन्होंने अपना निश्चय कह सुनाया। नगर से आये लोगों ने भी राम से बार-बार अनुरोध किया कि वे

Scanned with OKEN Scanner

वापस लौट चलें। विवश होकर भरत ने राम की खड़ाऊं मांग ली। भरत ने पादुकाओं को प्रणाम किया और राम से कहा मैं चौदह वर्षों तक वल्कल और जटाधारण कर, फल-मूल खाकर, अयोध्या से बाहर, आपकी प्रतीक्षा करूँगा। यदि समय समाप्त होते अगले दिन आपका दर्शन न मिला तो मैं आग में जल मरूँगा। फिर भरत राम से विदा लेकर, सेना के साथ, अयोध्या लौट आये। राजसिंहासन पर पादुकाओं को प्रतिष्ठित कर, भरत स्वयं नन्दीग्राम में रहकर, राज्य का काम करने लगे।

इधर राम चित्रकूट छोड़कर अत्रिमुनि के आश्रम पर पहुंचे। सीता को देवी अनुसूया ने अनेक उपदेश दिये। फिर वहां से विदा लेकर राम, लक्ष्मण और सीता सहित आगे बढ़े।

3. अरण्यकांड

वाल्मीकिकृत रामायण के तीसरे कांड अरण्यकांड में कुल पचहत्तर सर्ग संग्रहीत हैं। दण्डकारण्य में प्रवेश करने के बाद अनेक ऋषि मुनियों से राम की भेंट होती है। उस क्षेत्र में राक्षसों का उपद्रव होता है। ये राक्षस नरभक्षी थे और ऋषि मुनियों को बराबर सताया करते थे।

राम ने देखा एक पर्वत जैसा ऊंचा और भयंकर राक्षस। उसका नाम था विराध। उसने ब्रह्मा को प्रसन्न कर वरदान प्राप्त किया था कि किसी भी शस्त्र से उसका वध संभव नहीं है। विराध ने सीता को पकड़ लिया। राम और लक्ष्मण से उसका युद्ध हुआ। राम और लक्ष्मण ने उसकी भुजाओं को तोड़ डाला। विराध ने तब जानकारी दी कि मैं तुम्बुरु नामक एक गन्धर्व हूँ और कुबेर के शापवश मैं राक्षस हुआ। मैंने कुबेर से प्रार्थना की। उन्होंने कहा कि दशरथकुमार राम युद्ध में मेरा वध करेंगे तब फिर मैं गन्धर्व होकर स्वर्ग जा सकूँगा। पराजित विराध को लक्ष्मण ने जमीन में गाड़ दिया। इसके बाद राम और लक्ष्मण शरभंग ऋषि के आश्रम में आये। फिर वे सुतीक्ष्ण मुनि के पास आये। वहां से वे महर्षि अगस्त्य ऋषि के आश्रम में पहुंचे।

दक्षिण में महर्षि अगस्त्य का बड़ा नाम था। वे बड़े प्रभावशाली और शक्तिशाली थे। उन्होंने रामचन्द्र को विष्णु से प्राप्त धनुष तथा अनेक दिव्यास्त्र दिये।

अनेन धनुषा राम हत्वा संख्ये महासुरान्।
आजहार श्रियं दीप्तां पुरा विष्णुर्दिवौकसाम्।।
तद्धनुस्तौ च तूणी च शरं खंग च मानद।
जयाय प्रतिगृह्णीष्व वज्रं वज्रधरो यथा।।[34]

अर्थात्- श्रीराम! पूर्वकाल में भगवान् विष्णु ने इसी धनुष से युद्ध में बड़े-बड़े असुरों का संहार करके देवताओं की उद्दीप्त लक्ष्मी को उनके अधिकार से लौटाया था। मानद! आप यह धनुष, ये दोनों तरकस, ये बाण और यह तलवार राक्षसों पर विजय पाने के लिए ग्रहण कीजिये। ठीक उसी तरह, जैसे वज्रधारी इन्द्र वज्र ग्रहण करते हैं।

अगस्त्य के बताने पर राम गोदावरी नदी के पास पंचवटी पहुंचे। वहीं कुटी बनाकर रहने लगे। पंचवटी में ही गृद्धराज जटायु से राम की भेंट हुई। जटायु ने बताया कि वो

महाराज दशरथ के मित्र हैं। जटायु की राय से राम वहीं रहने लगे। जटायु ने सीता की सुरक्षा के लिए राम को भरोसा दिया।

एक दिन रावण की बहन शूर्पणखा बहुत बनी-ठनी, घूमती-घामती उधर आ निकली। वह राम के सौंदर्य पर रीझ गई और विवाह का प्रस्ताव रख दिया। राम ने अस्वीकार कर दिया और लक्ष्मण के पास भेज दिया। लेकिन लक्ष्मण ने भी इन्कार कर दिया। अब शूर्पणखा ने राक्षसी रूप दिखलाकर सीता को खा जाना चाहा। राम चिन्तित हुए। राम के आदेश से लक्ष्मण ने शूपंणखा के नाक-कान काट दिये। उस राक्षसी के बहकावे में आकर खर-दूषण आदि राक्षसों ने राम पर आक्रमण किया। लेकिन वे सब मारे गये। कवि ने अरण्यकांड के पच्चीसवें सर्ग के एकतालीसवें श्लोक में उल्लेख किया है-

निहताः पतिताः क्षीणाश्छिन्ना भिन्ना विदारिताः।
तत्र तत्र स्म दृश्यन्ते राक्षसास्ते सहस्रशः।।[35]

अर्थात्- जहां-जहां दृष्टि जाती थी, वहीं-वहीं वे हजारों राक्षस मरे, गिरे, क्षीण हुए, कटे-पिटे और विदीर्ण हुए दिखायी देते थे।

ये सारी कथा जब रावण ने सुनी तो उसने राम से बदला लेने के लिए सोचा। शूर्पणखा ने रावण को, राम-लक्ष्मण और सीता के बारे में बताया और रावण को सीता हरण के लिए प्रेरित किया।। रावण मारीच से मिला और उसे अपनी योजना में शामिल करना चाहा।

मारीच भयभीत हो गया क्योंकि वह जानता था कि उसकी मां ताड़का और भाई सुबाहु का वध राम ने पूर्व में ही किया था। मारीच ने रावण को बहुत समझाने का प्रयास किया।

निवार्यमाणस्तु मया हितैषिणा
न मृष्यसे वाक्यमिदं निशाचर।
परेतकल्पा हि गतायुषो नरा
हितं न गृह्णन्ति सुहृद्भिरीरितम्।।[36]

अर्थात्- निशाचर! मैं तुम्हारा हितैषी हूँ, इसीलिये तुम्हें पाप कर्म से रोक रहा हूँ। किन्तु तुम्हें मेरी बात सहन नहीं होती है। सच है जिनकी आयु समाप्त हो जाती है, वे मरणासन्न पुरुष अपने सुहृदों की कही हुई हितकर बातें नहीं स्वीकार करते हैं।

रावण ने मारीच की बात मानने के बदले उसे धमकाया। मारीच मजबूर हो माया मृग बनकर सीता के आसपास घूमने लगा। सीता ने राम के सामने यह हठ बांध लिया कि उस मृग को पकड़ कर लाया जाय। नहीं चाहते हुए भी राम, मृग के पीछे-पीछे दौड़ने लगे। बाण लगने पर मारीच राम के स्वर में चिल्ला उठा-'हा लक्ष्मण!' लक्ष्मण सीता की रक्षा में थे। सीता उन पर दबाव डालने लगी कि वे राम की रक्षा के लिए जायें। लक्ष्मण जाना नहीं चाहते थे, लेकिन सीता के अपशब्द सुनने के बाद लक्ष्मण, राम की रक्षा के लिए चले गये।

रावण संन्यासी का वेश धारण कर सीता के पास आ पहुंचा और वेद मंत्र पढ़ने के बाद सीता के सौंदर्य की प्रशंसा करने लगा। सीता ने अतिथि मानकर उसे आसन और

Scanned with OKEN Scanner

जल दिया। रावण ने सीता का परिचय पूछा। फिर रावण ने अपना परिचय दिया-साथ ही सीता को अपने साथ ले जाने का दवाब बनाया। सीता ने रावण का विरोध किया। अब रावण ने अपना आकार बढ़ा लिया। उसके दस मुख और बीस भुजाएं सामने आयीं। उसने सीता के केशों को पकड़ा और रथ पर ले जाकर बैठाया। सीता चिल्लाने लगी। गृद्धराज जटायु सामने आ गया और रावण से युद्ध करने लगा। रावण ने उसे घायल कर दिया और रावण सीता को आकाशमार्ग से ले चला।

रास्ते में सीता ने देखा कि एक पर्वत शिखर पर पांच वानर बैठे हैं। उसने अपनी सुनहरी चादर में कुछ वस्त्र और आभूषण लपेट कर वानरों की ओर फेंक दिया। फिर रावण सीता के साथ लंका पहुंचा। सीता को वहां बन्दी बनाकर रखा। रावण ने बारह महीने का समय दिया और कहा कि अपना हठ नहीं छोड़ा तो उसके शरीर का मांस खा जायेंगे। अशोक वाटिका में सीता को कड़े पहरे में बन्दी बनाकर रखा गया।

राम जब मारीच का वध कर लौट रहे थे तब लक्ष्मण रास्ते में ही मिले। लक्ष्मण ने सारी बात बताई। राम और लक्ष्मण अब सीता को खोजने लगे। रास्ते में घायल जटायुराज से राम की भेंट हुई। उसने सीता हरण की पूरी कथा राम और लक्ष्मण को सुनाई। जटायु ने बता दिया कि रावण ही सीता को हर कर दक्षिण दिशा की ओर ले गया है। उसने राम को बताया-

पुत्रे विश्रवसः साक्षाद् भ्राता वैश्रवणस्य च।
इत्युक्त्वा दुर्लभान् प्राणान् मुमोच मतगेश्वरः।।[37]

अर्थात्- रावण विश्रवा का पुत्र और कुबेर का सगा भाई है। इतना कह कर उन पक्षिराज ने दुर्लभ प्राणों का परित्याग कर दिया।

जटायु मर गया। राम और लक्ष्मण ने उसका दाह संस्कार किया और आगे बढ़ गये। फिर कबन्द नामक राक्षस से भेंट हुई। कबन्द का उद्धार करके राम आगे बढ़े। कबन्द ने ही वानर सुग्रीव से मित्रता करने की राय दी और ऋष्यमूक पर्वत का मार्ग बताया। आगे शबरी से भेंट हुई और उसने सुग्रीव का पता बताया। राम ने शबरी को आशीर्वाद दिया। फिर वे आगे बढ़े।

4. किष्किन्धाकांड

रामायण का चौथा कांड किष्किन्धाकांड के नाम से है जिसमें कुल सड़सठ सर्ग संग्रहीत हैं।

ऋष्यमूक पर्वत के पास वानरराज सुग्रीव भी पम्पा के पास ही विचरण कर रहे थे। राम-लक्ष्मण को आते देख उन्हें भय हुआ कि हो न हो इन्हें मेरे शत्रु भाई वाली ने भेजा है। मतंग मुनि के शाप के कारण इस स्थान पर वाली आ नहीं सकता था। इसलिए सुग्रीव अपने साथियों के साथ वहीं रहने लगा था। सुग्रीव ने अपने मंत्री हनुमान को यह कहा कि वह जाकर चतुराई से उन वीर युवकों के बारे में पता लगायें।

हनुमान साधारण पुरुष का वेश बनाकर राम-लक्ष्मण के पास गये और उनकी प्रशंसा करते हुए वहां आने का कारण पूछा। हनुमान से राम बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने हनुमान की प्रशंसा की, उनके भाषा ज्ञान और उच्चारण की शुद्धता की भी तारीफ की:-

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्।।
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम्।।[38]

अर्थात्- "जिसे ऋग्वेद की शिक्षा नहीं मिली, जिसने यजुर्वेद का अभ्यास नहीं किया तथा जो सामवेद का विद्वान नहीं है, वह इस प्रकार सुन्दर भाषा में वार्तालाप नहीं कर सकता। निश्चय ही इन्होंने समूचे व्याकरण का कई बार स्वाध्याय किया है। क्योंकि बहुत सी बातें बोल जाने पर भी इनके मुंह से कोई अशुद्धि नहीं निकली।"

हनुमान ने राम और लक्ष्मण को सुग्रीव और बाली की कथा सुनाई और सुग्रीव की ओर से मित्रता का प्रस्ताव रखा। हनुमान ने यह भी बताया कि वाली ने किस प्रकार सुग्रीव को कष्ट पहुंचाया है। फिर उन दोनों वीरों को अपनी पीठ पर बैठा कर पर्वत पर ले गये। हनुमान ने सुग्रीव से राम-लक्ष्मण के बारे में कहा। अग्नि को साक्षी मान कर राम और सुग्रीव एक दूसरे के मित्र हो गये। राम ने बाली वध की प्रतिज्ञा की। फिर सुग्रीव ने सीता द्वारा फेंके गये आभूषण राम को दिखलाये।

ततो गृहीत्वा वासस्तु शुभान्याभरणानि च।
अभवद् बाष्पसंरुद्धो नीहारेणेव चन्द्रमाः।।[39]

अर्थात्- उस वस्त्र और सुन्दर आभूषणों को लेकर श्रीरामचन्द्र जी कुहासे से ढके हुए चन्द्रमा की भांति आँसुओं से अवरुद्ध हो गये।

सुग्रीव ने राम को आश्वस्त किया कि वह सीता का पता अवश्य लगायेगा। फिर सुग्रीव ने यह बताया कि कैसे बाली उनका शत्रु हुआ।

राम ने अपने बल का परिचय देते हुए दुन्दुभि के कंकाल को पैर के अंगूठे से ठेलकर दस योजन दूर उछाल फेंका। फिर एक बाण से सात साल् के वृक्षों को बींध दिया।

स विसृष्टो बलवता बाणः स्वर्णपरिष्कृतः।
भित्वा सालान् गिरिप्रस्थं सप्तभूमिं विवेश ह।।[40]

अर्थात्- उन बलवान् वीर शिरोमणि के द्वारा छोड़ा गया वह सुवर्णभूषित बाण उन सातों साल वृक्षों को एक ही साथ बींधकर पर्वत तथा पृथ्वी के सातों तलों को छेदता हुआ पाताल में चला गया।

बाली और सुग्रीव की शक्ल-सूरत एक जैसी थी। इसलिए पहली बार दोनों के युद्ध में राम ने बाली पर आक्रमण नहीं किया और सुग्रीव की पराजय हुई। लेकिन दूसरी बार राम ने एक माला सुग्रीव के गले में डाल दी ताकि सुग्रीव की पहचान हो सके। राम के बाण से बाली अचेत होकर गिर पड़ा। मरते समय बाली ने राम को बड़ा भला-बुरा कहा। राम ने अपनी सफाई दी और बाली के दोष गिनाये। फिर बाली ने क्षमा-याचना की। अपने पुत्र अंगद को राम के जिम्मे सौंप वाली स्वर्ग सिधार गया।

रोते हुए सुग्रीव, तारा और अंगद को राम ने सान्त्वना दी। फिर बाली का दाह-संस्कार हुआ। सुग्रीव का राज्याभिषेक हुआ। अंगद युवराज हुआ।

Scanned with OKEN Scanner

सुग्रीव अपने सुख में राम को दिया गया वचन भूल गया था। लक्ष्मण ने जाकर उसे डांटा:-

कृतं चेन्नातिजानीषे राघवस्य महात्मनः।
सद्यस्त्वं निशितैर्बाणैर्हतो द्रक्ष्यसि बालिनम्।।[41]

अर्थात्- यदि तुम महात्मा रघुनाथ जी के किये हुए उपकार को नहीं समझोगे तो शीघ्र ही उनके तीखे बाणों से मारे जाकर बाली का दर्शन करोगे।

लक्ष्मण की धमकी से सुग्रीव को होश आया। सुग्रीव ने राम से अपनी भूल के लिए क्षमा याचना की। हनुमान समेत सभी वानरों को चारों दिशाओं में भेजकर सीता का पता लगाने का आदेश दिया।

राम ने अपनी अंगूठी हनुमान को दी। हनुमान वह अंगूठी लेकर अंगद-जाम्बवान आदि के साथ दक्षिण की ओर चल दिये। समुद्र के तट पर हनुमान अंगद आदि से सम्पाति नाम के एक बड़े गृद्ध से भेंट हुई। यह जटायु का बड़ा भाई था जो पंख जल जाने के कारण यहीं रहता था। जटायु की मृत्यु का हाल सम्पाति को मिला। वह बड़ा दुखी हुआ। उसने कहा कि रावण सीता को लेकर लंका गया है। समुद्र पार कर तुमलोगों में से कोई लंका जाये तभी सीता से भेंट होगी।

अब यहाँ प्रश्न उठा कि इस विशाल समुद्र को कौन लांघ सकता है? जाम्बवान जानते थे कि हनुमान शापवश अपनी शक्ति से परिचित नहीं हैं। उन्होंने हनुमान को उनकी शक्ति की याद दिलाई और कहा कि तुम ही समुद्र पार कर सकते हो--

तद् विजम्भस्व विक्रान्त प्लवतामुत्तमो ह्यसि।
त्वद्वीर्यं द्रष्टुकामा हि सर्वा वानरवाहिनी।।[42]

अर्थात्- पराक्रमी वीर! तुम अपने असीम बल का विस्तार करो। छलांग मारने वालों में तुम सबसे श्रेष्ठ हो। यह सारी वानर सेना तुम्हारे बल-पराक्रम को देखना चाहती है।

जाम्बवान के कहने पर हनुमान को अपनी शक्ति का आभास हुआ। उन्होंने अपना विशाल रूप धारण किया और लंका की ओर उड़ चले। बाकी सभी वानर समुद्रतट पर उनकी वापसी की प्रतीक्षा करने लगे।

5. सुन्दरकांड

रामायण का पांचवां कांड 'सुन्दरकांड' के नाम से विख्यात है। इस कांड में कुल अड़सठ सर्ग संग्रहीत हैं। इस कांड में कथा वहां से प्रारम्भ होती है जब जाम्बवान हनुमान को उनकी शक्ति का स्मरण दिलाते हैं और हनुमान अपना विराट शरीर धारण कर समुद्र पार करने के लिए तैयार होते हैं।

हनुमान ने जैसे ही समुद्र लांघने के लिए प्रस्थान किया वैसे ही बीच में मैनाक पर्वत उनके स्वागतार्थ समुद्र से ऊपर आ निकला। आगे बढ़ने पर नागमाता सुरसा हनुमान की परीक्षा लेने हेतु भयंकर रूप बनाकर उपस्थित हुई और हनुमान को खाना चाहा। जैसे-जैसे उसने अपना मुंह फैलाया, वैसे वैसे हनुमान ने भी अपना कद फैलाया। सुरसा ने जब अपना मुंह बहुत फैला लिया तब हनुमान ने झट अपना रूप छोटा कर लिया और

सुरसा के मुह में जाकर बाहर निकल आये:-

प्रविष्टोस्मि हि ते वक्त्रं दाक्षायणि नमोस्तु ते।
गमिष्ये यत्र वैदेही सत्यश्चासीद् वरस्तव।।[43]

अर्थात्- दक्षकुमारी! तुम्हें नमस्कार है। मैं तुम्हारे मुंह में प्रवेश कर चुका। लो तुम्हारा वर भी सत्य हो गया। अब मैं उस स्थान को जाऊंगा, जहां विदेहकुमारी सीता विद्यमान हैं।

आगे चलकर हनुमान की भेंट सिहिंका नाम की राक्षसी से हुई। हनुमान ने उसके मुंह में घुसकर उस राक्षसी का पेट फाड़ दिया और बाहर निकल आये।

ततस्तस्या नखैस्तीक्ष्णैर्मर्माण्युत्कृत्य वानरः।।
उत्पपाताथ वेगेन मनःसम्पातविक्रमः।[44]

अर्थात्- मुख में प्रवेश करके उस वानरवीर ने अपने तीखे नखों से उस राक्षसी के मर्मस्थानों को विदीर्ण कर डाला। इसके पश्चात् वे मन के समान गति से उछलकर वेगपूर्वक बाहर निकल आये।

लंका पहुंचकर हनुमान लंका की शोभा देखने लगे। फिर नगर की देवी लंकिनी सामने आई। उसे भी हनुमान ने पराजित किया और लंकापुरी के घर-घर में सीता की खोज करने लगे।

हनुमान ने रावण को शयन कक्ष में देखा और वहीं सुन्दरी मन्दोदरी को देखा। जब सीता कहीं न मिली तब हनुमान जी बड़े निराश हुए। फिर अशोक वाटिका में घुसे। वहीं सीता से भेंट हुई। लेकिन वे छिप कर बैठे रहे। सबेरे सबेरे वहां रावण आया और उसने सीता को डराया-धमकाया। सीता ने भी रावण को काफी फटकार लगायी।

इमे ते नयने क्रूरे विकृते कृष्णपिंगले।
क्षितौ न पतिते कस्मान्मामनार्य निरीक्षतः।।
तस्य धर्मात्मनः पत्नी स्नुषा दशरथस्य च।
कथं व्याहरतो मां ते न जिह्वा पाप शीर्यति।।[45]

अर्थात्- अनार्य! मेरी ओर दृष्टि डालते समय तेरी ये क्रूर और विकारयुक्त काली-पीली आँखें पृथ्वी पर क्यों नहीं गिर पड़ीं? मैं धर्मात्मा श्रीराम की धर्मपत्नी और महाराज दशरथ की पुत्रवधू हूँ। पापी! मुझसे पाप की बातें करते समय तेरी जीभ क्यों नहीं गल जाती है?

रावण ने सीता को दो महीने का और समय दिया। रावण के लौटने पर अन्य राक्षसियों ने भी सीता को बहलाने फुसलाने का प्रयत्न किया। त्रिजटा नामकी एक राक्षसी ने सीता के सामने अपने स्वप्न का वर्णन किया और बताया कि राम और लक्ष्मण द्वारा रावण और राक्षसों का वध निश्चित है। उसी समय सीता का बांया अंग फड़कने लगा

गजेन्द्रहस्तप्रतिमाश्च पीन-
स्तयोर्द्वयोः संहतयोस्तु जातः।
प्रस्पन्दमानः पुनरूरुरस्या
रामं पुरस्तात् स्थितमाचचक्षे ।।[46]

अर्थात्- फिर उनकी परस्पर जुड़ी हुई दोनों जांघों में से एक बायीं जांघ, जो गजराज की सूंढ़ के समान पीन (मोटी) थी, बारम्बार फड़क कर मानो यह सूचना देने लगी कि भगवान् श्रीराम तुम्हारे सामने खड़े हैं।

इसी बीच हनुमान जी ने राम की सारी दुखभरी कथा सीता से कह डाली। सीता बेहोश हो गई। फिर सीता ने हनुमान को देखा। हनुमान ने अपना परिचय दिया। पहचानस्वरूप हनुमान ने सीता को श्रीराम के नाम से अंकित मुद्रिका दिखाई-

वानरोहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः।
रामनामांकितं चेदं पश्य देव्यंगुलीयकम्।।[47]

अर्थात्- महाभागे! मैं परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीराम का दूत वानर हूँ। देवि! यह श्रीराम नाम से अंकित मुद्रिका है, इसे लेकर देखिये।

हनुमान ने सीता के प्रति राम के प्रेम की बात बताई और धैर्य रखने को कहा। हनुमान ने अपनी शक्ति का परिचय देते हुए अपना विराट रूप दिखाया और सीता को साथ चलने के लिए अनुरोध किया। लेकिन सीता ने हनुमान की बात से साफ इन्कार कर दिया। फिर पहचान के लिए कुछ और कथा सुनाई। अपनी पहचान के लिए सीता ने भी अपना दिव्य चूड़ामणि हनुमान को प्रदान किया ताकि राम उसे प्राप्त कर सकें।

अपनी भूख को शांत करने के लिए हनुमान ने प्रमदा वन को उजाड़ दिया। अनेक लोगों को मार डाला। रावण के पुत्र अक्षय कुमार का भी वध कर दिया। हनुमान के उपद्रव को रोकने के लिए मेघनाद आगे बढ़ा। युद्ध हुआ। लाचार होकर मेघनाद ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर हनुमान को बंदी बना लिया और उन्हें रावण के सम्मुख प्रस्तुत किया। रावण के राजदरबार में बंदी हनुमान ने राम की महिमा बताई –

देवाश्च दैत्याश्च निशाचरेन्द्र
गन्धर्वविद्याधरनागयक्षाः।
रामस्य लोकत्रयनायकस्य
स्थातुं न शक्ताः समरेषु सर्वे।।[48]

अर्थात्- निशाचर! श्रीरामचन्द्र जी तीनों लोकों के स्वामी हैं। देवता, दैत्य, गन्धर्व, विद्याधर, नाग तथा यक्ष-ये सब मिलकर भी युद्ध में उनके सामने नहीं टिक सकते।

हनुमान जी ने रावण से सीता को राम के पास लौटाने का परामर्श भी दिया। लेकिन रावण नहीं माना। उसके आदेश से हनुमान की पूंछ में आग लगा दी गई। हनुमान ने घूम-घूम कर सारी लंका में आग लगा दी। फिर सीता को प्रणाम कर, हनुमान समुद्र लांघकर, जाम्बवान और अंगद आदि से जा मिले। वापसी के क्रम में वे सब मधुवन जा पहुंचे और वहां मधु पीने लगे और फल तोड़कर खाये।

अब अंगद, हनुमान, जाम्बवान आदि वीर किष्किन्धा जा पहुंचे। हनुमान ने सीता और लंका का सारा वृत्तान्त राम से कह सुनाया। सीता से प्राप्त चूड़ामणि भी हनुमान ने राम को दिया। फिर हनुमान ने यह बताया कि सीता, राम-लक्ष्मण आदि की प्रतीक्षा कर रही हैं। इसलिए उन्हें शीघ्र ही लंका पहुंचना चाहिए।

6. युद्धकांड

वाल्मीकिकृत रामायण का छठा कांड युद्धकांड के नाम से चर्चित है। इस कांड में कुल एक सौ अट्ठाईस सर्ग संग्रहीत हैं। इस कांड में हनुमान के लंका से लौटने के बाद की घटना का वर्णन किया गया है।

हनुमान के मुख से सारा समाचार सुन कर राम बहुत प्रसन्न हुए और हनुमान से कहने लगे तुम्हें पुरस्कार देने योग्य मेरे पास कुछ भी नहीं है। उन्होंने हनुमान का आलिंगन किया।

एष सर्वस्वभूतस्तु परिषवगो हनूमतः।
मया कालमिमं प्राप्य दत्तस्तस्य महात्मनः।।[49]

अर्थात्- इस समय इन महात्मा हनुमान को मैं केवल अपना प्रगाढ़ आलिंगन प्रदान करता हूँ, क्योंकि यही मेरा सर्वस्व है।

अब लंका पर चढ़ाई की तैयार होने लगी। वानरों की सारी सेना समुद्रतट पर जा ठहरी। सेना की रक्षा के लिए सुरक्षा की व्यवस्था की गई।

लंका में रावण ने मंत्रियों से सलाह मशविरा किया। सभी सेनापतियों ने रावण को विजय का भरोसा दिलाया। लेकिन विभीषण ने रावण को समझाया कि राम को कोई जीत नहीं सकता है। इसलिए आप सीता को राम के पास लौटा दें। दूसरे दिन भी विभीषण ने रावण को अपशकुनों का भय दिखाया। लेकिन रावण अपने निर्णय पर अटल रहा। इसके बाद रावण ने सेनापति प्रहस्त को कुछ निर्देश दिये। कुम्भकर्ण ने भी रावण को बहुत फटकारा। विभीषण ने रावण को बार-बार समझाने की कोशिश की। मेघनाद ने विभीषण की हंसी उड़ाई और विभीषण को चले जाने का आदेश दिया।

जब विभीषण समुद्र के उस पार राम की शरण में पहुंचे तब सभी लोगों ने उसका विरोध किया। लेकिन राम ने शरणागत को सुरक्षा देना अपना धर्म समझा। समुद्र के जल से राम ने विभीषण का लंका के राजा के रूप में अभिषेक किया।

एवमुक्तस्तु सौमित्रिरभ्यषियंचद् विभीषणम्।
मध्ये वानरमुख्यानां राजानं राजशासनात्।।[50]

अर्थात्- उनके ऐसा कहने पर सुमित्रकुमार लक्ष्मण ने मुख्य-मुख्य वानरों के बीच महाराज श्रीराम के आदेश से विभीषण का राक्षसों के राजा के पद पर अभिषेक कर दिया।

अब समस्या थी सेना के साथ समुद्र पार करने की। विभीषण ने कहा कि हमें समुद्र की शरण लेनी चाहिए। राम कुशा बिछा कर समुद्रतट पर तीन दिनों तक जा बैठे। इस बीच रावण ने शुक नामक राक्षस को पक्षी के रूप में सुग्रीव के पास भेजा। उसने सुग्रीव को अपनी ओर मिलाना चाहा। शुक, वानरों द्वारा बन्दी बना लिया गया। फिर राम की कृपा से शुक मुक्त हुआ।

जब समुद्र ने राम की बात नहीं मानी तब क्रोध में राम ने धनुष पर बाण चढ़ाया। समुद्र प्रकट हुआ। राम से उसने क्षमा मांगी और बताया कि विश्वकर्मापुत्र नल नामक वानर शिल्प कला में निपुण है। वही मेरे ऊपर पुल बना सकता है।--

Scanned with OKEN Scanner

एष सेतुं महोत्साहः करोतु मयि वानरः।
तमहं धारयिष्यामि यथा ह्योष पिता तथा॥[51]

अर्थात्- यह महान् उत्साही वानर अपने पिता के समान ही शिल्पकर्म में समर्थ है, अतः यह मेरे ऊपर पुल का निर्माण करे। मैं उस पुल को धारण करूंगा।

राम ने समुद्र की बात मान ली और नल ने कुछ ही दिनों के भीतर समुद्र पर लम्बा सेतु तैयार कर दिया। सारी सेना समुद्र के पार लंका की धरती पर पहुंच गई।

घमासान युद्ध छिड़ गया। मेघनाद ने अपने बाणों से राम और लक्ष्मण को मूर्छित कर दिया। यह सूचना सीता को दी गई। फिर राक्षसियों ने सीता को पुष्पक विमान पर बैठाकर वह स्थान दिखाया जहां राम-लक्ष्मण पड़े थे। लेकिन त्रिजटा ने सीता को समझाया:-

कारणानि च वक्ष्यामि महान्ति सदृशानि च।
यथेमौ जीवतो देवि भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥[52]

अर्थात्- देवि! मैं तुम्हें कई ऐसे महान् और उचित कारण बताऊंगी, जिनसे यह सूचित होता है कि ये दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण जीवित हैं।

राम जब होश में आये और उन्होंने मूर्छित लक्ष्मण को देखा तब वे विलाप करने लगे। राम रोते हुए अपने भाई लक्ष्मण का गुणगान करते रहे। इसी बीच एक आंधी आई और देखते देखते गरूड़ वहां उपस्थित हो गया। गरुड़ के डर से राम और लक्ष्मण मेघनाद के नागरूपी बाणों से मुक्त हो गये।

युद्ध फिर शुरू हुआ। रावण ने लक्ष्मण पर शक्ति बाण चलाया। लक्ष्मण मूर्छित हो गये। हनुमान की मदद से लक्ष्मण होश में आये। रावण वहां से भागकर महल में चला गया। चिन्तित रावण ने सोते हुए कुम्भकर्ण को किसी प्रकार जगा कर उससे मदद की कामना की। रावण के राम के प्रति कुत्सित व्यवहार से कुम्भकर्ण दुखी हुआ और उसने रावण को सीताहरण के लिए खूब फटकारा। लेकिन अपने बड़े भाई रावण को युद्ध में मदद करने का उसने आश्वासन भी दिया। कुम्भकर्ण ने राम-रावण के युद्ध में तबाही मचा दी। अन्त में राम के हाथों कुम्भकर्ण मारा गया।

अब राक्षसों का सेनापति रावण पुत्र मेघनाद बना। इन्द्रजित् ने माया से सीता का निर्माण कर युद्धभूमि में उपस्थित किया। राम के सामने सीता का वध कर दिया। राम इस घटना को देख दुखी हुए। लेकिन विभीषण ने स्पष्ट किया कि यह मेघनाद की माया है। आप दुखी न हों।

शक्ति संचय हेतु मेघनाद निकुम्भिला देवी के मंदिर में तप करने चला गया। विभीषण को यह ज्ञात था कि शक्ति संचय के पश्चात् मेघनाद को मारना दुष्कर है। विभीषण ने परामर्श दिया कि तप में विघ्न उत्पन्न कर मेघनाद का वध करना आवश्यक है ताकि उसकी साधना पूरी न हो सके। राम ने लक्ष्मण को इन्द्रजित् के वध के लिए निकुम्भिला देवी के मंदिर में भेजा। लक्ष्मण और इन्द्रजित् में घमासान युद्ध हुआ। लक्ष्मण के हाथों मेघनाद मारा गया। इन्द्रजित् मेघनाद की सूचना पाकर रावण मूर्छित हो गया।

शूरः शूरेण संगम्य संयुगेष्वपराजितः।
लक्ष्मणेन हतः शूरः पुत्रस्ते विबुधेन्द्रजित्॥
गतः स परमांल्लोकांइशरैः संतर्प्य लक्ष्मणम्॥[53]

अर्थात्- जिसने देवताओं के राजा इन्द्र को भी परास्त किया था और पहले के युद्धों में जिसकी कभी पराजय नहीं हुई थी, वही आपका शूरवीर पुत्र इन्द्रजित् शौर्य सम्पन्न लक्ष्मण के साथ भिड़कर उनके द्वारा मारा गया। वह अपने बाणों द्वारा लक्ष्मण को पूर्णतः तृप्त करके उत्तम लोकों में गया।

अब अहंकारी रावण का युद्ध में पदार्पण होता है। रावण की शक्ति बाण से लक्ष्मण मूर्छित होते हैं। राम अपने भाई के मूर्छित होने पर वियोग करते हैं। सुषेण वैद्य के कहने पर हनुमान हिमालय पर्वत पर से औषधि लाये और लक्ष्मण स्वस्थ हो गये। फिर राम के बाण से रावण गिर पड़ा और उसकी मृत्यु हुई।

आविवेश महान् हर्षो देवानां चारणैः सह।
रावणे निहते रौद्रे सर्वलोकभयंकरे॥[54]

अर्थात्- सम्पूर्ण लोकों को भय देने वाले रौद्र राक्षस रावण के मारे जाने पर देवताओं और चारणों को महान् हर्ष हुआ।

रावण की मृत्यु से विभीषण काफी दुखी हुआ। रावण का अन्तिम संस्कार कर विभीषण का राज्याभिषेक हुआ। हनुमान ने जाकर सीता को सारा समाचार कह सुनाया। फिर सीता को लेकर वे राम के पास आये। राम ने कहा-'रावण ने तुम्हारा स्पर्श किया है। इसलिए मैं तुम्हें ग्रहण नहीं कर सकता।' सीता ने अग्नि में प्रवेश कर अपनी परीक्षा दी। अग्निदेव सीता को साथ लेकर ऊपर आये और सीता को निष्पाप और निष्कलंक घोषित किया। राम ने सीता को स्वीकार किया। सभी लोग पुष्पक विमान पर सवार होकर अयोध्या वापस आये।

राम के आगमन का समाचार सुनकर भरत ने अयोध्या सजाने का आदेश दिया। राम ने भरत को गले से लगा लिया। नागरिकों ने राम का स्वागत किया। अब राम का राज्याभिषेक किया गया और सभी वानरों को उचित पुरस्कार मिला। सीता ने अपने गले का हार हनुमान को दिया। राम ने भरत को युवराज बनाया और ग्यारह हजार वर्षों तक शासन किया। राम के शासन काल में सारी प्रजा सुखमय थी। कहीं विधवाओं का विलाप नहीं सुनाई पड़ता था। यहीं महर्षि वाल्मीकि ने उल्लेख किया है-

श्रृणोति य इदं काव्यं पुरा वाल्मीकिना कृतम्।[55]
श्रद्दधानो जितक्रोधो दुर्गाण्यतितरत्यसौ।

अर्थात्- पूर्वकाल में महर्षि वाल्मीकि ने जिसकी रचना की थी, वही यह आदिकाव्य है। जो क्रोध को जीतकर श्रद्धापूर्वक इसे सुनता है, वह बड़े-बड़े संकटों से पार हो जाता है।।

7. उत्तरकांड

उत्तरकांड में कुल 111 सर्ग संग्रहीत हैं। यह कांड वाल्मीकि रामायण में कब से जुड़ा अभी यह प्रश्न बना हुआ है। इस कांड में अनेक छोटी-बड़ी कथाएं हैं। मूलकथा

Scanned with OKEN Scanner

लगता है युद्धकांड के साथ ही समाप्त हो गयी है। उत्तरकांड का प्रारम्भ वहां से होता है जब राम के राजा होने के बाद चारों दिशाओं से अनेक ऋषि महर्षि उनके दरबार में पधारे और बोले कि आपने इन्द्रजित् का वध करके सचमुच बहुत बड़ा काम किया है। राम को बड़ा आश्चर्य हुआ कि रावण और कुम्भकर्ण की वीरता की बात न कर इन्द्रजित् की वीरता का इतना महत्व क्यों दिया जा रहा है। उन्होंने ऋषियों से इसका कारण पूछा। इसी प्रसंग में महर्षि अगस्त्य ने पुलस्त्य आदि की उत्पत्ति के साथ रावण का जीवन चरित सुनाया।

रावण का जीवनचरित

राम के प्रश्नों का उत्तर देते हुए महर्षि अगस्त्य ने बताया कि पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा मुनि थे। इन्हीं विश्रवा मुनि के पुत्र वैश्रवण अर्थात् कुबेर थे। कुबेर ने तपस्या करके ब्रह्मा से वर प्राप्त किया था और लंकापुरी में राज्य करने लगा था।

अगस्त्य मुनि ने राक्षसों की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए बताया कि सुकेश देववती के पुत्र माल्यवान, सुमालि और माली हुए। विष्णु और राक्षसों के बीच युद्ध हुआ। सुमालि आदि राक्षस डर कर पाताल लोक चले गये।

सुमालि राक्षस अपनी सुन्दर कन्या कैकसी से बोला कि तुम मुनि विश्रवा को प्रसन्न कर तेजस्वी पुत्र उत्पन्न करो ताकि कुबेर से युद्ध कर लंकापुरी वापस ली जा सके। कैकसी संध्या बेला में विश्रवा के सामने उपस्थित हुई और विश्रवा मुनि से पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा प्रकट की। विश्रवा ने कहा कि तुम संध्या बेला में आई हो, इसलिए तुम्हारे पुत्र क्रूर राक्षस होंगे। लेकिन सबसे छोटा पुत्र धर्मात्मा होगा।

कैकसी ने दशग्रीव रावण, कुम्भकर्ण, शूर्पणखा और विभीषण को जन्म दिया। कुछ दिनों पश्चात् जब कुबेर पुष्पक विमान से वहां आया तब कैकसी ने रावण से कहा कि तुम भी कुबेर की तरह तेजस्वी बनो। रावण ने प्रतिज्ञा की कि मैं कुबेर से बढ़कर कुछ बनूंगा। वह अपने भाइयों के साथ घोर तप करने चला गया।

तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने रावण को वर दिया कि मनुष्य को छोड़कर कोई जीव-जन्तु उसे मार नहीं सकेगा। रावण ने अग्नि में अपने सिर काट-काट कर हवन किया था। वह भी उसे मिल गया। उसे यह वर भी मिला कि जैसा भी रूप वह चाहेगा-बना सकेगा। इसी तरह विभीषण को भी वर मिला और उसे बिना-सीखे ब्रह्मास्त्र का ज्ञान हो गया। कुम्भकर्ण ने आराम से सोने का वर मांगा।

सुमालि के बहकाने से रावण ने कुबेर से लंका की मांग की। कुबेर ने लंका को छोड़ दिया और रावण बिना किसी रक्तपात के लंका का राजा हो गया। मय दानव की पुत्री मन्दोदरी का विवाह रावण के साथ हुआ। इसी तरह कुम्भकर्ण और विभीषण के विवाह भी हुए। मंदोदरी से मेघनाद का जन्म हुआ। बाद में रावण ने अपनी विजय यात्रा के क्रम में अनेक राज्यों को जीता। कुबेर से पुष्पक विमान छीन लिया।

इसी क्रम में रावण, वेदवती नाम की एक महिला के शाप का शिकार हुआ। वही कन्या जनक के राज्य में पृथ्वी से सीता के रूप में उत्पन्न हुई और रावण के वध का करण बनी। जब उसने (रावण) अयोध्या के राजा अनरण्य को पराजित किया तब उसने रावण को शाप दिया कि मेरे वंश में उत्पन्न राम के हाथों तेरा मरण होगा। रावण ने यमराज को भी पराजित किया। रावण ने अनेक स्त्रियों का हरण किया। इसी बीच देवासुर संग्राम में वसु ने रावण के नाना सुमालि को मार गिराया।

रावण के पुत्र मेघनाद ने भी तपस्या करके अनेक वर प्राप्त किये। अनेक दिव्य शक्तियां पाईं। इन्द्र को पराजित किया और उसे बन्दी बना लिया। इसी कारण वह इन्द्रजित् कहलाया। फिर ब्रह्मा जी ने इन्द्र को मुक्त कराया।

अहंकारी रावण युद्ध में सहस्रार्जुन से हार गया और उसका वह बंदी हो गया। फिर महर्षि पुलस्त्य ने रावण को मुक्त कराया। रावण वानरराज वाली से भी जा टकराया। वाली ने उसे बन्दी बना लिया। लेकिन रावण ने उसके साथ मित्रता कर ली।

हनुमान का जीवनचरित

अगस्त्य जी ने हनुमान का चरित बखान करते हुए कहा कि वह केसरी के पुत्र थे। लेकिन उनकी मां अंजना ने वायु के प्रभाव से उन्हें जन्म दिया। हनुमान बड़े वीर थे। एक बार इन्होंने सूर्य और राहू को भी खाने का प्रयत्न किया। इन्द्र के प्रहार के कारण हनुमान की बाई ठोड़ी टूट गई। हनुमान गिर पड़े। वायु ने चलना बंद कर दिया। चारों तरफ हाहाकार मच गया। ब्रह्मा ने हनुमान को स्वस्थ कर दिया। ठोढ़ी टूट जाने के कारण उनका नाम हनुमान हुआ। सूर्य, वरुण आदि देवताओं ने भी हनुमान को वरदान दिये। शंकर ने भी वरदान दिया।

बचपन में हनुमान बड़े उपद्रवी थे। ये शाप के भी भागी हुए। कुछ मुनियों ने उन्हें शाप दिया कि इनको बल का ज्ञान तभी होगा जब कोई इन्हें स्मरण दिलायगा। हनुमान व्याकरण के बड़े पंडित थे। शास्त्र और छन्द का भी इन्हें ज्ञान था। बाद में हनुमान वाली द्वारा उपेक्षित उसके भाई सुग्रीव के मंत्री हुए।

बाली और सुग्रीव का परिचय

अगस्त्य ने बताया कि बाली और सुग्रीव दोनों के माता और पिता एक ही व्यक्ति थे। ऋक्षराज एक वानर था जिसे ब्रह्मा जी ने किष्किन्धा का राज्य सौंपा था। वह ऋक्षराज एक बार तालाब में अपनी परछाई देख कर कूद गया। जब जल से बाहर निकला तब वह एक सुन्दर स्त्री के रूप में था। आकाशमार्ग से जाते इन्द्र उस पर मुग्ध हो गये। उनके तेज से बाली का जन्म हुआ। फिर सूर्य भी उस पर मुग्ध हो गये। उनके तेज से सुग्रीव का जन्म हुआ। अगले दिन ऋक्षराज, स्त्री के वेश में जब तालाब में स्नान कर ऊपर आया तब फिर, पुरुष हो गया। इस तरह ऋक्षराज नामक वानर ही बाली और सुग्रीव दोनों का पिता भी था और माता भी। ये सब किष्किन्धा में रहने लगे।

वैदेही के हरण का कारण

एक बार सनत्कुममार से रावण को जानकारी मिली कि सबसे बलवान व्यक्ति विष्णु हैं और उनके हाथ मरण से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। तभी से रावण विष्णु से युद्ध करने का उपाय सोचने लगा। राम विष्णु के अवतार थे यह जानकर ही रावण ने सीता का हरण किया और माता के समान मानकर, अपने यहां रखा।

Scanned with OKEN Scanner

सुग्रीव और विभीषण, अंगद तथा अन्य वानरों को बहुत सी सामग्री देकर राम और उनके भाइयों ने सबका सम्मान किया। सुग्रीव आदि को किष्किन्धा विदा कर दिया। विभीषण लंका चले गये। राम ने हनुमान को अपनी अचल भक्ति का वरदान दिया। सीता ने अपना हार हनुमान के गले में पहनाया।

सीता वनवास

वाल्मीकि रामायण के अनुसार ग्यारह हजार वर्षों तक राम ने राज्य किया। सीता गर्भवती थीं। वह मुनियों के आश्रम देखना चाहती थीं। तभी एक गुप्तचर वहां पहुंचा और राम को बताया कि रावण सीता को गोद में उठाकर लंका ले गया था। वह इतने दिनों तक लंका में रहीं। इसका प्रभाव प्रजा पर बुरा पड़ रहा है। राम ने लक्ष्मण को आदेश दिया कि तुम वाल्मीकि के आश्रम में सीता को छोड़ आओ। अगले दिन लक्ष्मण सीता को लेकर बन की ओर चले। राह में लक्ष्मण ने उन्हें वस्तुस्थिति की जानकारी दी। लक्ष्मण दुखी मन से वाल्मीकि आश्रम के पास सीता को छोड़कर चले गये। वाल्मीकि ने रोती हुई सीता को अपने आश्रम में शरण दी।

आगे चलकर निमि और मिथिला के नामकरण की कथा है। इस तरह अनेक कथाएं हैं। जैसे-शत्रुघ्न द्वारा मथुरा के राजा लवणासुर के वध की कथा, शम्बूक वध की कथा, दण्डकारण्य की कथा, वृत्रासुर वध की कथा, धर्मात्मा इल की कथा आदि आदि।

राम, अश्वमेध यज्ञ करना चाहते थे। सीता की स्वर्ण प्रतिमा बनाई गई। अनेक अतिथि आये। वाल्मीकि भी अपने शिष्यों के साथ आये। उनके साथ ऋषि कुमार के रूप में लव और कुश भी थे। राम ने उनलोगों को नहीं पहचाना। वे दोनों बालक रामायण का गान कर सबका मनोरंजन करते रहे। बाद में राम ने सीता को बुलवा भेजा और सीता को सबके सामने अपनी शुद्धता के लिए शपथ लेने को कहा। सीता ने पृथ्वी से प्रार्थना की कि तुम फट जाओ और मुझे अपनी गोद में ले लो। क्षणभर में पृथ्वी फट गई और सीता को अपनी गोद में लेकर रसातल में समा गई।

कुछ समय पश्चात् एक तपस्वी राम से मिलने आया। वह तपस्वी काल था। राम ने लक्ष्मण को द्वार पर बैठा दिया कि कोई अन्दर न आये। एकान्त में तापस रूपी काल ने राम से कहा कि पृथ्वी पर आपका समय पूरा हो गया। अब आप अपने लोक को वापस चलें। इसी बीच दुर्वासा मुनि द्वार पर आ गये और भीतर जाने का हठ करने लगे। दुर्वासा ने लक्ष्मण को शाप का भय दिखलाया। डर से लक्ष्मण ने जाकर राम को दुर्वासा के आगमन की सूचना दी। काल और दुर्वासा तो चले गये लेकिन राम और लक्ष्मण के लिए एक संकट खड़ा कर गये। लक्ष्मण ने आज्ञा उलंघन के लिए दंड की याचना की। अपने मन के विरुद्ध राम ने उन्हें निर्वासन का दंड दिया। लक्ष्मण बाहर आये और सरयू के तट पर अपने प्राण त्याग दिये। बाद में राम ने कोशल में कुश को और उत्तर कोशल में लव को राजा के रूप में प्रतिष्ठित किया।

अयोध्या से राम, भरत और शत्रुघ्न महाप्रस्थान की ओर चल दिये। अन्य लोग भी साथ-साथ चले। सरयू के तीर पर सभी लोगों ने अपने प्राण त्याग दिये।

संदर्भ-सूची

1. डॉ0 के0 आर0 चन्द्रा : दि क्रिटिकल स्टडीज़ ऑफ पउमचरियं
2. पउमचरियं, सूत्रविधान, प्रथम उद्देश्य, गाथा-31 पृ.3
3. पउमचरियं, भाग-1, उद्दे0-4,गाथा-84, पृ.37
4. पउमचरियं,भाग-1 राक्षसवंश, उद्दे0-5,गाथा-251 पृ.55
5. पउमचरियं, उद्देश्य,-6 गाथा-89 पृ.63
6. प0चरियं, -भाग-1, उद्देश्य-8, गाथा-38, पृ.88
7. पउमचरियं, भाग-1, 9वां उद्दे0,गाथा-112, पृ.105
8. पउमचरियं, उद्देश्य-7, गाथा-96--पृ.-80
9. पउमचरियं, भाग-1, उद्दे0-9, गाथा-46, पृ.108
10. पउमचरियं, उद्दे0-8, गाथा-134, पृ.94
11. पउमचरियं, भाग-1, उद्दे0-9, गाथा- 46 पृ.108
12. पउमचरियं, उद्देश्य 23, गाथा21, पृ0-212
13. पउमचरियं, भाग-1, उद्दे0-28, गाथा-114, पृ0-235
14. पउमचरियं, उद्दे0-32, गाथा-58, पृ0-258-259
15. पउमचरियं, भाग-1, उद्दे0-33, गाथा-139, पृ0-270
16. पउमचरियं, भाग-1, पर्व-40,गाथा- 16, पृ.302
17. पउमचरियं, पर्व-41, गाथा-70, पृ0-306-307
18. पउमचरियं, पर्व-43, गाथा-26-27, पृ.311
19. पउमचरियं, भाग-1, पर्व-48,गाथा-99-पृ.337
20. पउमचरियं, भाग-1 पर्व-54, गाथा-42, पृ0-360
21. पउमचरियं, पर्व 65, गाथा-17 पृ0-394
22. पउमचरियं, पर्व-73, गाथा-27, पृ0-423
23. पउमचरियं, पर्व-97, गाथा-7, पृ0-504
24. महर्षि वाल्मीकि : श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण,खंड-1 प्रथम संस्करण, -स्वंत्-2017, पृ0-1
25. महर्षि वाल्मीकि : श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, प्रथम खंड, प्र0सं0-2017, पृ0-8
26. श्री वाल्मीकीय रामायण-खंड-2, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं0-बत्तीसवां, युद्धकांड, पृ. 596
27. वा0रा0,खंड-1, 1, 15, 28
28. वा0रा0 भाग-1, 1, 22, 18
29. वा0रामा0 भाग-1, 2, 11, 27, पृ0-213
30. वा0रा0, भाग-1, 2, 11, 28, पृ0-213
31. वा0रा0, भाग-1, 2, 21 श्लोक-12, पृ0-247
32. वा0रा0 भाग-1, 2,सर्ग-64,श्लो0-54, पृ0364
33. वा0 रा0, भाग-1, 2,सर्ग-101,श्लोक-10

Scanned with OKEN Scanner

34. वा0रा0, भाग-1, 3, 12, श्लोक-35-36, पृ0-521
35. वा0रा0, खंड-1, 3, 25, श्लोक-41, पृष्ठ-549
36. वा0रा0, खंड-1, 3, 41, श्लोक-20, पृष्ठ-584
37. वा0रा0, खंड-1, 3, सर्ग-68, श्लोक-16, पृ0-650
38. वा0रा0, खंड-1, 4, सर्ग-3, श्लोक-28-29
39. वा0रा0, खंड-1, 4, सर्ग-6, श्लो0-16, पृष्ठ-688
40. वा0रा0- खंड-1, बालि 4, सर्ग-12, श्लोक-9, पृ0-705
41. वा0रा0, खंड-1, 4, सर्ग-34, श्लो0-17, पृष्ठ-777
42. वा0रा., खंड-1, 4, सर्ग-66, श्लो0-35, पृ0-843
43. वा0रा0- खंड-2, 5, सर्ग-1,श्लो0-169, पृ0-11
44. वा0रा0, खंड-2, 5, सर्ग-1, श्लो0-196, पृ0-13
45. वा0रा0: खंड-2, 5, सर्ग-22, श्लो0-18-19, पृ0-75
46. वा0रा0 भाग-2, 5, सर्ग-29, श्लो0-4, पृ0-92
47. वा0रा0 भाग-2, 5, सर्ग-36, श्लो0-2, पृ0-109
48. वा0रा0, भाग-2, 5, सर्ग-51, श्लो0-43,पृ0-153
49. वा0रा0, भाग-2, 6, सर्ग-1,श्लो0-13,पृ0-204
50. वा0रा0, भाग-2, 6, सर्ग-19, श्लो0-26, पृ0-248
51. वा0रा0 खंड-2, 6, सर्ग-22, श्लो0-46, पृ0-257
52. वा0रा0, खंड-2, 6, सर्ग-48, श्लो0-23, पृ0-326
53. वा0रा0, खंड-2, 6, सर्ग-92, श्लो0-3, पृ0-487
54. वा0रा0, खंड-2, 6, सर्ग-108, श्लो0-30,पृ0-537
55. वा0रा0, खंड-2, 6, सर्ग-128,श्लो0-112,पृ0-595

चतुर्थ अध्याय

चरित्र चित्रण

साहित्य की किसी भी विधा के सम्यक् लेखन के लिए कथानक और पात्र अनिवार्य अंग होते हैं। निश्चित रूप से संस्कृत भाषा का आदिकाव्य वाल्मीकि रामायण और जैनों की प्रथम रामायण पउमचरियं इसके अपवाद नहीं है। इनका कथानक 'रामकथा' अवश्य सार्वभौमिक हैं किन्तु चिन्तन और परिवेश का अन्तराल है।

अत: दोनों कृतियों को ठीक से समझने के लिए कथानक के साथ-साथ पात्रों का अध्ययन भी आवश्यक है। वैसे इन काव्यों के अन्तर्गत चरित्र भेद मूलतः दो भिन्न परम्पराओं से इन दोनों के पृथक् होने के कारण हुआ है। कथानक के सम्बन्ध में हम पिछले अध्याय में प्रस्तुति दे चुके हैं। अब अध्ययन की गम्भीरता और सुविधा की दृष्टि से पात्रों को दो वर्गों में विभाजित किया है-(1) प्रमुख पात्र और (2) गौण पात्र।

पउमचरियं के रचयिता का कहना है कि यह पद्मचरित आचार्यों की परम्परा से चला आ रहा था, नामावलीबद्ध था और साधु-परम्परा (साहु परम्पराएँ) 118, 102) द्वारा लोकप्रसिद्ध हो गया था। इसका अर्थ यह हो सकता है कि राम चरित केवल नाम के रूप में रहा होगा अर्थात्-"उसमें कथा के प्रधान-प्रधान पात्रों, उनके माता-पिताओं, स्थानों और भवान्तरों आदि के नाम ही होंगे। वह पल्लवित कथा के रूप में न होगा और उसी की विमलसूरि ने विस्तृत चरित के रूप में रचना की होगी।"[1]

वाल्मीकिकृत रामायण महाकाव्य के अन्तर्गत असत्य पर सत्य की विजय अधर्म पर धर्म का आधिपत्य, गार्हस्थ जीवन के विभिन्न प्रसंग, भ्रातृ प्रेम, मैत्री, पितृभक्ति आदि का समावेश किया गया है। ये सारे प्रसंग इक्ष्वाकुवंश के लोकप्रिय चरित्र राम की कथा के माध्यम से प्रस्तुत किये गये हैं। इस ग्रंथ में मूल कथा है:- राम का जन्म, शिक्षा, जनकपुर में सीता के साथ शुभ विवाह, राम-लक्ष्मण-सीता का वनवास, रावण द्वारा सीता का हरण, हनुमान-सुग्रीव से राम की मित्रता, सीता की खोज, राम-लक्ष्मण और सीता का अयोध्या आगमन। उत्तरकांड के अन्तर्गत सीता परित्याग के बाद वाल्मीकि आश्रम में लव-कुश का जन्म एवं कुछ और क्षेपक कथाएं सम्मिलित हैं।

शोध प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में मैंने अध्ययन की गम्भीरता और सुविधा की दृष्टि से चरित्र-चित्रण शीर्षक अध्याय रखा है। वाल्मीकि रामायण और जैन रामायण 'पउमचरियं' के अध्ययन के पश्चात् मैंने महसूस किया कि इनके एक एक चरित्र इतने महत्वपूर्ण और विस्तृत रहे हैं जिनके चरित्र पर अलग से स्वतन्त्र शोध कार्य किये जा सकते हैं। इसलिए प्रमुख पात्रों और गौण पात्रों की श्रेणी में चरित्रों को रखना मेरे लिए अन्तर्द्वन्द्व का विषय बना रहा। काफी मंथन-चिंतन के पश्चात् मैंने निष्कर्ष निकाला कि

Scanned with OKEN Scanner

में कुछ ही चरित्रों पर प्रकाश डालूँ ताकि अन्य अध्यायों की तुलना में इस अध्याय का अधिक विस्तार न हो जाये तथा अपेक्षित तथ्य भी आ जायें।

जैन साहित्य में त्रिषष्ठि शलाका पुरुषों की गाथा वर्णित है जिसमें नौ बलदेव, नौ वासुदेव और नौ प्रतिवासुदेव सदैव समकालीन रहते हैं। राम, लक्ष्मण और रावण रामायण के ऐसे पात्र रहे हैं जो क्रमशः आठवें बलदेव, वासुदेव, और प्रतिवासुदेव के रूप में रखे गये हैं। दोनों भाषाओं के रामकाव्य में राम, लक्ष्मण और रावण जैसे चरित्र आये हैं। एक ओर वाल्मीकि रामायण में रावण वध राम के हाथों दिखलाया गया है तब दूसरी ओर 'पउमचरियं' महाकाव्य में रावण वध लक्ष्मण के हाथों दर्शाया गया है।[2]

शोध प्रबन्ध के इस चतुर्थ अध्याय के प्रमुख पात्रों में मैंने राम, लक्ष्मण और रावण पर ही प्रकाश डालने का प्रयास किया है ताकि दोनों ग्रंथों के चरित्र समान स्तर से बन पायें। रामकथा के प्रमुख पात्रों में यदि सीता का चरित्र छोड़ दें तब यह हमारा बहुत बड़ा अपराध होगा। बिना सीता के रामकथा का आधार ही ध्वस्त हो जायेगा। क्योंकि कथा का केन्द्र सीता हैं। अतः त्रिषष्टि शलाका के तीन पात्रों के साथ ही सीता को भी प्रमुख पात्रों में लेना आवश्यक प्रतीत होता है। इस प्रकार इस अध्याय के प्रमुख पात्र हैं - राम, लक्ष्मण, रावण और सीता।

(2) गौण पात्र चयनित करने का मेरा यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि उनका इस कथानक में कोई महत्व ही नहीं है। ये ऐसे पात्र रहे हैं जिनके आगमन से कथानक में कोई नया मोड़ आता दीखता है अथवा इन पात्रों के आगमन पर पाठकों को एक नई उत्सुकता महसूस होती है।

गौण पात्रों के चयन में भी मुझे अधिक कठिनाई हो रही थी। वाल्मीकि रामायण के किस पात्र को छोड़ा जाये? सीता, हनुमान, दशरथ, सुग्रीव, मंदोदरी, शबरी, सुमन्त्र, मारीच, बालि आदि ऐसे चरित्र रहे हैं जिन पर कम से कम भी लिखा जाये तब भी पांच पृष्ठ होंगे ही। ठीक इसी तरह विमलसूरि कृत 'पउमचरियं' के गौण पात्रों को लेने पर यह अध्याय काफी विस्तृत हो जाता। इसलिए मैंने गौण पात्रों में कैकेयी, हनुमान, दशरथ और सुग्रीव के चरित्रों को ही लिया है।

(क) विमलसूरिकृत 'पउमचरियं' के प्रमुख पात्र

राम

विमलसूरिकृत 'पउमचरियं' में राम को आठवें बलदेव के रूप में मान्यता दी गई है (पउमचरियं, उद्देश्य-20, गाथा-2 (उद्देश्य-21, गाथा-1)। यह मान्यता 'त्रिशष्ठि शलाकापुरुष' में भी वर्णित है। इनकी मां अपराजिता (कौशल्या) रही हैं जिन्होंने मुख सौंदर्य को देखकर 'पउमसरिसमुंह' (25.7) का संबोधन किया और दशरथ ने उन्हें 'पउमुप्पलदलच्छो' (25.8) अर्थात् पद्मकमलदल नेत्र वाले का संबोधन किया। 'पद्म' के संबोधन से यह भी प्रतीत होता है कि राम गोरे थे। इस ग्रंथ में राम के तीन पूर्व जन्मों की कथा का उल्लेख किया गया है। राम एक जन्म में व्यापारी के पुत्र धनदत्त थे, फिर

विद्याधर राजकुमार नयनानन्द और राजकुमार श्री चन्द्रकुमार रहे हैं। यही आगे चलकर दशरथनन्दन राम हुए।

राम की शिक्षा के सम्बन्ध में जानकारी मिलती है कि ज्ञान, विज्ञान, बल, शक्ति जैसे समस्त ज्ञान उन्हें प्राप्त थे। इनके गुरु के बारे में जानकारी दी गई है कि काम्पिल्य नगर के भार्गव का पुत्र, जिसे धनुष-बाण और शस्त्रों में कौशल प्राप्त था, राम के गुरु थे।

जब जनक के राज्य पर म्लेच्छों ने आक्रमण किया और जब जनक ने एक दूत को भेजकर दशरथ से मदद मांगी, तब दशरथ उनकी मदद को जाने के लिए तैयार हुए। लेकिन राम ने अनुरोध किया कि मेरे रहते आप म्लेच्छों से युद्ध करने न जायें। दशरथ ने कहा तुम अभी बच्चे हो। लेकिन राम ने कहा-

भणइ पउमो नराहिव!, थोवो च्चिय हुयवहो वणं बहुयं।
डहइ य खेणेण सव्वं, किं व बहुत्तेण निव्वडई?[3]

अर्थात्- 'हे राजन्! थोड़ी-सी आग सारे बड़े वन को क्षण में जला डालती है। बहुत से क्या होता है?

राम द्वारा जनक को विजय मिलने के बाद प्रसन्न हो राजा जनक ने अपनी पुत्री सीता से राम का विवाह करने का वचन दिया। इस ग्रंथ में सीता के एक भाई भामण्डल का उल्लेख भी किया गया है जिसे बालपन में ही पूर्व के वैर का बदला लेने के लिए देव ने उसका अपहरण किया था। आगे चलकर विद्याधर राजा चन्द्रगति के महल में भामण्डल का पालन-पोषण होता है। सीता के चित्र को देख भामण्डल ने सीता से विवाह करना चाहा। पुत्र की प्रसन्नता के लिए राजा चन्द्रगति ने जनक पर इसके लिए दवाब बनाया। निर्णय यह किया गया कि सीता स्वयंवर में राम को महाधनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाना होगा। राम ने धनुष पर डोरी चढ़ाकर सीता से विवाह किया।[4]

पउमचरियं में वर्णन किया गया है कि चारों भाइयों के विवाहोपरान्त दशरथ प्रव्रज्या लेना चाहते हैं। लेकिन राज्य त्याग से पूर्व राज्य भार, कुलपरम्परा के अनुसार अपने ज्येष्ठ पुत्र पद्म को सौंपना चाहते हैं। दशरथ की प्रव्रज्या सुन भरत भी प्रभावित होकर वैराग्य लेना चाहते हैं। इसी बीच कैकेयी अपने पुत्र भरत के लिए राज्य सौंपने की मांग दशरथ से करती है। दशरथ ने भरत को राज्य सौंपने का निर्णय लिया और राम को बुला कर कहा-''कैकयी के सारथीपन से प्रसन्न हो मैंने उसे एक वर दिया था। आज कैकेयी ने अपने पुत्र के लिए सारा राज्य मांगा है। मैं क्या करूँ?'' इस पर राम ने कहा-हे तात! आप अपना वचन रखें। आपकी लोक में अकीर्ति हो तो मेरे लिए भोग का कारण नहीं है। योग्य पुत्र को तो सदैव ऐसा ही हृदय में सोचना चाहिए, जिससे पिता एक मुहूर्त के लिए भी शोक न करें[5]।

आदर्श भाई राम

आचार्य विमलसूरि ने अपने महाकाव्य पउमचरियं में 'पद्म' अर्थात् राम को एक आदर्श भाई के रूप में चित्रित किया है। कैकेयी द्वारा राजा दशरथ से एक वर मांगने के

Scanned with OKEN Scanner

क्रम में भरत के लिए राज्य मांगा गया है। इसी क्रम में 'पद्म' अपने अनुज भरत से कहते हैं तुम चिरकाल पर्यन्त निष्कंटक और इच्छानुसार राज्य करो। निर्मल कीर्तिवाले हे भरत! तुम पिता और माता के वचन का पालन करो। भरत को कोई व्यवधान न हो इसके लिए राम कहते हैं कि 'जंगलों में, नदियों पर तथा पर्वतों के ऊपर एकान्त में मैं निवास करूँगा, जिससे मुझे कोई पहचान न सके।[6] राम वनगमन स्वेच्छा से करते हैं।

रावण से युद्ध करते हुए जब लक्ष्मण शक्तिबाण से आहत हो चेतनशून्य हो जाते हैं तब राम का विलाप हृदयविदारक है। वे कहते हैं-" हे वत्स! गुरुजनों ने तुमको एक धरोहर के तौर पर आदर के साथ मुझे सौंपा था। निर्लज्ज मैं उन्हें अब क्या उत्तर दूँगा? इसके अलावा पउमचरियं में राम का विलाप अपने अनुज के लिए और भी देखने को मिलता है।[7] अपने अनुज के प्रति भाई राम का यह विलाप एक आदर्श भाई का उदाहरण कहा जा सकता है।

आदर्श पति राम

सीता पर राम का अतिशय प्रेम था। पत्नी सीता के अपहरण के पश्चात् राम की दशा दयनीय है। वे पागल की भांति सीता को ढूंढते हैं। वृक्षों, पौधों, लताओं से सीता के अपहरण की जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं। वे कहते हैं- "हे तरुवर! तुम भी बहुत ऊंचे और सघन पत्रों की छाया वाले हो। क्या तुमने इस जंगल में अपूर्व नारी नहीं देखी? चक्रवाकी की आवाज सुन राम उस ओर अभिमुख होते हैं, लेकिन निराश होते हैं। पत्नी वियोग में राम के पागल सदृश्य विचरण का वर्णन कुछ इस तरह है-

दिट्ठा दिट्ठा सि मए, एहेहि इओ इओ कुउल्लावो।
धावइ तओ तओ च्चिय, पडिसद्दयमोहिओ रामो॥
अहवा दुट्ठेण इहं, केण व हरिया महं हिययइट्ठा?।
घणगिरि-तरुसंछन्नं, कत्तो रण्णं गवेसामि?॥[8]

अर्थात्- 'मैंने तुम्हें देख लिया है, देख लिया है, (इधर आओ, इधर आओ- इस प्रकार प्रलाप करते हुए और प्रतिध्वनि से मोहित राम जहां तहां दौड़ते थे। अथवा मेरी हृदयप्रिया का किसी दुष्ट ने अपहरण किया है, अत: सघन पर्वतों और वृक्षों से आच्छन्न अरण्य में उसे कहां खोजूं?'

राम, हनुमान के द्वारा सीता के पास संदेश भेजते हैं-तुम्हारे वियोग में राम चैन नहीं पाते। मैं जानता हूं कि मेरे वियोग से तुम मर जाओगी। फिर भी हे सुन्दरी! चित्त की स्वल्पता के लिए तुम प्राणों को धारण किये रखना। लोक में समागम दुर्लभ है, उससे भी दुर्लभ है धर्म और सबसे ज्यादा दुष्कर है समाधिमरण। हे सीते! तुम उस राक्षस द्वीप में मर मत जाना। मैं वानर सेना के साथ तुम्हारे पास आ जाऊंगा।[9]

पद्म, सीता के प्रति पूर्णत: समर्पित हैं। सुग्रीव द्वारा अनेक महिला रत्नों को राम के समक्ष उपस्थित करने के बाद भी राम उन महिलाओं के प्रति अनासक्ति व्यक्त करते हैं। वे कहते हैं सारे जीव लोक में मैं सीता जैसी कोई देवी, मानुषी, नागकन्या अथवा यक्षिणी स्त्री नहीं देखता।[10]

रावण वध के बाद राम को सीता के अंगीकार करने में तनिक भी देर नहीं हुई। वे सीता की अग्नि परीक्षा नहीं कराते हैं और सीता को अंगीकार करते हैं।

पउमचरियं के 'पद्म' अर्थात् राम आठ हजार महिलाओं के पति होते हैं लेकिन उनकी निष्ठा सीता में ही केन्द्रित है। वे सदैव सीता के ही आदर्श पति बने रहे। लोकापवाद के कारण सीता को राम बन भेजते हैं-लेकिन इसके बाद भी वे सीता के प्रति सदा अधीर और व्यग्र बने रहते हैं।[11] अपने पुत्र लवण और अंकुश के साथ सीता अयोध्या पहुंचकर प्रव्रज्या ग्रहण करती है और राम अपना सुध-बुध खो कर प्रलाप करते हैं।

आदर्श योद्धा राम

'पउमचरियं' के पद्म अर्थात् राम को सफल सैन्य संगठन, युद्ध संचालन, कूटनीति और रणनीति में कुशल सेनाध्यक्ष और कुशल योद्धा के रूप में देखते हैं। बाल्यकाल में म्लेच्छों को पराजित कर राम ने जनक से उपहार स्वरूप सीता को प्राप्त किया-

तं पुरिसयारनिहसं, दट्ठूण नराहिवेण तुट्ठेणं।
रामस्स नियवधूया, जणएण निरूविया सीया॥[12]

अर्थात्-'ऐसे अद्वितीय पौरुष को देखकर संतुष्ट राजा जनक ने अपनी पुत्री सीता राम को दी।'

राम युद्ध नीति और राणनीति में कुशल रहने के कारण ही सुग्रीव और विभीषण जैसे पराक्रमी लोगों से मैत्री स्थापित करते हैं और रावण की सेना का संहार करते हैं। खर-दूषण की सेना का संहार करते हैं।

मातृभूमि से दूर रह कर अपरिचित प्रदेशों में विजातियों की सहायता से विश्व विजयी, महाबली राक्षसों का नाश करना राम के आदर्श सेनाध्यक्ष होने के प्रमाण हैं।

आदर्श राजा राम

रावण के संहार के बाद राम का अयोध्या आगमन होता है। यहां राम राजा के कर्तव्यों का पालन करते हैं। प्रजा कल्याण के लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं। लोकापवाद को दूर करने के लिए राम अपनी प्रिय पत्नी सीता का परित्याग करते हैं। राम के वियोग में अस्त-व्यस्त अयोध्या नगरी को पुन: व्यवस्थित करने में लग जाते हैं। जीवन के अन्तिम काल में राम प्रव्रज्या लेते हैं और अवधिज्ञान प्राप्त करते हैं।[13] महाकवि विमलसूरि ने भी जैन परम्परा के अनुसार राम को आठवें बलदेव के रूप में स्वीकृति प्रदान की है-

इक्खागवंसतिलयं, इह भरहे अट्ठमं तु बलदेवं।
तं नमह णेयभवसयसहस्समुक्कं सिवपयत्थं॥[14]

अर्थात्- "इक्ष्वाकु वंश में तिलकरूप, इस भरतक्षेत्र में आठवें बलदेव, अनेक ऋद्धि से युक्त और सुन्दर राम को वन्दन करो।"

लक्ष्मण

'पउमचरियं' महाकाव्य में लक्ष्मण का चरित्र राम सीता के सेवक और अनुज के रूप में चित्रित किया गया है। वे राम के सहायक हैं सदैव उनकी छाया बने रहे हैं। इस

Scanned with OKEN Scanner

ग्रंथ में लक्ष्मण के पूर्व जन्मों की कथा का भी उल्लेख किया गया है। फादर कामिल बुल्के ने भी 'रामकथा' ग्रंथ में उल्लेख किया है कि 'पूर्व जन्म में लक्ष्मण धनदत्त (राम) के भाई वसुदत्त थे। बाद में वे हरिण के रूप में प्रकट हुए तथा कई बार जन्म लेने के बाद दशरथ के पुत्र के रूप में जन्म लिया। परवर्ती साहित्य में लक्ष्मण को प्रायः शेशनाग का अवतार माना गया है।"[15]

जैन परम्परा के अनुसार त्रिशष्ठि शलाका पुरुषों में लक्ष्मण को अष्टम वासुदेव के रूप में माना गया है। पउमचरियं में दशरथ की पत्नी सुमित्रा का एकमात्र पुत्र लक्ष्मण हैं। इनके नामकरण के सम्बन्ध में उल्लेख किया गया है कि नील कमल दल के समान श्याम वर्ण वाले लक्षणों से युक्त होने के कारण इनका नामकरण लक्ष्मण हुआ।[16]

भार्गव पुत्र द्वारा लक्ष्मण को शिक्षा-दीक्षा प्राप्त हुई। इनके पराक्रम और शौर्य का परिचय हमें उस समय प्राप्त होता है जब म्लेच्छों के उपद्रव को शांत करने के लिए वे राम के साथ जनकपुर गये थे।

सीता स्वयंवर में राम ने धनुष पर डोरी चढ़ाई थी और सीता से विवाह किया था। लेकिन लक्ष्मण ने वज्रावर्त्त धनुष को गोल कर मोड़ने का काम किया और विद्याधर के साथ अन्य राजाओं को अपनी वीरता का परिचय दिया। जनकपुर में इनकी वीरता से प्रसन्न होकर विद्याधरों द्वारा लक्ष्मण को अठारह उत्तम कन्याएं प्रदान की जाती हैं। राम के साथ वनवास काल में लक्ष्मण को और भी अनेक कन्याएं प्रदान की जाती हैं। इस तरह लक्ष्मण की विशल्या आदि आठ पटरानियों के साथ सोलह हजार पत्नियों का उल्लेख 'पउमचरियं' में आया है।

लक्ष्मण एक आदर्श भ्राता के रूप में दीखते हैं। राम की काया की छाया बने रहते हैं। सदैव वे राम और सीता के सेवक बने रहते हैं। इस ग्रंथ के अनुसार सीता हरण का कारण शम्बूक वध बताया गया है। शम्बूक हत्या के पश्चात् खरदूषण से लक्ष्मण भीषण युद्ध करते हैं और राम एवं सीता को एक स्थान पर छोड़ देते हैं। लेकिन रावण की कूटनीति के कारण राम, लक्ष्मण के पास जाते हैं और सीता की देखरेख में जटायु होते हैं। इसी बीच जटायु से युद्ध कर रावण सीता का अपहरण करता है।

राम के साथ वन गमन करते हुए लक्ष्मण अपने पिता के निर्णय से क्षुब्ध अवश्य होते होते हैं-लेकिन दूसरे किसी के प्रति उनका क्रोध नहीं दीखता। लक्ष्मण ने कहा है-इस जगत् में परिपाटी के अनुसार राजाओं को राज्य मिलता है। अदीर्घदर्शी पिता ने विपरीत ही किया है। आज मैं राज्य की धुरा को धारण करने वाले भरत का सब कुछ विनष्ट कर डालता हूँ और कुल परम्परा से प्राप्त आसन पर राम को बिठाता हूँ।[17]

भ्राता राम के प्रति लक्ष्मण की श्रद्धा और उनके प्रति समर्पण के भाव कई स्थलों पर वर्णित हैं। सीता हरण के पश्चात् जब राम विचलित होते हैं, विलाप करते हैं तब लक्ष्मण उन्हें धैर्य धारण करने का अनुरोध करते हैं। लेकिन जब राम प्राणान्त करने को उद्धत होते हैं तब लक्ष्मण भी धैर्य खोकर प्राणान्त करना चाहते हैं। वे विद्याधर चन्द्रोदर पुत्र विराधित से कहते हैं-'' हे वत्स! विरह में यदि वे अपने प्राण छोड़ देंगे तो मैं भी आग की राशि में (अर्थात् चिता में) प्रवेश करूँगा, इसमें संदेह नहीं।[18]

रावण वध के बाद अयोध्या वापस लौटने पर इस ग्रंथ में राम का राज्याभिषेक नहीं कर महाकवि ने लक्ष्मण का राजतिलक दिखलाया है। लक्ष्मण का शील और विवेक पउमचरियं महाकाव्य में वर्णित है। भामण्डल से बातें करते लक्ष्मण जानकारी देते हैं कि दूत वध अन्यायपूर्ण है। दूत वध से यश की प्राप्ति नहीं होती। नीतियुक्त बातों में वे कहते हैं-''लोक में जो उत्तम मनुष्य होते हैं वे ब्राह्मण, श्रमण, दूत, बालक और वृद्ध पर घात नहीं करते।''[19]

इस ग्रंथ में रावण वध लक्ष्मण द्वारा वर्णित है। महाकवि ने इसके कारण के सम्बन्ध में उल्लेख किया है कि पूर्व जन्म में स्वयम्भू श्री भूति, पुरोहित का शत्रु था, इसलिए लक्ष्मण ने इस जन्म में रावण का वध किया। जो जिसको पूर्व भव में मारता है, वह उसके द्वारा अगले जन्म में मारा जाता है।[20]

इस ग्रंथ में रावण वध के बाद राम कैद किये गये कुम्भकर्ण एवं अन्य सुभटों को मुक्त करने का आदेश देते हैं। लक्ष्मण यहां कहते हैं-''यद्यपि शत्रु अपकारी होता है, फिर भी सम्माननीय सुभट की तो विशेष प्रशंसा करनी चाहिए।'' इन्द्रजित् आदि सुभटों को सान्त्वना देकर उन्होंने कहा कि शोक एवं उद्वेग का परित्याग करके तुम पहले की भांति अपने भोगों का उपभोग करो।[21]

राम और लक्ष्मण के भ्रातृत्व प्रेम की परीक्षा लेने हेतु देवताओं ने लक्ष्मण को राम की मृत्यु का विश्वास दिलाया। भ्राता के वियोग में लक्ष्मण ने अपने प्राण त्याग दिये और उन्हें नरक की प्राप्ति हुई।

रावण

जैन परम्परा के अनुसार रावण को प्रतिनायक कहा गया है। पउमचरियं में रावण के पिता का नाम रत्नश्रवा है और माता का नाम केकसी है। केकसी के स्वप्नों को सुन कर ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी कि उसे विक्रम, माहात्म्य एवं शक्ति से युक्त, देवताओं के इन्द्र के समान रूप वाले तथा विरोधी शत्रु का विनाश करने वाले तीन वीर पुत्र होंगे। प्रथम पुत्र पुण्यकर्म के फलस्वरूप विशाल कीर्तिवाला तथा चक्रवर्त्ती के समान वैभव वाला होगा। शत्रुओं के भय की परवाह न करने वाला, युद्ध क्रीड़ा के कलह में सदा लीन रहने तथा उत्तम और क्रूर कर्म करने वाला होगा-इसमें कोई संदेह नहीं है।

जन्म के बाद रावण को उसकी मां केकसी ने पूर्व काल में मेघवाहन से प्राप्त किये गये नौ मोतियों की माला पहनाई। रावण का मुख नौ मोतियों में प्रतिबिम्बित होने लगा जिसके कारण रावण का नामकरण दशमुख रखा गया-।[22]

जैन धर्म में रावण को आठवां प्रतिवासुदेव कहा गया है। महाकाव्य में वर्णित है कि पूर्व भव में श्री कान्त जो क्रमशः स्वयम्भू और प्रभासकुन्द हुआ था, वह विद्याधरों का राजा शूरवीर रावण हुआ।[23]

इस ग्रंथ में वर्णन किया गया है कि रावण अपने मौसेरे भाई धनद के वैभव को देख कर विद्याएं सिद्ध करने के लिए साधना की और अवलोकनी, वज्रादरी, अष्टाक्षरा, सर्वकामा, षोडशाक्षरा आदि जैसी पचपन विद्याएं सिद्ध की। आगे चलकर आकाशगामिनी

Scanned with OKEN Scanner

विद्या भी प्राप्त की। उसकी भयानक गर्जना के कारण उसके ऊपर से देव, सिद्ध और किन्नर तक जाने का साहस नहीं कर पाते थे।

रावण के घोर तप के पश्चात् उसके पितामह माल्यवान ने इन्द्र के अत्याचार की जानकारी उसे दी और बताया कि युद्ध में मेरे भाई माली को इन्द्र ने मार कर कुलपरम्परा से प्राप्त लंका नगरी छीन ली है। लेकिन एक ज्ञानी साधु ने बताया कि तुम्हारे पुत्र का पुत्र लंका नगरी स्वाधीन कर लेगा। प्रताप, बल, वीर्य और सामर्थ्य से युक्त, शत्रुओं का विनाश करने वाला तथा युद्ध में सतत उद्यत रहने की बुद्धिवाला वह आधे भरत क्षेत्र का स्वामी होगा।[24] रावण ने पितामह द्वारा भविष्यवाणी सुन सिद्धों को नमस्कार किया।

मय पुत्री मंदोदरी से रावण का विवाह हुआ जो उसकी पटरानी थी। इस ग्रंथ में बालि-सुग्रीव की बहन श्रीप्रभा से भी रावण की शादी का उल्लेख मिलता है। इनके अलावा रावण की छै हजार विद्याधरवंशीय पत्नियों का वर्णन आया है। रावण के दो पुत्र-इन्द्रजित् और मेघवाहन की चर्चा आई है।

'पउमचरियं' में रावण का चरित्र एक विजेता के रूप में भी पाते हैं। इस ग्रंथ में सहस्राकिरण, नलकूबर, इन्द्र, वरुण आदि राजाओं को रावण द्वारा पराजित दिखलाया गया है। किष्किन्धा के राजा बालि से जब रावण ने श्रीप्रभा की मांग कर उसे प्रणाम करने का संदेश भेजा तब बालि उसके पराक्रम का सामना करने में अपने को असमर्थ पाया और उसने किश्किन्धा राज्य सुग्रीव को सौंप स्वयं प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। बाद में अपनी बहन श्रीप्रभा को लेकर सुग्रीव रावण के पास आया और उसने रावण की अधीनता स्वीकार की।

इस ग्रंथ में एक महत्त्वपूर्ण बात और देखने को मिलती है। महाकवि विमलसूरि ने इन्द्र, वरुण, नलकूबर आदि को ईश्वर के रूप में नहीं स्वीकारा है- वल्कि वे विभिन्न प्रदेशों के राजा रहे हैं। उसी प्रकार वानर, राक्षस, कं सबोधन को इन्होंने अलग-अलग जाति अथवा वर्ग प्रमाणित करने का प्रयास किया है। मूलतः वानर, राक्षस- मनुष्य ही थे।

रावण के अहंकार की झलक हमें इस ग्रंथ में कई स्थलों पर देखने को मिलती है। एक बार जब वह पुष्पक विमान से अष्टापद पर्वत (कैलाश पर्वत) के ऊपर से गुजर रहा था तब, कैलाश की ऊंची चोटी के कारण विमान रुक गया। रावण ने क्रोधवश कैलाश को ही उठा लिया। भगवान बालि ने अपने पैर के अंगूठे से पर्वत को दबा दिया जिसके कारण रावण कुचल गया। जीवन की आशा नष्ट होने से उसने उस समय जो अति भयंकर आवाज की, उससे वह जीव लोक में 'रावण' के नाम से विख्यात हुआ।[25] यहीं अहंकारी रावण ने बालि के सम्मुख सिर झुकाया।

रावण का प्रिय खड्ग 'चन्द्रहास' था। इसके सम्बन्ध में कथा आई है कि वह उस खंग से अपनी भुजा काट कर उसकी शिराओं से वीणा का तार बनाकर जिन की पूजा की थी। यह देखकर धरणेन्द्र मुनि ने रावण को अमोघ-विजय शक्ति का वरदान दिया[26] ।

पउमचरियं महाकाव्य में रावण एक धर्म भीरु जैनी के रूप में चित्रित है। रावण ने नलकूबर की पत्नी उपरम्भा के प्रेम प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था और बाद में उसने अनन्तवीर्य का धर्मोपदेश सुनकर विरक्त पर नारी के साथ रमण नहीं करने का व्रत लिया था।[27]

रावण ने हिंसा पर रोक लगाई। ब्राह्मणों द्वारा पशु बलि का उसने विरोध किया।[28]

रावण को एक कामुक और दुश्चरित्र होने पर भी इस महाकव्य में उसे एक विवेकी राजा के रूप में स्थापित किया गया। सीता हरण के पश्चात् रावण को उसकी दयनीय दशा पर पश्चाताप होता है। वह कहता है कि पर नारी के लिए काम में लीन चित्त वाले मैंने चन्द्र एवं पुण्डरीक के समान सफेद और उत्तम कुल को मलीन किया है-(69.30-32)। अठारह वर्षों में पृथ्वी को जीत कर उसने जिन चैत्यों की पूजा की है।[29]

पउमचरियं का रावण शीलवान, विवेकी, वीर योद्धा, कुशल सेना नायक है। बल-पराक्रम होते हुए भी रावण अपने को धिक्कारता है। वह कहता है तीनों लोकों में प्रसिद्धि प्राप्त करने वाला रावण आज राम और लक्ष्मण के साथ लड़ाई करने में अपने को लज्जित महसूस कर रहा है।

रावण की मृत्यु लक्ष्मण के हाथों होती है। पउमचरियं के अनुसार ज्येष्ठ मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी के दिन, दिवस का चौथा भाग जब बाकी था तब रावण का मरण हुआ था-(63.33)।

सीता

पउमचरियं के प्रमुख पात्रों में मैंने त्रिषष्ठि शलाका पुरुषों-राम, लक्ष्मण, रावण के साथ सीता को भी सम्मान देने का प्रयास किया है। इसका मूल कारण यह है कि सम्पूर्ण रामकथा का केन्द्र बिन्दु, सीता का चरित्र रहा है। जिस तरह आदि वाल्मीकि रामायण, महाभारत, हरिवंश और कूर्म पुराण में सीता को जनक की पुत्री के रूप में चित्रित किया गया है उसी तरह महाराष्ट्री प्राकृत के महाकवि आचार्य विमलसूरि ने भी अपनी अमर रचना 'पउमचरियं' में सीता का चित्रण मिथिला नरेश जनक की पुत्री के रूप में ही किया है।

पउमचरियं महाकाव्य में सीता के पिता जनक हैं और विदेहा उनकी मां हैं। विदेहा ने दो संतानों को जन्म दिया है-भामण्डल पुत्र है और सीता पुत्री हैं। पूर्व जन्म के कारण भामण्डल का अपहरण जन्मकाल में ही हो गया है और एकमात्र सीता ही जनक और विदेहा की पुत्री होती हैं।

सीता के सौंदर्य-रूप लावण्य का वर्णन करते हुए महाकवि विमलसूरि ने लिखा है-''उत्तम कमल दल के नेत्रों वाली, शरत्पूर्णिमा के चन्द्र के समान मुख की शोभा वाली, कुन्दपुष्प के समान दांतों वाली, अनार के फूल के समान अधरों की कांति वाली, कोमल बाहुलता वाली, रक्ताशोक के समान उज्ज्वल कांति वाले दोनों हाथों से युक्त, हाथ में जिसका कटि प्रदेश पकड़ा जा सकता है ऐसी अर्थात् पतली कमर वाली, विशाल नितम्ब तथा हाथी की सूंढ़ के समान उरुप्रदेश वाली, रक्तकमल सरीखे पैरों वाली, शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा की किरणों का मानों समूह हो-ऐसी वह सीता अपनी कान्ति से मानों चन्द्रमा

को प्रकाशित करती हो-ऐसा प्रतीत होता था''[30] । उनके रूप सौंदर्य से प्रभावित होकर नारद ने भी उन्हें प्राप्त करने का विचार किया था।

म्लेच्छों के उपद्रव को राम ने शांत किया। राम की वीरता और शौर्य से प्रसन्न होकर जनक ने अपनी प्रिय पुत्री सीता को उन्हें सौंपने का वचन दिया।

पउमचरियं में सीता स्वयंवर का कारण विद्याधर राजा द्वारा जनक पर दवाब का वर्णन मिलता है। सीता के सौंदर्य को सुन अनजाने में भामण्डल भी आकर्षित हुआ था और वह सीता से विवाह करना चाहता था। विद्याधर राजा चन्द्रगति ने इसके लिए जनक पर दवाब डाला। फिर एक स्वयंवर में वज्रावर्त्त धनुष पर डोरी चढ़ाने पर सीता का विवाह राम के साथ किया जाता है।

सीता का चरित्र एक आदर्श पत्नी के रूप में देखने को मिलता है। चारों भाइयों के विवाह के पश्चात् जब राजा दशरथ जैन धर्म में दीक्षित होने का संकल्प लेते हैं और राम वन जाने लगते हैं तब अर्द्धांगिनी सीता पति श्रीराम का साथ देती हैं। वन गमन से पूर्व वह अपने सास ससुर को सम्मान के साथ प्रणाम करती हैं।[31]

रावण द्वारा अपहरण करने के बाद भी सीता सदैव अपने सतीत्व की रक्षा करती हैं। रावण के लोभ और उसकी बातों का हमेशा तिरस्कार करती हैं। वे कहती हैं-''मेरे दृष्टि मार्ग से तुम दूर हटो। अपने हाथ से तुम मेरे अंगों को मत छुओ। दूसरे की स्त्री रूपी आग की लौ में पड़कर, तुम पतंगे की तरह नष्ट हो जाओगे। पर नारी को देखने वाला तू पाप कमाता है और मरने पर बदनामी के साथ हजारों दुखों से व्याप्त घोर नरक में भी जायेगा''।[32]

बन्दिनी सीता को लंका के सुररमण उद्यान में ठहराया गया है। रावण की पत्नी मन्दोदरी द्वारा सीता को रावण के प्रति समर्पित करने का सुझाव देने पर सीता कहती हैं-''यदि इस शरीर को छिन्न-भिन्न और बार-बार काटा जाये तो भी राम को छोड़कर अन्य किसी को पति रूप से मैं नहीं चाहूँगी।[33] सीता मानती हैं कि राम के साथ अरण्यवास मेरे लिए देवलोक से भी अधिक शांति का स्थल है। शील नारी का सौंदर्य होता है। शील रहित स्त्री के लिए तो मरण ही अच्छा है।''

हनुमान ने जब सीता को कहा कि आप मेरे कंधे पर बैठें, मैं अविलम्ब आपको राम के पास पहुंचा देता हूँ, तब सीता ने अश्रुपूरित नेत्रों से कहा-''पर पुरुष का संग और स्पर्श करना मेरे लिए उपयुक्त नहीं है, तो फिर कंधे पर सवार होने की बात ही क्या[34]?'' सीता के सतीत्व का यह भी एक उदाहरण है।

पउमचरियं ग्रंथ में लंका विजय के पश्चात् सीता को अपनी पवित्रता के लिए अग्नि परीक्षा नहीं देनी पड़ती है। अयोध्या वापस लौटने पर भी उन्हें राज सिंहासन पर बैठने का अवसर नहीं मिलता है। अयोध्या वापसी के बाद राम का राजतिलक नहीं होता बल्कि लक्ष्मण का राजतिलक होता है।

जनापवाद से बचने के लिए राम सीता का परित्याग करते हैं। सीता पौण्डरिकपुर के राजा वज्रजंघ की बहन बन उनके महल में रहती हैं । राम द्वारा सीता के त्याग के

बाद भी सीता की राम के प्रति श्रद्धा बनी रहती है। कृतान्तवदन से वह राम के पास संदेश भेजती हैं--''जिस तरह मैं छोड़ दी गई हूँ, उस तरह जिन धर्म को तुम मत छोड़ना।''[35] पौण्डरिक नगर में ही सीता ने श्रावण पूर्णिमा के दिन दो पुत्रों-लवण और अंकुश को जन्म दिया।

इस ग्रंथ में लवण-अंकुश के जन्म के पश्चात् सीता को अग्नि परीक्षा देनी होती है। अग्नि परीक्षा से पूर्व सीता कहती हैं--''यदि मैंने मन, वचन और शरीर से राम को छोड़कर, दूसरे पुरुष की स्वप्न में भी अभिलाशा की हो तो मुझे यह अग्नि जला डाले। और यदि अपने पति को छोड़कर दूसरा कोई मेरे हृदय में नहीं था और शील गुण का माहात्म्य है तो आग मुझे न **जलावे।**''[36] सचमुच सीता कसौटी पर खरी उतरीं। धधकती अग्नि का कुंड, निर्मल जल में परिवर्तित हो गया। राम ने अपने अपराध के लिए सीता से क्षमा याचना की।

सीता तो निर्मलहृदया रहीं। वे राम से कहती हैं कि मैं न तो आप पर रुष्ट हुई हूँ और न झूठ बोलने वाले लोगों पर ही। मैं तो पूर्व के कमाये हुए अपने कर्म पर रुष्ट हुई हूँ। अब मैं ऐसा कर्म करूँगी जिससे पुनः स्त्री न होऊं।''[37] इतना कह कर सीता ने अपने हाथ से अपने सिर के केश उखाड़ डाले। सर्वगुप्त द्वारा सीता दीक्षित हुईं और साध्वी हुईं।

सीता का सम्पूर्ण चरित्र करुणा से भरा है। लेकिन जिन मंदिरों और चैत्यों के प्रति उनकी श्रद्धा बनी है। पतिव्रत धर्म का वह सदैव पालन करती रहीं। परिजनों, मुनियों के प्रति उनकी श्रद्धा बनी रही।

(ख) वाल्मीकि रामायण के प्रमुख पात्र

राम

वैदिक साहित्य से अनेक राम नामक व्यक्तियों का परिचय मिलता है। ऋग्वेद में 'राम' का उल्लेख एक बार हुआ है जो संभवतः कोई राजा था।[38]

ऐतरेय ब्राह्मण में राम मार्गवेय और जनमेजय के विषय में एक कथा मिलती है जिससे यह पता चलता है कि श्यापर्ण कुल के ब्राह्मण और जनमेजय के समकालीन थे। लेकिन इस कथा का रामायण की कथा से कोई सम्बन्ध नहीं है।[39]

शतपथ ब्राह्मण में अंसुग्रह नामक यज्ञ के तत्व पर विचार-विनिमय होने पर अन्य आचार्यों के मतों के साथ 'राम औपतस्विनि' के मत का भी उल्लेख होता है।[40] इससे यह पता चलता है कि वह उपतस्विन् के पुत्र और याज्ञवल्क्य के समकालीन थे।

जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण के दो स्थलों पर 'राम क्रातुजातेय वैयाघ्रपद्य का उल्लेख मिलता है। दोनों स्थलों पर वह शंग शात्यायनि आत्रेय का शिष्य है और शंख वाभ्रव्य का शिक्षक।[41]

इन विभिन्न रामों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्राचीनतम वैदिक

Scanned with OKEN Scanner

काल से ही राजाओं और ब्राह्मणों दोनों में 'राम' नाम प्रचलित था। लेकिन ये वे राम नहीं हैं जो रामायण में वर्णित हैं।

वाल्मीकि रामायण के राम 'मर्यादापुरुषोत्तम' हैं। उनका जन्म धर्म की रक्षा और लोगों के उद्धार हेतु ही हुआ था। वाल्मीकि रामायण के राम में कहीं भी ईश्वरता की झलक नहीं मिलती। वे सदैव सदाचारी आदर्श मनुष्य ही बने रहे। श्रीराम सद्गुणों के समुद्र हैं। सत्य, सहृदयता, मृदुता, दया, क्षमा, वीरता, धीरता, गम्भीरता, अस्त्र-शस्त्रों के ज्ञाता, पराक्रमी, नीतिज्ञता की प्रतिमूर्ति हैं। इनके चरित्र में प्रजा रंजकता, ब्राह्मण भक्ति, मातृ-पितृभक्ति, भ्रातृप्रेम, शरणागत वत्सलता, प्रतिज्ञा-पालन, व्यवहार कुशलता, साधु रक्षण, दुष्ट दलन आदि गुण स्थान-स्थान पर देखने को मिलते हैं।

वाल्मीकि रामायण के बालकांड और अयोध्या कांड के प्रारम्भ में ही श्रीराम के गुणों का आदिकवि ने सुन्दर वर्णन किया है। कैकेयी का राम के साथ कठोर व्यवहार लोकहितार्थ देवताओं की प्रेरणा कही जा सकती है। मंथरा की कुमंत्रणा सुनकर कैकेयी स्वयं कहती है:-

धर्मज्ञो गुणवान् दान्तः कृतज्ञः सत्यवाञ्छुचिः।
रामो राजसुतो ज्येष्ठो यौवराज्यमतोऽर्हति ॥
भ्रातॄन् भृतयांश्च दीर्घायुः पितृवत् पालयिष्यति।
संतप्यसे कथं कुब्जे श्रुत्वा रामाभिषेचनम् ॥
यथा वै भरतो मान्यस्तथा भूयोऽप राघवः।
कौसल्यातोऽतिरिक्तं च मम शुश्रूशते बहु ॥
राज्यं यदि हि रामस्य भरतस्यापि तत् तदा।
मन्यते हि यथाऽ ऽयथा भ्रातृंस्तु राघवः॥[42]

अर्थात्- कुब्जे! श्रीराम धर्म के ज्ञाता, गुणवान्, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ, सत्यवादी और पवित्र होने के साथ ही महाराज के ज्येष्ठ पुत्र हैं, अतः युवराज होने के योग्य वे ही हैं।

वे दीर्घजीवी होकर अपने भाइयों और भृत्यों का पिता की भांति पालन करेंगे। कुब्जे! उनके अभिषेक की बात सुनकर तू इतनी जल क्यों रही है?

मेरे लिए जैसे भरत आदर के पात्र हैं, वैसे ही बल्कि उनसे भी बढ़कर श्रीराम हैं, क्योंकि वे कौसल्या से भी बढ़कर मेरी बहुत सेवा किया करते हैं।

यदि श्रीराम को राज्य मिल रहा है तो उसे भरत को मिला हुआ समझ, क्योंकि श्रीरामचन्द्र अपने भाइयों को भी अपने ही समान समझते हैं।

मातृभक्ति

माता कैकेयी द्वारा कठोर से कठोर व्यवहार किये जाने पर भी श्रीराम का उनके प्रति व्यवहार सदा भक्तिपूर्ण और सम्मानपूर्ण ही रहा। माता कौशल्या के महल से लौटते समय क्रुद्ध लक्ष्मण से राम ने कहा:-

यस्या मदभिषेकार्थे मानसं परितप्यते।
माता नः सा यथा न स्यात् सविशंका तथा कुरु॥

तस्याः शंकामयं दुःखं मुहूर्तमपि नोत्सहे।
मनसि प्रतिसंजातं सौमित्रेऽहमुपेक्षितुम् ॥
न बुद्धिपूर्वं नाबुद्धं स्मरामीह कदाचन।
मातृणां वा पितुर्वाहं कृतमल्पं च विप्रियम्॥[43]

अर्थात्- "मेरे अभिषेक के कारण जिसके चित्त में संताप हो रहा है, उस हमारी माता कैकेयी को जिससे किसी तरह की शंका न रह जाय, वही काम करो।

लक्ष्मण! उसके मन में संदेह के कारण दुःख उत्पन्न हो, इस बात को मैं दो घड़ी के लिए भी नहीं सह सकता और न इसकी उपेक्षा ही कर सकता हूँ।

मैंने यहां कभी जान-बूझकर या अनजाने में माताओं का अथवा पिताजी का कोई छोटा सा भी अपराध किया हो, ऐसा याद नहीं आता।"

उसी समय शत्रुघ्न से भी राम ने कहा-"भाई! मैं तुम्हें अपनी और सीता की शपथ दिलाकर कहता हूँ कि तुम कभी माता कैकेयी पर क्रोध न करना, सदा उनकी सेवा ही करते रहना।"

वन में रहते हुए एक बार लक्ष्मण ने कैकेयी की निन्दा की। लेकिन राम ने कहा-"भाई! माता कैकेयी की तुमको निन्दा नहीं करनी चाहिए।'

वन गमन के समय राजा दशरथ की अन्य रानियों ने विलाप करते हुए कहा:-

कृत्येष्वचोदितः पित्रा सर्वस्यान्तःपुरस्य च।
गतिश्च शरणं चासीत् स रामोऽद्य प्रवत्स्यति॥
कौसल्यायां यथा युक्तो जनन्यां वर्तते सदा।
तथैव वर्ततेऽस्मासु जन्मप्रभृति राघवः ॥[44]

अर्थात्- "वे कह रही थीं-हाय! जो पिता के आज्ञा न देने पर भी समस्त अन्तःपुर के आवश्यक कार्यों में स्वतः संलग्न रहते थे, जो हमलोगों के सहारे और रक्षक थे, वे श्रीराम आज वन को चले जायंगे।

वे रघुनाथ जी जन्म से ही अपनी माता कौशल्या के प्रति सदा जैसा वर्ताव करते थे, वैसा ही हमारे साथ भी करते थे।"

मातृ-भक्ति के ये अनुपम उदाहरण हैं।

पितृभक्ति

श्रीराम की पितृभक्ति भी वाल्मीकि रामायण में उल्लेखनीय है। पिता की आज्ञा पालन में श्रीराम का उत्साह, साहस और दृढ़निश्चय की भावना अनुकरणीय है। माता कैकेयी से बात करते हुए श्रीराम कहते हैं:-

अहं हि वचनाद् राज्ञः पतेयमपि पावके।
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे।
नियुक्तो गुरुणा पित्रा नृपेण च हितेन च॥[45]
न ह्यतो धर्मचरणं किंचिदस्ति महत्तरम्।
यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचनक्रिया॥[46]

अर्थात्- " मैं महाराज के कहने से आग में कूद सकता हूँ, तीव्र विष का भी भक्षण कर सकता हूँ और समुद्र में भी गिर सकता हूँ! महाराज मेरे गुरु, पिता और हितैषी हैं।

पिता की सेवा अथवा उनकी आज्ञा का पालन करना, जैसा महत्वपूर्ण धर्म है, उससे बढ़कर संसार में दूसरा कोई धर्माचरण नहीं है।"

पिता के वचन का पालन करने के लिए श्रीराम माता कौशल्या से कहते हैं-

नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम।
प्रसादये त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम्।।[47]

अर्थात्- "माता! मैं तुम्हारे चरणों में सिर झुकाकर तुम्हें प्रसन्न करना चाहता हूं। मुझमें पिताजी की आज्ञा का उल्लंघन करने की शक्ति नहीं है, अतः मैं वन ही जाना चाहता हूं।"

एक पत्नीव्रत

वाल्मीकि रामायण में श्रीराम एक पत्नीव्रत के आदर्श हैं। सीताहरण के पश्चात् राम का पत्नी वियोग दर्शनीय है। सीता की पवित्रता पर भी राम का अदम्य विश्वास है। सीता की अग्निपरीक्षा के पश्चात् राम ने विश्वासपूर्ण कहा-

नेयमर्हति वैकलव्यं रावणान्तःपुरे सती।
अनन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा।।[48]

अर्थात्- 'ये सती-साध्वी देवी रावण के अन्तःपुर में रह कर भी व्याकुलता या घबराहट में नहीं पड़ सकती थीं, क्योंकि ये मुझसे उसी तरह अभिन्न हैं, जैसे सूर्यदेव से उनकी प्रभा।

अरण्य कांड में सीताहरण के पश्चात् भी राम लक्ष्मण को संबोधित करते हुए कहते हैं:-

सीतया रहितोऽहं वै नहि जीवामि लक्ष्मण।
वृतं शोकेन महता सीताहरणजेन माम्।।
परलोके महाराजो नूनं द्रक्ष्यति मे पिता।[49]

अर्थात्- " लक्ष्मण! सीता से रहित होकर मैं जीवित नहीं रह सकता। सीताहरणजनित महान् शोक ने मुझे चारों ओर से घेर लिया है। निश्चय ही अब परलोक में मेरे पिता महाराज दशरथ मुझे देखेंगे।"

भ्रातृप्रेम

श्रीराम का भ्रातृप्रेम अतुलनीय कहा जायेगा। भाइयों को वे सदैव प्रसन्न रखने की चेष्टा करते हैं। श्रीराम को अगर कभी उत्तम भोजन या वस्तु मिलती तब वे सबसे पहले अपने भाइयों को भोजन कराते अथवा वस्तु प्रदान करते फिर स्वयं स्वीकार करते। सभी भाइयों के प्रति उनका स्नेह समान रहता। हाँ, लक्ष्मण की राम के प्रति अधिक भक्ति थी।

जब राम का राज्याभिषेक होना था और भरत-शत्रुघ्न ननिहाल गये हुए थे तब श्रीराम लक्ष्मण से कहते हैं:-

लक्ष्मणेमां मया सार्धं प्रशाधि त्वं वसुंधराम्।
द्वितीयं मे ऽन्तरात्मानं त्वामियं श्रीरुपस्थिता।।
सौमित्रे भुगंक्ष्व भोगांस्त्वमिष्टान् राज्यफलानि च।
जीवितं चापि राज्यं च त्वदर्थमभिकामये।।[50]

अर्थात्- 'लक्ष्मण! तुम मेरे साथ इस पृथ्वी के राज्य का शासन करो। तुम मेरे द्वितीय अन्तरात्मा हो। यह राज लक्ष्मी तुम्हीं को प्राप्त हो रही है।'

'सुमित्रानन्दन! तुम अभीष्ट भोगों और राज्य के श्रेष्ठ फलों का उपभोग करो। तुम्हारे लिये ही मैं इस जीवन तथा राज्य की अभिलाषा करता हूँ।'

कैकेयी के वरदान मांगने पर राम ने भरत या कैकेयी के विरुद्ध एक शब्द नहीं कहा, बल्कि भरत की बड़ाई करते हुए माता को धैर्य दिलाया और कहा-'भरत मेरे ही समान आपकी सेवा करेगा।'

सीता को भी वन जाने से रोकते हुए श्रीराम कहते हैं:-

भ्रातृपुत्रसमौ चापि द्रष्टव्यौ च विषेशतः।
त्वया भरतशत्रुघ्नौ प्राणैः प्रियतरौ मम।।[51]

अर्थात्- 'भरत और शत्रुघ्न मुझे प्राणों से भी बढ़कर प्रिय हैं, अतः तुम्हें उन दोनों को विषेशतः अपने भाई और पुत्र के समान देखना और मानना चाहिये।

लक्ष्मण को वन जाने से रोकते हुए राम ने जो बातें कही हैं उससे लगता है कि लक्ष्मण पर उनका कितना विश्वास है।

स्निग्धो धर्मरतो धीरः सततं सत्पथे स्थितः।
प्रियः प्राणसमो वश्यो विजेयश्च सखा च मे।।[52]

अर्थात्- 'लक्ष्मण! तुम मेरे स्नेही, धर्मपरायण, धीर-वीर तथा सदा सन्मार्ग में स्थित रहने वाले हो। मुझे प्राणों के समान प्रिय हो तथा मेरे वश में रहने वाले आज्ञापालक और सखा हो।'

राम के वनवास के समय भरत के चित्रकूट आगमन को देखकर लक्ष्मण को आक्रोश हुआ। लेकिन शांत चित्त वाले श्रीराम ने भरत की प्रशंसा करते हुए कहा-और लक्ष्मण का क्रोध शांत किया।

धर्ममर्थं च कामं च पृथिवीं चापि लक्ष्मण।
इच्छामि भवतामर्थे एतत् प्रतिश्रृणोमि ते।।
भ्रातृणां संग्रहार्थे च सुखार्थे चापि लक्ष्मण।
राज्यमप्यहमिच्छामि सत्येनायुधमालभे।।
यद् विना भरतं त्वां च शत्रुघ्नं वापि मानद।
भवेन्मम सुखं किंचिद् भस्म तत् कुरुतां शिखी।।
स्नेहेनाक्रान्तहृदयः शोकेनामुलितेन्द्रियः।
द्रष्टुमभ्यागतो ह्येष भरतो नान्यथाऽऽगतः।।[53]

अर्थात्- 'लक्ष्मण! मैं तुमसे प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि -धर्म, अर्थ, काम और पृथ्वी का राज्य भी मैं तुम्हीं लोगों के लिए चाहता हूँ।'

Scanned with OKEN Scanner

'सुमित्राकुमार! मैं भाइयों के संग्रह और सुख के लिये ही राज्य की भी इच्छा करता हूँ और इस बात की सच्चाई के लिये मैं अपना धनुष छूकर शपथ खाता हूँ।' मानद! भरत को, तुमको और शत्रुघ्न को छोड़कर यदि मुझे कोई सुख मिलता हो तो उसे अग्निदेव जलाकर भस्म कर डालें।'

'भरत ने अयोध्या में आने पर जब सुना है कि मैं तुम्हारे और जानकी के साथ जटा-वल्कल धारण करके वन में आ गया हूं, तब उनकी इन्द्रियां शोक से व्याकुल हो उठी हैं और वे कुलधर्म का विचार करके स्नेहयुक्त हृदय से हम लोगों से मिलने आये हैं। भरत के आगमन का इसके सिवा दूसरा कोई उद्देश्य नहीं हो सकता।'

युद्धभूमि में रावण के शक्तिबाण से मूर्छित लक्ष्मण को देख राम का विलाप देखते ही बनता है। यह प्रसंग भ्रातृप्रेम की पराकाष्ठा कही जा सकती है:-

किं मे युद्धेन किं प्राणैर्युद्धकार्यं न विद्यते।
यत्रायं निहतः शेते रणमूर्धनि लक्ष्मणः॥
यथैव मां वनं यान्तमनुयाति महाद्युतिः।
अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम्॥[54]

अर्थात्- 'अब इस युद्ध से अथवा प्राणों की रक्षा से मुझे क्या प्रयोजन है? अब लड़ने-भिड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। जब संग्राम के मुहाने पर मारे जाकर लक्ष्मण ही सदा के लिए सो गये, तब युद्ध जीतने से क्या लाभ है?'

'वन में आते समय जैसे महातेजस्वी लक्ष्मण मेरे पीछे-पीछे चले आये थे, उसी तरह यमलोक में जाते समय मैं भी इनके पीछे-पीछे जाऊंगा।'

रावण वध के बाद जब विभीषण ने राम को कुछ दिन और रुकने का अनुरोध किया तब राम ने भरत से तत्काल मिलने की अपनी उत्कंठा व्यक्त की। यह है भ्रातृप्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण।

अयोध्या लौटने पर राज्यकार्य करते हुए भी श्रीराम अपने भाइयों से परामर्श लेना अपना कर्त्तव्य मानते थे। वे सदैव इस बात का ध्यान रखते थे कि मेरे भाई प्रसन्न रहें।

लवणासुर के अत्याचार को समाप्त करने के लिए जब भरत आगे बढ़े तब शत्रुघ्न ने उन्हें रोककर लवणासुर के संहार के लिए राम से अनुमति मांगी। लेकिन श्रीराम तो बड़े भाई के साथ एक राजा भी थे। भाई के स्नेह को स्मरण करते हुए उन्होंने अपने अनुज को दायित्व भी सौंपा। अनुज को राज्यसुख देना बड़े भाई का ही कर्त्तव्य है। लक्ष्मण की मृत्यु की खबर सुन राम वियोग में परमधाम को गये।

सख्यप्रेम

श्रीराम का अपने मित्रों के प्रति आदर और सम्मान अनुकरणीय कहा जायेगा। मित्रों के छोटे से कार्यों को भी वे कभी नहीं भूलते। सदैव उनकी प्रशंसा करते। अयोध्या में राज्याभिषेक के बाद राम, बंदरों को भी बुलाकर उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। वे कहते हैं:-

मधुरं श्लक्ष्णया वाचा नेत्राभ्यामापिबन्निव।
सुहृदो मे भवन्तश्च शरीरं भ्रातरस्तथा॥

युष्माभिरुद्धृतश्चाहं व्यसनात् काननौकसः।
धन्यो राजा च सुग्रीवो भवद्भिः सुहृदां वरैः॥[55]

अर्थात्- उन्होंने स्नेहयुक्त मधुर वाणी में कहा-'वानरवीरों! आपलोग मेरे सुहृद, शरीर और भाई हैं। आपने ही मुझे संकट से उबारा है। आप जैसे श्रेष्ठ सुहृदों को पाकर राजा सुग्रीव धन्य हैं।'

सुग्रीव आदि मित्रों ने भी राम के सख्यप्रेम की बार-बार प्रशंसा की है। यही कारण था कि राम की मदद के लिए उनके मित्र अपने प्राणोत्सर्ग के लिए सदैव तैयार रहते थे।

शरणागत-वत्सलता

वाल्मीकि रामायण में शरणागत वत्सलता की कथा कई स्थान पर देखने को मिलती है। लेकिन रावण के भाई विभीषण का श्रीराम की शरण में आना इस ग्रंथ का एक बड़ा उदाहरण कहा जायेगा। रावण द्वारा अपमानित विभीषण के आगमन की सूचना पाकर सुग्रीव समेत सभी के मन में विभीषण के प्रति शंका उत्पन्न हुई। लेकिन श्री राम ने कहा-

मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथंचन।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात् सतामेतदगर्हितम्॥[56]

अर्थात्- 'जो मित्रभाव से मेरे पास आ गया हो, उसे मैं किसी तरह त्याग नहीं सकता। संभव है उसमें कुछ दोष भी हों, परन्तु दोषी को आश्रय देना भी सत्पुरुषों के लिए निन्दित नहीं है। (अतः विभीषण को मैं अवश्य अपनाऊंगा)।'

सुग्रीव को सशंकित देख श्रीराम ने सुग्रीव को भी समझाया है- राम की शरण में आ जाने पर श्रीराम ने विभीषण को धैर्य दिया और लक्ष्मण से समुद्र का जल मंगवाकर विभीशण का वहीं लंका के राजा के रूप में राज्याभिषेक किया है।

कृतज्ञता

सीता की खोज करते-करते जब श्री राम जटायु के निकट पहुंचते हैं और जटायु, रावण का संकेत देता है तब राम जटायु को हृदय से लगा लेते हैं:-

निकृत्तपक्षं रुधिरावसिक्तं
तं गृध्रराजं परिगृह्य राघवः।
क्व मैथिली प्राणसमा गते ति
विमुच्य वाचं निपपात भूमौ॥[57]

अर्थात्- 'पंख कट जाने के कारण गृध्रराज जटायु लहू-लुहान हो रहे थे। उसी अवस्था में उन्हें गले से लगाकर श्रीरघुनाथ जी ने पूछा-'तात! मेरी प्राणों के समान प्रिया मिथिलेश कुमारी सीता कहां चली गयी?' इतना ही मुंह से निकालकर वे पृथ्वी पर गिर पड़े।'

लहूलुहान, पंखविहीन जटायु की मृत्यु होने पर श्री राम अपने हाथों से उसका दाह-संस्कार करते हैं।

रावण पर विजय प्राप्ति के बाद राम-वानरों, राजाओं, ऋषियों, देवताओं से बात

Scanned with OKEN Scanner

करते हुए बार-बार कहते हैं कि आपलोगों की सहायता और अनुग्रह से ही मैंने रावण पर विजय पाई है।

प्रजा-रंजकता

श्री राम अपने राज्य की प्रजा को पुत्रवत् प्रेम करते थे। सदासर्वदा उनके कल्याण का ध्यान रखते थे। इसी कारण प्रजा का भी उनसे अद्‌भुत प्रेम था। यह संदर्भ हमें राम वन गमन के समय, चित्रकूट में भरत के साथ प्रजा से मिलने के समय, राम के अयोध्या वापस लौटने पर प्रजा की प्रसन्नता और राम के परमधाम के समय की घटनाओं को पढ़कर महसूस होता है। हम पाते हैं कि प्रजा का हर वर्ग, हर आयु के स्त्री-पुरुषों का राम से अनन्य प्रेम रहा है।

राम वनगमन के समय प्रजा उन्हें छोड़ना नहीं चाहती थी। राम के अनुनय विनय करने पर भी वे साथ-साथ चलते रहे। तब एक रात्रि राम, प्रजा को सोते छोड़ आगे निकल गये।

जिस सीता की पवित्रता के प्रति राम का अगाध विश्वास था उसी अर्धांगिनी सीता को प्रजा के कहने पर, उन्हें मात्र प्रसन्न रखने के लिए, राम ने सीता का परित्याग किया। ये सारी घटनाएं राम की प्रजारंजकता का आदर्श भाव व्यक्त करती हैं।

श्रीराम का महत्व

श्रीरामचन्द्र जी साक्षात् पूर्णब्रह्म परमात्मा भगवान विष्णु के अवतार थे, यह बात वाल्मीकि रामायण में जगह जगह देखने को मिलती है। रावण के उपद्रव से त्रस्त होकर देव और ऋषिगण ब्रह्मा के निकट पहुंचे और प्रार्थना की। ब्रह्मा के समक्ष विष्णु के प्रकट होने का वर्णन इस प्रकार है:-

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः।
शंखचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः॥
वैनतेयं समारुह्य भास्करस्तोयदं यथा।
तप्तहाटककेयूरो वन्द्यमानः सुरोत्तमैः॥[58]

अर्थात्- ' इसी समय महान् तेजस्वी जगत्पति भगवान् विष्णु भी मेघ के ऊपर स्थित हुए सूर्य की भांति गरुड़ पर सवार हो वहां आ पहुंचे। उनके शरीर पर पीताम्बर और हाथों में शंख, चक्र एवं गदा आदि आयुध शोभा पा रहे थे। उनकी दोनों भुजाओं में तपाये हुए सुवर्ण के बने केयूर प्रकाशित हो रहे थे।'

श्री राम विष्णु के अवतार हैं अथवा नहीं, परशुराम ने विष्णु के धनुष पर बाण चढ़ाने के लिए राम को कहा। श्रीराम ने दिव्य धनुष पर तुरत बाण चढ़ा दिया और कहा-'यह दिव्य वैष्णव बाण है। इसे कहां छोड़ा जाये?' परशुराम चकित हुए। उन्हें विश्वास हुआ कि राम, विष्णु के ही अवतार हैं।

रावणवध के पश्चात् ब्रह्मा सहित सभी देव राम के समक्ष आये। राम ने उनके समक्ष अपने को दशरथपुत्र राम नामक मनुष्य ही बताया। यहीं ब्रह्मा जी ने रहस्योद्‌घाटन करते हुए राम के महत्व का वर्णन किया है।[59]

पराक्रम

श्रीराम के पराक्रम से पूरी रामायण भरी पड़ी है। चाहे वह विश्वामित्र आश्रम में ताड़का और सुबाहु के वध का संदर्भ हो अथवा मानवास्त्र द्वारा मारीच को सौ योजन दूर समुद्र के बीच गिराने का संदर्भ हो। जनकपुर के सीता स्वयंवर में जिस धनुष को अनेक राजा हिला पाने में भी असमर्थ रहे उसे ही श्रीराम ने क्षणमात्र में तोड़ डाला। पंचवटी में चौदह हजार राक्षसों को राम ने अकेले ही मार गिराया। बालि जैसे महायोद्धा को अपने एक बाण से मार गिराया। रावण-कुंभकर्ण जैसे मायावी राक्षसों का वधकर मनुष्यरूपी राम ने अपने पराक्रम का परिचय दिया है।

लक्ष्मण

हरिवंश पुराण, विष्णुपुराण, वायु पुराण आदि में विष्णु के चार रूपों में प्रकट होने का उल्लेख मिलता है।[60] परवर्ती साहित्य में लक्ष्मण को प्रायः शेषनाग का अवतार माना गया है। सरलादास कृत महाभारत के अनुसार विष्णु-राम के रूप में, ब्रह्मा-शत्रुघ्न के रूप में, इन्द्र-भरत के रूप में और महादेव लक्ष्मण के रूप में अवतरित हुए।[61] दीनकृष्णदास कृत उड़िया 'रस विनोद' में लक्ष्मण के अवतार के सम्बन्ध में कहा गया है कि शिव गोहत्या के प्रायश्चित्त के लिए तप कर रहे थे और विष्णु ने उन्हें त्रेतायुग में लक्ष्मण के रूप में जन्म लेने का वरदान दिया। लक्ष्मण, मेघनाद की शक्ति से आहत होकर ही गोहत्या-दोष से मुक्त हो जायेंगे।[62]

वशिष्ठ जी ने चारों भाइयों के नामकरण के समय ही लक्ष्मण के सम्बन्ध में कहा है-**'रामस्य लोक रामस्य' 'लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः'**[63] और **'लक्ष्मणो लक्ष्मिसंपन्नो'**[64]। अर्थात् -''लक्ष्मी की वृद्धि करने वाले लक्ष्मण बाल्यावस्था से ही श्री रामचन्द्र जी के प्रति अत्यन्त अनुराग रखते थे।'' और साथ ही यह भी कहा है-''शोभा सम्पन्न लक्ष्मण श्री रामचन्द्र जी के लिए बाहर विचरने वाले दूसरे प्राण के समान थे।'' पुरुषोत्तम श्री राम को उनके बिना नींद नहीं आती थी।

सम्पूर्ण वाल्मीकि रामायण में लक्ष्मण के जीवन दर्शन के निम्नलिखित तथ्य उभर कर सामने आते हैं--[65]

1. ईश्वर और आत्मा की सत्ता का यद्यपि लक्ष्मण ने कहीं विरोध नहीं किया, किन्तु वे उनका समर्थन नहीं करते।
2. धर्म-अधर्म को निष्फल निरर्थक और जड़ मानते हैं।
3. व्यक्ति के सुख-दुख, पाप-पुण्यों के परिणाम नहीं वरन् नीति अथवा अनीति के परिणाम हैं।
4. धर्म की अपेक्षा अर्थ अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।
5. दुखों की निवृत्ति अथवा जीवन की सफलता धर्माचरण पर नहीं बल्कि पुरुषार्थ पर निर्भर है।
6. पुरुषार्थ के द्वारा दैव अथवा प्रारब्ध को भी बदला जा सकता है।

Scanned with OKEN Scanner

7. प्रारब्ध अथवा दैव जैसी कोई शक्ति नहीं।
8. काम, क्रोधादि, राग-द्वेष और इन्द्रियार्थ जीवन में सबसे बड़े बाधक तत्त्व हैं।
9. लोकरीति के अनुसार आचरण करना व्यक्ति का नैतिक दायित्व है।
10. रागद्वेष से रहित विवेक के द्वारा लोकरीति के अनुसार ही व्यक्ति को अपना कर्त्तव्य निर्धारण करना चाहिए।

दशरथ और सुमित्रा के मन में लक्ष्मण के प्रति कितना स्नेह था, इसका संकेत हमें रामायण में नहीं मिलता है। राम के अनुज रहे लक्ष्मण राम के सिद्धान्तों से कभी सहमत नहीं हो पाये फिर भी उनका स्नेह, सहयोग और साहचर्य उदाहरणीय है। राम के वनवास के समय पिता दशरथ के प्रति और माता कैकेयी के प्रति विद्रोह की भावना और राम द्वारा लक्ष्मण को समझाने का संदर्भ लक्ष्मण के आक्रोश का उदाहरण है। वनवास से सुमन्त्र के लौटने के समय लक्ष्मण ने दशरथ के पास संदेश भेजा-

असमोक्ष्य समारब्धं विरुद्धं बुद्धिलाघवात्।
जनयिष्यति संक्रोशं राघवस्य विवासनम्।।[66]

अर्थात्- 'बुद्धि की कमी अथवा तुच्छता के कारण उचित-अनुचित का विचार किये बिना ही जो यह राम-वनवासरूपी शास्त्र विरुद्ध कार्य आरम्भ किया गया है, यह अवश्य ही निन्दा और दुख का जनक होगा।'

रामायण में दो चार स्थलों पर संकेत मिलता है कि लक्ष्मण सान्ध्योपासना आदि नित्यकर्मों का पालन करते थे। लेकिन संध्या वंदना नित्यकर्मों में उनकी आस्था प्रमाणित नहीं होती। उनकी आस्था धार्मिक आचारों के प्रति नहीं होती वरन् वे लोकरीति और राजर्षियों की परम्परा के प्रति आस्थावान् थे। इसी कारण दशरथ के निर्णय का उन्होंने विरोध किया था--

लोकविद्विष्टमारब्धं त्वदन्यस्याभिषेचनम्।
नोत्सहे सहितुं वीर तत्र मे क्षन्तुमर्हसि।।[67]

अर्थात्- (गुणवान् ज्येश्ठ पुत्र के रहते हुए छोटे का अभिशेक करना) यह लोकविरुद्ध कार्य है, जिसका आज आरम्भ किया गया है। आपके सिवा दूसरे किसी का राज्याभिषेक हो, यह मुझसे सहन नहीं होने का। इसके लिए आप मुझे क्षमा करेंगें।

उनकी मान्यता थी कि पुरुषार्थ के द्वारा ही समस्त दुखों पर विजय प्राप्त की जा सकती है। वे कहते हैं कि जो व्यक्ति अपने पुरुषार्थ से दैव को भी दबाने में समर्थ है, उसे दैव के द्वारा कार्य में बाधा उत्पन्न होने पर अवसाद नहीं होता। लक्ष्मण मद्य पान के विरोधी रहे। उनकी मान्यता थी कि मद्यपान से धर्म, अर्थ और काम-तीनों पुरुषार्थ नष्ट होते हैं। तभी उन्होंने तारा से कहा-

नहि धर्मार्थसिद्ध्यर्थं पानमेवं प्रशस्यते।
पानादर्थश्च कामश्च धर्मश्च परिहीयते।।[68]

अर्थात्-'धर्म और अर्थ की सिद्धि के निमित्त प्रयत्न करने वाले पुरुष के लिए इस तरह मद्यपान अच्छा नहीं माना जाता है, क्योंकि मद्यपान से अर्थ, धर्म और काम तीनों का नाश होता है।'

लक्ष्मण धर्म की मान्यता के विरोधी रहे हैं। वे कहते हैं धर्म व्यक्ति में निर्णयात्मिका बुद्धि नहीं वरन् विचिकित्सा की भावना उत्पन्न करता है। धर्म बुद्धि को मोहग्रस्त कर देता है। इसलिए जिस धर्म के संसर्ग से व्यक्ति मोहग्रस्त हो जाता है, उस धर्म का मैं विरोधी हूँ। वे राम से कहते हैं-

येनैवमागता द्वैधं तव बुद्धिर्महामते।
सोऽपिधर्मो मम द्वेष्यो यत्प्रसंगाद् विमुह्यसि।।[69]

अर्थात्- 'महामते! पिता के जिस वचन को मानकर आप मोह में पड़े हुए हैं और जिसके कारण आपकी बुद्धि में दुविधा उत्पन्न हो गयी है, मैं उसे धर्म मानने का पक्षपाती नहीं हूँ, ऐसे धर्म का तो मैं घोर विरोध करता हूँ।''

वे अर्थ को ही धर्म का आधार मानते हैं। उन्होंने राम से कहा था कि आपने राज्य का परित्याग कर धर्म के मूल अर्थात् अर्थ का उच्छेद कर डाला-

मम चेदं मतं तात धर्मोऽयमिति राघव।
धर्ममूलं त्वया छिन्नं राज्यमुत्सृजता तदा।।[70]

अर्थात्- 'तात राघव! इस प्रकार समयानुसार धर्म एवं पुरुषार्थ में से किसी एक का आश्रय लेना धर्म ही है, ऐसा मेरा मत है। आपने उस दिन राज्य का त्याग करके धर्म के मूलभूत अर्थ का उच्छेद कर डाला।'

उनकी मान्यता है कि धनवान पुरुष ही पराक्रमी, बुद्धिमान, भाग्यशाली और गुणवान समझा जाता है।

लक्ष्मण व्यक्ति के सुख-दुख का कारण धर्म अथवा अधर्म को नहीं, बल्कि समाज और व्यक्तियों की नीतियों को मानते हैं। राम की विपत्ति का कारण वे दशरथ की काम-प्रवृत्तियों, उनके द्वारा कैकेयी के वश में आकर गलत निर्णय लेने और अविवेकपूर्ण नीति-विरुद्ध व्यवहार को ही दोषी मानते हैं।

लक्ष्मण मानते हैं कि जीवन में सुख-दुख का आना अनिवार्य है-यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। लेकिन वह अग्निज्वाला की भांति एक क्षण की भांति प्रज्ज्वलित होकर दूसरे ही क्षण दूर हो जाती है। वे उदाहरण स्वरूप कहते हैं-

आश्वसिहि नरश्रेष्ठ प्राणिनः कस्य नापदः।
संस्पृशन्त्यग्निवद् राजन् क्षणेन व्यपयान्ति च।।[71]

अर्थात्- 'नरश्रेष्ठ! आप धैर्य धारण करें। संसार में किस प्राणी पर आपत्तियां नहीं आतीं। राजन्! आपत्तियां अग्नि की भांति एक क्षण में स्पर्श करती और दूसरे ही क्षण में दूर हो जाती हैं।'

राम ने जब कभी भी दैव के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये, लक्ष्मण ने सदैव उनके विचारों का विरोध किया। वे दैव की शक्ति और उनकी सत्ता को मानने के लिए कभी तैयार नहीं हुए। वे कहते हैं-कायर, अकर्मण्य और पुरुषार्थहीन व्यक्ति ही दैव का नाम लेकर पराक्रम से विरत हो जाते हैं।[72]

Scanned with OKEN Scanner

देव ऋण, ऋशि ऋण, पितृ ऋण को लक्ष्मण ने कभी स्वीकार नहीं किया। इनसे उऋण होने के लिए उन्होंने कभी तर्पण भी नहीं किया। वे सदैव धनुष और बाण के ही ऋणि रहे। भरत के चित्रकूट आगमन पर वे कहते हैं सेना सहित भरत का वध करके मैं धनुष और बाण के ऋण से उऋण हो जाऊंगा।

शराणां धनुषश्चाहमनृणोऽस्मिन् महावने।
ससैन्यं भरतं हत्वा भविष्यामि न संशयः।।[73]

अर्थात्- 'इस महान् वन में सेना सहित भरत का वध करके मैं धनुष और बाण के ऋण से उऋण हो जाऊंगा-इसमें संशय नहीं है।'

लक्ष्मण ने अष्टांग योग, हठ योग, मंत्र योग, लय योग आदि की परिभाषा को कभी स्वीकार नहीं किया। उनकी मान्यता थी कि स्वस्थ चित्त से विषादरहित होकर कामादि का परित्याग कर एकाग्रचित्त से अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पराक्रम करना ही योग है। लक्ष्य के प्रति अविचलित एकाग्रता ही समाधि है।

लक्ष्मण के मन में नारी के रूप-सौंदर्य के प्रति तनिक भी आसक्ति नहीं रही। लक्ष्मण के प्रति सुमित्रा के ममत्व की कहीं झलक नहीं मिलती। विवाह के बाद उर्मिला के साथ सोलह वर्षों तक रहने के बाद भी वन गमन के समय न तो वे उर्मिला से मिले और न ही कभी उर्मिला के प्रेम सम्बन्धों और क्रीड़ा व्यापार का स्मरण किया। राम की आज्ञा से सीता को वन में छोड़ने के लिए जब वे गये थे तब सीता ने लक्ष्मण को अपनी ओर देखने का अनुरोध किया था ताकि उन्हें ज्ञात हो कि वे गर्भवती हैं। लेकिन लक्ष्मण ने उत्तर दिया-'शोभने! आप मुझसे यह क्या कह रही हैं। मेंने इसके पहले भी आपका सम्पूर्ण रूप कभी नहीं देखा। केवल आपके चरणों के ही दर्शन किये हैं। फिर आज यहां वन के भीतर रामचन्द्र की अनुपस्थिति में आपकी ओर कैसे देख सकता हूँ?' लक्ष्मण नारी को प्रकृतिः सामान्य, विवेकहीन और अन्य अनेक दोषों से युक्त मानते थे।

वनवास की अवधि के समय में राम अनेक स्थलों पर धैर्य और साहस खोते नजर आये हैं। सीता की मृत्यु का दृश्य देखकर वे निराश होकर जीवन त्याग करने को उद्यत होते हैं। लेकिन राम के गरिमामय व्यक्तित्व की रक्षा करने, उसे और भी ऊंचा उठाने और उन्हें सफल बनाने में लक्ष्मण का श्रेय महत्वपूर्ण रहा है। लक्ष्मण अपने अदम्य साहस, अपराजेय पौरुष और पराक्रम के बल पर स्वयं अयोध्या के राज्य पर अधिकार कर सकते थे। लेकिन वे इसे नीति संगत नहीं मानते थे। राज्य के सुखोपभोग की उनकी लिप्सा कभी नहीं रही।

शरीर त्याग के समय भी लक्ष्मण को मोह और ममता ने परेशान नहीं किया। काल से बातें करते हुए श्रीराम को लक्ष्मण ने क्रोधी दुर्वासा के आगमन की सूचना दी थी। नियमानुसार ऐसे अपराधी को राम द्वारा दंडित करना आवश्यक था। मजबूर होकर राम ने लक्ष्मण का त्याग किया। लक्ष्मण ने फिर उर्मिला अथवा पुत्रों से मिलना भी ठीक नहीं समझा और सीधे सरयू के तट पर जाकर आचमन लिया और अपनी प्राणवायु को रोक कर प्राणों का परित्याग किया।

चारित्रिक दृष्टि से लक्ष्मण के समान त्यागी, कर्त्तव्यनिष्ठ, पुरुषार्थवादी, कर्मयोगी और अपने चरित्र के प्रति अविचल रूप से आस्थावान् पात्र पूरी रामायण में कोई दूसरा चरित्र नहीं है।

रावण

वैदिक साहित्य, विशेषकर अथर्ववेद में रक्षस, राक्षस, पिशाच आदि का उल्लेख मिलता है। ये मनुष्य के शत्रु हैं। इनके विरुद्ध अथर्ववेद में कई मंत्र उपलब्ध हैं। राक्षस एक प्रकार से अनिष्ट, अशुभ, हिंसा और पाप का प्रतीक रहा है। कालान्तर में रावण के क्रूर और हिंसात्मक अनुयायियों को भी यह नाम मिला। लेकिन वैसे वैदिक साहित्य में रावण नाम का कहीं संकेत नहीं मिलता है। महाभारत में रावण का उल्लेख रामकथा के संदर्भ में ही आया है। लोगों की मान्यता है कि रावण के दस सिर थे। लेकिन रामायण में कई स्थलों पर यह वर्णन भी आया है कि रावण को एक सिर था।

ताभ्यां स परिपूर्णाभ्यामुभाभ्यां राक्षसेश्वरः।
शुशुभेऽचलसंकाशः शृंगाभ्यामिव मन्दरः ।।[74]

अर्थात्- 'उन बड़ी-बड़ी और गोलाकार दो भुजाओं से युक्त पर्वताकार राक्षसराज रावण दो शिखरों से संयुक्त मन्दराचल के समानशोभा पा रहा था।'

(यहां शयनागार में सोये हुए रावण के एक ही मुख और दो ही बांहों का वर्णन आया है। इससे जान पड़ता है कि वह साधारण स्थिति में इसी तरह रहता था। युद्ध आदि के विशेष अवसरों पर ही वह स्वेच्छा पूर्वक दस मुख और बीस भुजाओं से संयुक्त होता था।)

मूल रामायण में रावण की जानकारी राम को तभी मिलती है जब रावण ने सीता का अपहरण किया और राम जटायु से पूछते हैं कि उस राक्षस का पराक्रम और रूप कौन सा है? वह क्या करता है? कहां रहता है? यह वर्णन उत्तरकांड में देखने को मिलता है।

रामकथा के विकास के साथ-साथ रावण का भी महत्व बढ़ने लगा था जिससे उत्तरकांड के रचनाकाल के समय तक रावण को ब्रह्मा का वंशज माना गया है। वाल्मीकि रामायण में कहीं भी इस बात का उल्लेख देखने को नहीं मिलता है कि पूर्वजन्म के शाप के कारण रावण और कुम्भकर्ण ने राक्षस योनि में जन्म लिया है। वैसे अर्वाचीन ग्रंथों की रामकथाओं से जानकारी मिलती है कि विष्णु के द्वारपाल जय, विजय शापवश तीन बार क्रमशः हिरण्यकश्यपु-हिरण्याक्ष, रावण-कुम्भकर्ण तथा शिशुपाल-दन्तवक्त्र के रूप में पृथ्वी पर प्रकट हुए।

कैकसी ने विश्रवा से विवाह कर रावण, कुम्भकर्ण, शूर्पणखा और विभीषण को जन्म दिया। इससे पूर्व विश्रवा, भरद्वाज की पुत्री देववर्णिनी से विवाह कर चुके थे जिनका पुत्र था वैश्रवण (कुबेर) । तपस्या से प्रसन्न हो ब्रह्मा ने वैश्रवण को चतुर्थ लोकपाल का पद और पुष्पक विमान दिया। पिता विश्रवा ने लंका में निवास करने की अनुमति दी। राक्षस अभी लंका छोड़ रसातल में रह रहे थे।

Scanned with OKEN Scanner

माता कैकसी अपने सौतपुत्र कुबेर को देख ईर्ष्या करती थी और सदैव वह रावण को उसके योग्य बनने को उकसाती थी। मां की अभिलाषा पूर्ण करने के लिए गोकर्ण के पवित्र आश्रम में रावण ने दस हजार वर्षों तक ब्रह्मा जी का घोर तप किया। तप करते हुए एक हजार वर्ष पूरा होने पर वह अपना एक सिर अग्नि को समर्पित करता था। दसवां सिर काटने के समय ब्रह्मा प्रसन्न हो उपस्थित हुए। रावण ने वर मांगा कि मैं सुपर्ण-नाग-यक्ष, दैत्य-दानव-राक्षस तथा देवताओं द्वारा अवध्य हो जाऊं। इसके अलावा ब्रह्मा जी ने उसके नौ सिर लौटाकर कामरूपी होने का वर प्रदान किया।

अब अहंकार से चूर रावण ऋषियों के यज्ञों को विध्वंस करने लगा, दुष्ट ब्राह्मणों की हत्या करने लगा।

प्राप्तयज्ञहरं दुष्टं ब्रह्मघ्नं क्रूरकारिणम्।।
कर्कशं निरनुक्रोशं प्रजानामहिते रतम् ।[75]

अर्थात्- 'समाप्ति के निकट पहुंचे हुए यज्ञों का विध्वंस करनेवाला वह दुष्ट निशाचर ब्राह्मणों की हत्या तथा दूसरे-दूसरे क्रूर कर्म करता था। वह बड़े ही रूखे स्वभाव का और निर्दय था। सदा प्रजाजनों के अहित में ही लगा रहता था।'

वरदान प्राप्त कर रावण ने प्रहस्त के द्वारा वैश्रवण से लंका की मांग की। पिता के परामर्श पर वैश्रवण लंका छोड़ कैलास पर निवास करने लगे। अब राक्षसों के साथ लंका पर रावण का अधिकार हो गया।

वाल्मीकि रामायण से यह भी ज्ञात होता है कि रावण शिव भक्त था और महादेव ने ही उसका नाम रावण (राव: सुदारुण:) रखा था। रामायण में रावण का अर्थ 'रुलाने वाला' है।

वाल्मीकि रामायण के प्रामाणिक सर्गों में कहीं भी रावण के प्रति किसी शाप का उल्लेख नहीं आया है। महादेव ने देवताओं को आश्वासन दिया था कि एक स्त्री के कारण रावण का नाश होगा-'उत्पत्स्यति हितार्थ वो नारी रक्ष: क्षयावहा।'

अर्थात्- 'तुम लोगों के हित के लिये एक दिव्य नारी का आविर्भाव होगा, जो समस्त राक्षसों के विनाश का कारण होगी।[76]

राक्षस वंश में सुमाली ने अपनी पुत्री कैकसी को विश्रवा मुनि से विवाह करने का दवाब दिया ताकि उससे वैश्रवण कुबेर जैसा ही पुत्र उत्पन्न हो। दारुण वेला में कैकसी ने विश्रवा के आश्रम में पहुंच कर उनसे विवाह करने और पुत्र प्राप्ति की कामना की। कैकसी के गर्भ से रावण, कुम्भकर्ण, शूर्पणखा और विभीषण का जन्म हुआ। जन्म के समय रावण दस ग्रीवों, बीस भुजाओं और विशाल मुख सहित कोयले के पहाड़ जैसा काला था। दसग्रीवाओं के कारण विश्रवा ने उसका नाम 'दसग्रीव' रखा।[77] लोकों को रुला देने के कारण उसको 'रावण' भी कहा गया।[78] एक अन्य संदर्भ के अनुसार कैलाश को उठाने के क्रम में शिव ने अपने पैर के अंगूठे से पहाड़ को दबा दिया था जिससे रावण का हाथ दब गया था और पीड़ा से उसने चीत्कार किया था। अपनी चीख से तीनों लोकों को रुला देने के कारण उसका नाम रावण रखा **गया।**[79]

रावण के अन्त:पुर में अनेक अपहृत युवतियां थीं। लेकिन रावण की दो पत्नियों का उल्लेख मिलता है-मय दानव की पुत्री मन्दोदरी और दूसरी पत्नी थी-धन्यमालिनी। रावण वेद, शास्त्र, राजनीति, धर्म और अर्थनीति का जानकार और महान् पंडित था। जगह जगह उसे महात्मा के अलावा 'महातेजा' और 'वाक्यकोविद:' जैसे विशेषण से विभूषित किया गया है। हनुमान ने रावण को धर्म और अर्थ के तत्व का मर्मज्ञ मानते हुए बुद्धिमान कहा है।[80]

सीता की खोज में हनुमान जब लंका आते हैं और रावण के शयनकक्ष में रावण को देखते हैं तब उसकी सुन्दरता को देख वे प्रसन्न होते हैं। रावण अत्यन्त रूपवान, आभूषणों से विभूषित, दोनों भुजाएं इन्द्रध्वज के समान थी। दरबार में देखकर हनुमान उसके सौंदर्य पर मुग्ध हुए-'अहो! इस राक्षसराज का रूप कैसा अद्भुत! कैसा अनोखा धैर्य है! कैसी अनुपम शक्ति है! और कैसा आश्चर्यजनक तेज है! इसका सम्पूर्ण राजोचित लक्षणों से सम्पन्न होना कितने आश्चर्य की बात है।'[81]

कुबेर के समय में लंका एक सम्पन्न और समृद्ध नगरी बन चुकी थी। लेकिन रावण ने सीता को अन्त:पुर दिखलाते समय स्वयं कहा है कि लंका का विस्तार सौ योजन तक है। रावण ने इसकी सीमा सुरक्षा, सैन्य शक्ति और नगरी के नव निर्माण पर विशेष ध्यान दिया था। हनुमान को भी संशय हो रहा था कि राम लंका विजय कैसे कर पायेंगे? रावण ने इस लंका को अपने शौर्य से विशाल बनाया था।

रावण ब्रह्मा और शिव के अलावा किसी देवता का भक्त नहीं रहा। यम, वरुण, कुबेर, इन्द्र एवं अन्य राजाओं को वह युद्ध में परास्त कर चुका था। रावण सिर्फ दो युद्धों में पराजित हुआ-एक सहस्रबाहु अर्जुन से और दूसरा किष्किन्धा नरेश बाली से। सहस्रबाहु अर्जुन के कैद से तो रावण को पुलस्त्य ने मुक्त कराया। बाली की वीरता देख रावण ने उससे मैत्री कर ली। रावण की वीरता से दशरथ भी कांप जाते थे। वे कहते हैं-

इत्युक्तो मुनिना तेन राजोवाच मुनिं तदा।
नहि शक्तोऽस्मि संग्रामे स्थातुं तस्य दुरात्मन:।।[82]

अर्थात्- विश्वामित्र मुनि के ऐसा कहने पर राजा दशरथ उनसे इस प्रकार बोले-'मुनिवर! मैं उस दुरात्मा रावण के सामने युद्ध में नहीं ठहर सकता।

रावण में यह विशेषता थी कि छोटी-बड़ी किसी भी बात पर वह अपने मंत्रिपरिषद् के परामर्श पर ही कोई निर्णय लेता था। उसके प्रभाव में आकर परामर्श देने का वह सदैव विरोधी रहा। वह जनतन्त्र में विश्वास रखता था। सीता हरण के लिए भी उसने मंत्रियों से परामर्श लिया था। रावण की मान्यता थी कि राजा के प्रतिकूल चलने वाला पुरुष कभी सुखी नहीं रह सकता। शुक और सारण को फटकारते हुए कहा था कि निग्रह और अनुग्रह करने में समर्थ होता है। उसके आश्रय में जीविका चलाने वाले मंत्रियों को ऐसी कोई बात नहीं करनी चाहिए जो अप्रिय लगे। तुम लोग अज्ञान का बोझ ढो रहे हो। रावण का कहना था कि वन में दावानल का स्पर्श करके भी वृक्षों का खड़ा रह जाना संभव है किन्तु राजदण्ड के पात्र अपराधियों का बचना कठिन है। रावण ने शुक और सारण को निकाल दिया था।

Scanned with OKEN Scanner

वेदों का ज्ञाता होते हुए भी रावण की आस्था यज्ञ में नहीं थी। रावण ने यज्ञ नहीं किया। मेघनाद के यज्ञ स्थल पर पहुंच कर रावण ने शुक्राचार्य से कहा कि मेघनाद को अस्त्र-शस्त्रों की प्राप्ति अवश्य हुई। लेकिन इस यज्ञ में शत्रुभूत इन्द्र आदि देवताओं का पूजन हुआ है। दशरथ से राम को मांगने गये विश्वामित्र ने कहा है कि रावण स्वयं कभी यज्ञ में विघ्न नहीं डालता-

यदा न खलु यज्ञस्य विघ्नकर्ता महाबलः।।
तेन संचोदितौ तौ तु राक्षसौ च महाबलौ।[83]

अर्थात्- 'वह महाबली निशाचर इच्छा रहते हुए भी स्वयं आकर यज्ञ में विघ्न नहीं डालता (अपने लिये इसे तुच्छ कार्य समझता है)।

हाँ, वह कट्टर शिवभक्त अवश्य था। दिग्विजय यात्रा में जाते हुए रावण 'जाम्बूनदमय शिवलिंग' सदैव साथ में ले जाता था।

रावण उन ऋषि मुनियों का घोर विरोधी था जो यज्ञ आदि कर्मकाण्ड का पाखण्ड रचकर स्वयं को शेष मानव समाज से श्रेष्ठ सिद्ध करते हुए समस्त सुख सुविधाओं पर एकाधिकार करने का प्रयत्न करते थे। अन्य ऋषि मुनियों को कभी पीड़ित नहीं किया। रावण की मान्यता थी कि आम नागरिक पाखंडी ऋषि मुनियों से त्रस्त था। वह भी अपने को मनुष्य मानता था। उसके द्वारा किसी मनुष्य के त्रस्त होने का संदर्भ नहीं मिलता। रावण को 'त्रिदशारि मुनीन्द्र' तो कहा गया है किन्तु कहीं 'मानवारि' अथवा 'मानवघ्न' नहीं कहा गया है।

रावण पर नारियों के अपहरण का आरोप लगाया जाता है। उसके लिए 'कामवृत्त निरंकुशः', 'कामवृतो हि दुःशीलः', 'मदनेन मदोत्कटः' 'काम पराधीनः' जैसे विशेषणों का प्रयोग किया गया है। हनुमान ने स्वयं रावण के राजमहल में अनेक अपहृत राजकन्याओं को देखा था। वेदवती के साथ दुर्व्यवहार और रम्भा के साथ बलात्कार की कथाएं भी रावण से जुड़ी हैं।

रावण कभी भी नारी को पुरुषों के समकक्ष स्वीकार करने को तैयार नहीं था। उसने मात्र सीता के समक्ष ही प्रणय निवेदन हेतु सिर झुकाया था। उसकी मान्यता थी कि काम मनुष्य के हृदय में क्रोध की नहीं वरन् करुणा और स्नेह की भावना उत्पन्न करता है। इन्हीं विचारों के कारण उसने सीता को मार डालने का विचार त्याग दिया था। नलकूबर के शाप के कारण ही रावण कामपीड़ित होकर भी सीता पर बल प्रयोग करने में असमर्थ था। क्योंकि शाप के अनुसार उसके मस्तक के सात टुकड़े होने का भय बना था।

रावण स्वयं एक पत्नीव्रत और पतिव्रत धर्म की महत्ता को स्वीकार करता था। लेकिन देवलोक की अप्सराओं, देवों, गन्धर्वों आदि में इसकी कोई महत्ता नहीं पाकर उसने अपहरण में कोई दोष नहीं माना।

तरुणियों के तापस वेश का रावण सख्त विरोधी रहा। सीता के अपहरण के समय उसने स्पष्ट कहा है कि यह उग्रशृंगार, प्रसाधन और सुखमय जीवन व्यतीत करने का है।

रावण की मान्यता थी कि जाति व्यवस्था समाज के लिए हितकर नहीं है। वह ब्राह्मणों को सम्मान देता था। लेकिन ब्राह्मण शब्द का प्रयोग प्रायः 'वेदज्ञ' अथवा

'वेदपारगाः' विशेषणों के साथ किया गया है। राम और भरत के संदर्भ में चारों वर्णों का उल्लेख मिलता है लेकिन रावण राज्य में इस प्रकार की जातियों-उपजातियों का अस्तित्व नहीं मिलता। उसकी मान्यता थी कि जाति वाले सदा अपनी जाति के लोगों को विपत्ति में फंसा हुआ देख हर्षित होते हैं।

रावण की मृत्यु के समय विभीषण शोक करते हुए उसके शौर्य की चर्चा करते हैं। राम ने स्वयं विभीषण को सान्त्वना देते हुए रावण की प्रशंसा की है और कहा है क्षत्रिय वृत्ति से रहने वाला वीर पुरुष अगर युद्ध में मारा गया है तो वह शोक के योग्य नहीं है, यही शास्त्र का सिद्धान्त है।

सीता का चरित्र

'सीता' जिसका शाब्दिक अर्थ होता है 'लांगल' पद्धति से निकली अर्थात् हल से खींची गई रेखा। वैदिक साहित्य में दो सीताओं का वर्णन हमें देखने को मिलता है। पहली सीता कृषि की अधिष्ठात्री देवी है, जिसका उल्लेख ऋग्वेद से लेकर सारे वैदिक साहित्य में अनेक स्थलों पर हुआ है। दूसरी सीता का परिचय हमें तैत्तिरीय ब्राह्मण से प्राप्त होता है, जहां सीता सावित्री, सूर्य की पुत्री हैं।

रामायण में वर्णित समस्त स्त्री चरित्रों में सीता जी का चरित्र सर्वोत्तम सर्वथा आदर्श एवं अनुकरणीय है। समाज की महिलाओं के लिए उनका चरित्र पथ-प्रदर्शक है। वे पातिव्रत्य, त्याग, शील, निर्भरता, शांति, क्षमा, सहनशीलता, धर्म परायणता, नम्रता, संयम, सेवा, व्यवहार पटुता, साहस, शौर्य जैसे गुणों की प्रतिमूर्ति हैं।

वाल्मीकि रामायण में सीता के बालचरित्र का वर्णन नहीं किया गया है। वन गमन के समय सीता के वक्तव्य से ही जानकारी मिलती है कि माता-पिता के द्वारा ही उन्हें मायके में उपयोगी शिक्षा मिल चुकी थी। वहीं उन्होंने सुख दुख, सदाचार-संयम जैसी परिस्थितियों में भी प्रसन्न रहना सीखा है।

सेवा के लिए प्रेमाग्रह

जब रामचन्द्र सीता से मिलने महल में गये और वन गमन की बात कही तब सीता ने अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया। वे कहती हैं:-

न पिता नात्मजो वात्मा न माता न सखीजनः।
इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा।।
यदि त्वं प्रस्थितो दुर्गं वनमद्यैव राघव।
अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्नन्ती कुशकण्टकान्।।
प्रासादाग्रे विमानैर्वा वैहायसगतेन वा।
सर्वावस्थागता भर्तुः पादच्छाया विशिष्यते।।[84]

अर्थात्- नारियों के लिये इस लोक और परलोक में एकमात्र पति ही सदा आश्रय देनेवाला है। पिता, पुत्र, माता, सखियां तथा अपना यह शरीर भी उसका सच्चा सहायक नहीं है। रघुनन्दन! यदि आप आज ही दुर्गम वन की ओर प्रस्थान कर रहे हैं तो मैं रास्ते के कुश और कांटों को कुचलती हुई आप के आगे-आगे चलूंगी। ऊंचे-ऊंचे महलों में

रहना, विमानों पर चढ़ कर घूमना अथवा अणिमा आदि सिद्धियों के द्वारा आकाश में विचरना-इन सबकी अपेक्षा स्त्री के लिये सभी अवस्थाओं में पति के चरणों की छाया में रहना विषेश महत्व रखता है।

श्रीराम ने वन में होने वाले कष्टों को बताकर सीता को रोकना चाहा। लेकिन पति सेवा में ही संसार का संपूर्ण सुख विद्यमान है ऐसा समझ सीता अपने आग्रह पर अडिग रहीं और उन्हें इसमें सफलता भी मिली।

सहिष्णुता

सीता की सहिष्णुता का एक उदाहरण हमें तब देखने को मिलता है जब कैकेयी ने वनवास के वल्कल वस्त्र सीता को दिये। मिथिला की राजकुमारी और राम की पत्नी सीता, जिसका जीवन सुख और सौन्दर्य में ही बीता था, उसके हाथ में वनवासी वस्त्र देख महर्षि वशिष्ठ भी क्षुब्ध हुए। उन्होंने कैकेयी को कड़ी फटकार लगाई और सीता को वल्कल वस्त्र नहीं पहनने को कहा। लेकिन सीता के मन में कैकेयी के प्रति कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ। वह सिर्फ शांत रहीं। वह तो जानती थीं कि पति के सुख के साथ ही मेरा सुख है-उनके दुख में सहभागी बनना मेरा दायित्व है। वह अपने निर्णय पर अटल रहीं। कवि ने लिखा है-

तस्मिंस्तथा जल्पति विप्रमुख्ये
गुरौ नृपस्याप्रतिमप्रभावे।
नैव स्म सीता विनिवृत्तभावा
प्रियस्य भर्तुः प्रतिकारकामा।।[85]

अर्थात्- ब्राह्मणशिरोमणि अप्रतिम प्रभावशाली राजगुरु महर्षि वशिष्ठ के ऐसा कहने पर भी सीता अपने प्रियतम पति के समान ही वेष-भूषा धारण करने की इच्छा रख कर उस चीर-धारण से विरत नहीं हुई।

इस घटना को देख हमें सीख मिलती है कि किसी बड़े-बूढ़े के कटु वचन को भी सहने की क्षमता होनी चाहिए। पति की तरह ही सादगी में रहने की आदत बनानी चाहिए।

वन में पतिसेवा

वन में समस्त भौतिक सुखों को भूलकर सीताजी सदैव अपने पति राम की सेवा में संलग्न रहीं। ऋषियों के आदर-सत्कार में वह राम के साथ अपने कर्त्तव्य का पालन करती रहीं। पति के सान्निध्य से सीताजी सदैव निर्भय रहीं। अत्रि आश्रम में जब श्रीराम पहुंचे तब अनुसूया ने पातिव्रत धर्म का सुन्दर उपदेश दिया जिसे सीताजी ने स्वीकार किया:-

यद्यप्येष भवेद् भर्ता अनार्यो वृत्तिवर्जितः।
अद्वैधमत्र वर्तव्यं तथाप्येष मया भवेत्।।
किं पुनर्यो गुणश्लाघ्यः सानक्रोशो जितेन्द्रियः।
स्थिरानुरागो धर्मात्मा मातृवत्पितृवत्प्रियः।।[86]

अर्थात्- 'मेरे पतिदेव यदि अनार्य (चरित्रहीन) तथा जीविका के साधनों से रहित (निर्धन) होते तो भी मैं बिना किसी दुविधा के इनकी सेवा में लगी रहती।'

'फिर जब कि ये अपने गुणों के कारण ही सबकी प्रशंसा के पात्र हैं, तब तो इनकी सेवा के लिये कहना ही क्या है। ये श्रीरघुनाथ जी परम दयालु, जितेन्द्रिय, दृढ़ अनुराग रखने वाले, धर्मात्मा तथा माता-पिता के समान प्रिय हैं।'

सीताजी ने वहीं अपने पति के पराक्रम का परिचय देते हुए वनगमन के समय कौशल्या द्वारा दिये गये उपदेश और विवाह के समय मां द्वारा दिये उपदेश का स्मरण किया और बताया कि वह उपदेश मेरे हृदय में अंकित है।

निर्भयता

जिस रावण के नाम से देवलोक भी भयभीत होता था उसी रावण को उसके कैद में होने के बाद भी सीताजी क्रोध से तिरस्कार करती हैं:-

त्वं पुनर्जम्बुकः सिंहीं मामिहेच्छसि दुर्लभाम्।
नाहं शक्या त्वया स्प्रष्टुमादित्यस्य प्रभा यथा।।[87]

अर्थात्- 'पापी निशाचर! तू सियार है और मैं सिंहिनी हूँ। मैं तेरे लिये सर्वथा दुर्लभ हूँ। क्या तू मुझे प्राप्त करने की इच्छा रखता है। अरे! जैसे सूर्य की प्रभा पर कोई हाथ नहीं लगा सकता, उसी प्रकार तू मुझे छू भी नहीं सकता।'

इसके सिवा उन्होंने यह भी कहा कि तुझमें और श्रीरामचन्द्र जी में उतना ही अन्तर है जितना सिंह और सियार में, समुद्र और नाले में, अमृत और कांजी में, सोने और लोहे में, चंदन और कीचड़ में, हाथी और विलाव में, गरुड़ और कौवे में।'

धर्मपालन में दृढ़ता

घोर विपत्ति में पड़ने के बाद भी सीता अपने धर्म पालन में दृढ बनी रहीं। लंका की अशोक वाटिका में रावण ने अपने वैभव को प्रदर्शित कर सीताजी को अपने धर्म पालन से विमुख करने का काफी प्रयास किया, राक्षसियों द्वारा भय और प्रलोभन दिया गया, रावण ने अपनी माया से राम का सिर प्रदर्शित किया लेकिन सीताजी सदैव नीतियुक्त शब्दों में रावण का तिरस्कार करती रहीं। अपने धर्म से डिगने की बात उन्होंने स्वप्न में भी कल्पना नहीं कीं। अशोक वाटिका में सीताजी किस प्रकार अपना जीवन व्यतीत करती हैं-कवि ने इसका मर्मस्पर्शी वर्णन किया है-

नहि मे जीवितेनार्थो नैवार्थैर्न च भूशणैः।
वसन्त्या राक्षसीमध्ये विना रामं महारथम्।।
धिङ्मामनार्यामसतीं याहं तेन विना कृता।
मुहूर्तमपि जीवामि जीवितं पापजीविका।।
चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम्।
रावणं किं पुनरहं कामयेयं विगर्हितम् ।।[88]

अर्थात्- 'महारथी श्रीराम के बिना राक्षसियों के बीच में रहकर मुझे न तो जीवन से कोई प्रयोजन है, न धन की आवश्यकता है और न आभूषणों से ही कोई काम है।'

Scanned with OKEN Scanner

'मैं बड़ी ही अनार्य और असती हूँ, मुझे धिक्कार है, जो उनसे अलग होकर मैं एक मुहूर्त भी इस पापी जीवन को धारण किये हूँ। अब तो यह जीवन केवल दुख देने के लिये ही है।'

'उस लोकनिन्दित निशाचर रावण को तो मैं बायें पैर से भी नहीं छू सकती, फिर उसे चाहने की तो बात ही क्या है?'

सावधानी

अशोक वाटिका में बंदी सीताजी जानती हैं कि रावण माया जानता है। माया से वह कोई भी रूप धारण कर सकता है। हर तरह से मुझे प्रभावित करने का प्रयास कर सकता है इसलिए वह पग-पग पर सावधान रहती हैं। हनुमान के अशोक वाटिका आगमन पर भी सीता तब तक उनसे सशंकित रहीं जब तक कि उन्हें पूर्ण विश्वास नहीं हो गया कि वे राम के दूत होकर आये हैं। हनुमान से राम की मुद्रिका प्राप्त कर सीताजी पूर्णरूपेण हनुमान पर विश्वास करने लगीं। सीता जी ने हनुमान से कहा:-

अर्हसे च कपिश्रेष्ठ मया समभिभाषितुम्।
यद्यसि प्रेषितस्तेन रामेण विदितात्मना।।[89]

अर्थात्- 'कपिश्रेष्ठ! यदि तुम्हें आत्मज्ञानी भगवान श्रीराम ने भेजा है तो तुम अवश्य इस योग्य हो कि मैं तुमसे बातचीत करूँ।'

प्रेम

राम के प्रति सीता के ह्रदय में अलौकिक प्रेम था। हनुमान जी से वार्ता के क्रम में वह अपने राम के साथ देवर का कुशलक्षेम पूछती हैं। भाव विभोर हो रो पड़ती हैं।

पर पुरुष से परहेज

सीताजी की विरह स्थिति देख हनुमान जी ने उन्हें आश्वासन दिया और कहा-

त्वां तु पृष्ठगतां कृत्वा संतरिष्यामि सागरम्।
शक्तिरस्ति हि मे वोढ़ुं लंकामपि सरावणाम्।।[90]

अर्थात्- 'आपको पीठ पर बैठा कर मैं समुद्र को लांघ जाऊंगा। मुझमें रावणसहित सारी लंका को भी ढो ले जाने की शक्ति है।

हनुमान जी ने कहा मैं शीघ्र ही आपको रघुनाथजी के पास पहुंचा दूंगा। हनुमान के ऐसे वचन सुन सीता जी प्रसन्न अवश्य हुईं। लेकिन परपुरुष स्पर्श से परहेज करने के उद्देश्य से उन्होंने कहा-

भर्तुर्भक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर।
नाहं स्प्रष्टुं स्वतो गात्रमिच्छेयं वानरोत्तम।।
यदहं गात्रसंस्पर्शं रावणस्य गता बलात्।
अनीशा किं करिष्यामि विनाथा विवशा सती।।
यदि रामो दशग्रीवमिह हत्वा सराक्षसम्।
मामितो गृह्य गच्छेत तत् तस्य सदृशं भवेत्।।[91]

अर्थात्- 'वानरश्रेष्ठ! (तुम्हारे साथ न चल सकने का एक प्रधान कारण और भी है) वानरवीर! पतिभक्ति की ओर दृष्टि रखकर मैं भगवान श्रीराम के सिवा दूसरे किसी पुरुष के शरीर का स्वेच्छा से स्पर्श करना नहीं चाहती।'

'रावण के शरीर से जो मेरा स्पर्श हो गया है, वह तो उसके बलात् हुआ है। उस समय मैं असमर्थ, अनाथ और बेबस थी, क्या करती।'

'यदि श्रीरघुनाथ जी यहां राक्षसों सहित दशमुख रावण का वध करके मुझे यहां से ले चलें तो वह उनके योग्य कार्य होगा।'

क्षमा

लंका विजय के पश्चात् राम की अनुमति से हनुमान जी सीताजी के समक्ष अशोक वाटिका आये। उन्होंने मां सीता से अनुमति मांगी कि यातना देने वाली राक्षसियों का मैं संहार करूँ। लेकिन सीताजी ने हनुमान जी को रोक दिया। उनके ह्रदय में राक्षसियों के प्रति दया की भावना थी। वह क्षमा करने में विश्वास रखती थीं। दीनों पर प्रेम रखने वाली तपस्विनी सीता ने कहा-

राजसंश्रयवश्यानां कुर्वतीनां पराज्ञया।।
विधेयानां च दासीनां कः कुप्येद् वानरोत्तम।
भाग्यवैषम्यदोषेण पुरस्तादट्टष्कृतेन च।।
मयैतत् प्राप्यते सर्वं स्वकृतं ह्युपभुज्यते।
मैवं वद महाबाहो दैवी ह्येषा परा गतिः।।[92]

अर्थात्- 'कपिश्रेष्ठ! ये बेचारी राजा के आश्रय में रहने के कारण पराधीन थीं। दूसरों की आज्ञा से ही सब कुछ करती थीं, अतः स्वामी की आज्ञा का पालन करने वाली इन दासियों पर कौन क्रोध करेगा? मेरा भाग्य ही अच्छा नहीं था तथा मेरे पूर्व जन्म के दुष्कर्म अपना फल देने लगे थे, इसी से मुझे यह सब कष्ट प्राप्त हुआ है, क्योंकि सभी प्राणी अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मों का ही फल भोगते हैं, अतः महाबाहो! तुम इन्हें मारने की बात न कहो। मेरे लिये दैव का ही ऐसा विधान था।'

अग्नि-परीक्षा

सीता जी के दर्शन कर राम भी प्रसन्न हुए। लेकिन राम ने मनुष्य के कर्त्तव्य की पूर्ति का संदेश देते हुए कहा-

यत् कर्तव्यं मनुष्येण धर्षणां प्रतिमार्जता।
तत् कृतं रावणं हत्वा मयेदं मानकाङ्क्षिणा।।[93]

'अपने तिरस्कार का बदला चुकाने के लिए मनुष्य का जो कर्तव्य है, वह सब मैंने अपनी मान रक्षा की अभिलाषा से रावण का वध करके पूर्ण किया :-

कः पुमांस्तु कुले जातः स्त्रियं परगृहोषिताम्।
तेजस्वी पुनरादद्यात् सुहल्लो भेन चेतसा।।
यदर्थं निर्जिता मे त्वं सोऽयमासादितो मया।
नास्ति मे त्वटयभिष्वंगो यथेष्टं गम्यतामिति।।[94]

'कौन ऐसा कुलीन पुरुष होगा, जो तेजस्वी होकर भी दूसरे के घर में रही हुई स्त्री को, केवल इस लोभ से कि यह मेरे साथ बहुत दिनों तक रहकर सौहार्द स्थापित कर चुकी है, मन से भी ग्रहण कर सकेगा।'

'अतः जिस उद्देश्य से मैंने तुम्हें जीता था, वह सिद्ध हो गया- मेरे कुल के कलंक का मार्जन हो गया। अब मेरी तुम्हारे प्रति ममता या आसक्ति नहीं है, अतः तुम जहां जाना चाहो, जा सकती हो।'

सीता जी की पवित्रता का प्रमाण स्वयं अग्नि देव ने दिया और राम को विश्वास दिलाया-

अब्रवीत् तु तदा रामं साक्षी लोकस्य पावकः।
एषा ते राम वैदेही पापमस्यां न विद्यते॥
नैव वाचा न मनसा नैव बुद्धय न चक्षुषा।
सुवृत्ता वृत्तशौटीर्य न त्वामत्यचरच्छुभा॥[95]

अर्थात्- उस समय लोकसाक्षी अग्नि ने श्रीराम से कहा- 'श्रीराम! यह आपकी धर्मपत्नी विदेह राजकुमारी सीता है। इसमें कोई पाप या दोष नहीं है।'

'उत्तम आचार वाली इस शुभलक्षणा सती ने मन, वाणी, बुद्धि अथवा नेत्रों द्वारा भी आपके सिवा किसी दूसरे पुरुष का आश्रय नहीं लिया। इसने सदा सदाचारपरायण आपका ही आराधन किया है।'

राम, अग्निदेव की बात से संतुष्ट हुए। लेकिन उन्होंने कहा कि लोकदृष्टि में सीता की पवित्रता की परीक्षा लेना आवश्यक था।

सीता का परित्याग

अग्नि प्रवेश के बाद श्रीराम इस बात से पूरी तरह सहमत हैं कि सीता पवित्र हैं। लेकिन इसके बाद भी लोकापवाद का ध्यान रखते हुए, प्रजा की संतुश्टि के लिए, उन्होंने सीताजी का परित्याग किया। लक्ष्मण से जब सीताजी को उनके परित्याग की जानकारी मिली तब उनकी पीड़ा असहनीय रही। लेकिन सीताजी ने अपने पति परमेश्वर पर कोई दोषारोपण नहीं किया। उन्होंने श्रीराम के पास संदेश भिजवाते हुए कहा-'आप जैसा व्यवहार अपने भाइयों से करते हैं, वैसा ही सदा पुरवासियों के साथ भी करें- इस मिथ्या अपवाद के कारण खीझकर उनके प्रति किसी प्रकार का दुर्व्यवहार न कर बैठें। पुरवासियों के साथ धर्मानुकूल आचरण करना ही आपका परम धर्म है और उससे आपको उत्तम यश की प्राप्ति होगी।

अहं त्यक्ता च ते वीर अपशोभीरूणा जने।
यच्च ते वचनीयं स्यादपवादः समुत्थितः॥
पया च परिहर्तव्यं त्वं हि मे परमा गतिः।[96]

अर्थात्-'वीर! आपने अपयश से डरकर ही मुझे त्यागा है, अतः लोगों में आपकी जो निन्दा हो रही है अथवा मेरे कारण जो अपवाद फैल रहा है, उसे दूर करना मेरा भी कर्त्तव्य है, क्योंकि मेरे परम आश्रय आप ही हैं।'

पाताल प्रवेश

अश्वमेध यज्ञ के समय जब सीता को बुलाया जाता है तब वह श्रीराम का ध्यान लगाये हुए ही सिर नीचा किये, हाथ जोड़े वाल्मीकि के पीछे-पीछे आती हैं। वाल्मीकि ने सीता को निष्पाप कहकर लोकापवाद को दूर करने का प्रयास किया। अग्नि परीक्षा से राम तो सीता की पवित्रता से संतुष्ट हैं ही। लेकिन लोकापवाद दूर करने के लिए सीताजी को प्रमाण देना आवश्यक बताया। पृथ्वी की ओर देखते हुए सीताजी ने नम्रता से कहा-

मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥[97]

अर्थात्- 'यदि मैं मन, वाणी और क्रिया के द्वारा केवल श्रीराम की ही आराधना करती हूँ तो भगवती पृथ्वीदेवी मुझे अपनी गोद में स्थान दें।'

धरती फटी और सीता जी पृथ्वी की गोद में चली गईं। आकाश से पुष्पवृष्टि हुई।

(ग) पउमचरियं के गौण पात्र

दशरथ

पउमचरियं के पर्व 22 में दशरथ की विस्तृत वंशावली का उल्लेख किया गया है। अनरण्य के दो पुत्र माने जाते हैं-अनन्तरथ और दशरथ।[98] अनन्तरथ अपने पिता अनरण्य के साथ दीक्षा ले लेते हैं जिससे दशरथ को राज्याधिकार मिलता है।[99]

दशरथ की रानियों में राम की माता अपराजिता हैं जो अरुहस्थल के राजा सुकोशल और अमृत प्रभा की पुत्री थी। पउमचरियं के पर्व-चौबीस में कैकेयी के स्वयंवर का उल्लेख किया गया है। कैकेयी और महादेवी मित्रा कमल संकुलपुर के राजा सुबन्धु तिलक और उनकी पत्नी पृथ्वीश्री की पुत्री थीं। महादेवी मित्रा का नामकरण विवाह के पश्चात् सुमित्रा किया गया।[100] इस ग्रंथ में दशरथ की पांच सौ उत्तम स्त्रियों का और चार महासमर्थ पुत्रों का उल्लेख आया है।[101]

दशरथ की लोकप्रियता का कारण उनका पुण्य प्रभाव था। लेकिन रावण के पराक्रम से दशरथ भयभीत थे। नारद ने दशरथ के पास आकर बताया- ''भगवान शांति नाथ के मंदिर में एक नैमित्तिक ने कहा था-'सागर-मार्ग से आकर दशरथ का पुत्र, जनक की पुत्री सीता के कारण रावण को युद्ध में मारेगा, इसमें संदेह नहीं है।' अब विभीषण तुम्हें मारने के लिए आ रहा है। दशरथ मंत्रियों को राज्य सौंपकर, गुप्त रूप से दूसरे राज्यों का भ्रमण करने के लिए निकल गये।

गुप्त वेष में भ्रमण करते हुए दशरथ कैकेयी स्वयंवर में आते हैं। कैकेयी ने पति रूप में दशरथ का चयन किया। सभा में बैठे क्रोधित अन्य राजाओं के साथ दशरथ का युद्ध हुआ। युद्ध में कैकेयी ने दशरथ का रथ हांका। प्रसन्न होकर दशरथ ने अपनी पत्नी कैकेयी को एक वर मांगने को कहा।

पउमचरियं से हमें जानकारी मिलती है कि कैकयी दशरथ की प्रिय रानी रही है। वे कैकयी की वीरता और सौंदर्य के कायल हैं। उसकी वीरता से प्रसन्न होकर दशरथ

कहते हैं-" भद्रे! मन में जो प्रिय हो यदि तुम मांगोगी तो मैं वह दूँगा।" ।[102]

इस ग्रंथ में राम सीता के जन्म से पूर्व दशरथ और जनक की मैत्री का उल्लेख देखने को मिलता है। नारद के कथन पर विभीषण के आक्रमण के भय से जिस तरह राजा दशरथ गुप्त वेष में प्रदेशों का भ्रमण कर रहे थे उसी तरह राजा जनक भी गुप्त वेष में अन्य प्रदेशों में घूम रहे थे। कैकयी स्वयंवर में अन्य राजाओं से युद्ध करते हुए जनक ने दशरथ का शौर्य भी देखा था। इसी कारण म्लेच्छों के आक्रमण को देखकर राजा जनक ने दशरथ से मदद मांगने के लिए अपना दूत भेजा। दशरथ ने स्वर्ण कलश हाथ में धारण कर, राम को पृथ्वी पालन का भार सौंप म्लेच्छों से युद्ध करने के लिए जाना चाहते हैं। लेकिन राम, दशरथ को रोक, स्वयं युद्ध में जाते हैं।

वज्रावर्त्त धनुष पर राम द्वारा डोरी चढ़ाने के समय मिथिला में दशरथ अपने चारों पुत्रों के साथ उपस्थित थे। जनक अपनी पुत्री सीता से पद्म (राम) का विवाह करते हैं। साथ ही अन्य तीनों भाइयों का विवाह भी उसी समय होता है। कुल परम्परा के अनुसार दशरथ राम को अपने राज्य का उत्तराधिकार देना चाहते हैं और स्वयं वैराग्य लेना चाहते हैं। कैकयी वरदान स्वरूप दशरथ से राज्य मांगती है और भरत को उत्तराधिकार देने को कहती है।

दशरथ के वैराग्य लेने के पीछे इस ग्रंथ में उल्लेख किया गया है कि वे सर्वभूत शरण मुनि से जब अपने पूर्व भव के बारे में जानने की इच्छा प्रकट करते हैं तब मुनि दशरथ को उनके अनेक जन्मों के वृत्तान्त सुनाते हैं। वे कहते है-"धर्म से जीव देव एवं मनुष्यों की विविध भोग समृद्धि प्राप्त करता है, जब कि अधर्म से वह नरक एवं तिर्यचगतियों में दुख प्राप्त करता है।"[103] कर्म विपाक सुनकर राजा दशरथ ने प्रव्रज्या लेने का विचार किया।

पिता और माँ के वचन को पूरा करने के लिए राम, सीता-लक्ष्मण के साथ दक्षिण की ओर प्रस्थान करते हैं। राम वन गमन के पश्चात् कैकेयी पश्चाताप करती है और वह अपने पुत्र भरत और पति दशरथ से राम को वापस बुलाने का अनुरोध करती है। लेकिन दशरथ कहते हैं-"इसमें मेरा कुछ भी सामर्थ्य नहीं है। जो जिसके लिए पूर्व भव से विहित है वह उस मनुष्य को प्राप्त होता है।[104] पुत्र वियोग के कारण दशरथ को और भी विरक्ति हुई। उन्होंने शीघ्र ही भरत को गद्दी पर बैठाया और बहत्तर सुभटों के साथ वे भूतशरण मुनि से दीक्षित हुए।

कैकेयी

रामकथा के पउमचरियं महाकाव्य में कैकेयी का चरित्र काफी महत्वपूर्ण है। वह कौतुक मंगल नगर के राजा शुभमति और पृथ्वीश्री की पुत्री थी। कैकेयी रूप सौंदर्य में तो परिपूर्ण थी ही साथ-साथ वह विविध कलाओं और शास्त्रों में भी कुशल थी। लक्षण और गुणों से युक्त नृत्य, स्वर विभक्ति (आरोह-अवरोह) से युक्त गान विद्या और विशेष रूप से चार प्रकार की आभरण विधि वह जानती थी। भेद-प्रभेद युक्त विद्या, लिपि

शास्त्र, समग्र शब्द लक्षण (व्याकरण), हाथी एवं घोड़े के लक्षण, गणित, छन्द, निमित्त शास्त्र, दीवार के ऊपर चित्र बनाने की आलेख्य विद्या, पत्रच्छेद्य, भोजन विधि, बहुविध रत्नों की परीक्षा, अनेक प्रकार के भेद से युक्त पुष्पों की परीक्षा, विविध प्रकार के गंधों का आयोजन तथा लोक का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त था। सर्वगुण सम्पन्न कैकेयी को देख उसके पिता शुभमति को उसके वर के लिए चिन्तित होना स्वाभाविक था।[105]

उसके पिता ने दूर दूर के कुशल राजाओं को आमंत्रित किया। स्वयंवर का आयोजन किया गया। गुप्त वेश में दूसरे नगरों में भ्रमण करते हुए मिथिला नरेश जनक और साकेत के राजा दशरथ भी उपस्थित हुए। सौंदर्य से परिपूर्ण कैकेयी भी सभा में उपस्थित थी। सभी राजाओं की दृष्टि कैकेयी के सौंदर्य पर ही टिकी थी। लेकिन अकस्मात् कैकेयी ने वरमाला दशरथ के गले में डाल दिया। दूसरे राजाओं के विरोध के स्वर उभरने लगे। वातावरण अशांत होने लगा। जनक ने दशरथ से अविलम्ब नगर में प्रवेश करने का सुझाव दिया। दशरथ पर दूसरे राजाओं ने आक्रमण किया। रूप-यौवन और कला जैसे गुणों में परिपूर्ण कैकेयी ने दशरथ का सारथी का भार संभाला। दशरथ वीरता से युद्ध करने लगे। कैकेयी का कुशल रथ संचालन, दशरथ के विजय का एक कारण रहा।[106]

कैकेयी के गुणों से राजा दशरथ इतने प्रभावित थे कि उन्होंने एक दिन कह दिया-"भद्रे! मन में जो प्रिय हो वह यदि तुम मांगोगी तो मैं वह दूंगा।"[107] । कैकेयी को भला किस चीज की कमी थी। ईश्वर ने उसे सब कुछ प्रदान किया था। उसने कह दिया-"अभी नहीं। जब आवश्यकता होगी मांग लूंगी। निश्चित अवधि पर कैकेयी ने दो पुत्रों - भरत कुमार और शत्रुघ्न को जन्म दिया।

इस ग्रंथ में कैकेयी द्वारा राम के वनवास का कोई उल्लेख नहीं किया गया। अपने पुत्र भरत के वैराग्य दूर करने के लिए उसने दशरथ से राज्य मांगा था। राम के प्रति स्नेह और ममता की झलक भी कैकेयी में हम पाते हैं। जब राम स्वेच्छा से दक्षिण की ओर चले जाते हैं और दशरथ की सभी रानियां शोकमग्न हो जाती हैं तब कैकेयी सबसे पहले भरत को राम को वापस बुलाने भेजती है। फिर स्वयं राम के पास पहुंचकर क्षमा याचना करती है। रोती है और राम को लौट आने का अनुरोध करती है। लेकिन राम कैकेयी के अनुरोध को अस्वीकार करते हैं और भरत का राज्याभिषेक कर अयोध्या वापस भेजते हैं।[108]

इस प्रकार हम देखते हैं कि पउमचरियं महाकाव्य में कैकेयी सौंदर्य की प्रतिमूर्ति, विभिन्न कलाओं की ज्ञाता, रणक्षेत्र की कुशलता रहते हुए अपने पारिवारिक दायित्वों के प्रति सचेष्ट रही है। अपने पुत्र के वैराग्य विचार को दूर करने के उद्देश्य से उसने दशरथ से वरदान स्वरूप राज्य मांगा था। राम के प्रति भी उसका स्नेह बना है। राम को वापस बुलाने के लिए वह उनके पास पहुंचती है। सीता, लक्ष्मण से स्नेहिलों की तरह बातें करती है। पश्चाताप में रोती है। राम के वापस नहीं लौटने पर वह साकेत वापस लौटती है।

Scanned with OKEN Scanner

पउमचरियं के हनुमान

'हनुमान' शब्द सम्भवतः एक द्रविड़ शब्द का संस्कृत रूपान्तर है जिसका अर्थ है-'नरकपि'। इसी कारण अनुमान किया जाता है कि वृषाकपि तथा हनुमान दोनों किसी प्राचीन द्रविड़ देवता के रूपान्तर हैं।[109]

पउमचरियं में वर्णन आया है कि आदित्यपुर के राजकुमार पवनंजय (वायुकुमार) ने महेन्द्रपुर की राजकुमारी अंजना कुमारी से विवाह किया था। विवाहपूर्व ही पवनंजय ने अंजनाकुमारी की सखी के मुंह से अपनी निन्दा सुन रखी थी। इसी कारण वे बाईस वर्षों तक अपनी पत्नी के प्रति उदासीन रहे। इस बीच पवनंजय रावण की ओर से वरुण के विरुद्ध युद्ध करने में व्यस्त रहा। एक दिन जब उसे अंजनाकुमारी के प्रति प्रेम जाग्रत हुआ तब उसने आदित्यपुर आकर अपनी पत्नी से भेंट की। फिर उसी दिन रात में वह युद्ध के लिए प्रस्थान कर गया। इस गुप्त मिलन की किसी को जानकारी नहीं हुई। लेकिन अंजनाकुमारी गर्भवती हुई। ससुराल और मायके में जब पवनंजय की अनुपस्थिति में उसके गर्भवती होने की सूचना मिली तब वह निष्कासित कर दी गई। अंजनाकुमारी ने एक गुफा में पुत्र को जन्म दिया।[110]

आगे चलकर अंजना कुमारी के मामा प्रतिसूर्यक उसे पुत्र सहित हनुरुहपुर ले गये। जाने के क्रम में बालक के गिर जाने के कारण पहाड़ चकनाचूर हो गया। इस घटना के कारण बालक का नाम 'श्री शैल' रखा गया। युद्ध से वापस लौटने पर पवनंजय ने अंजनाकुमारी की पवित्रता की जानकारी दी जिससे उसे पुनः ससुराल लाया गया। हनुरुहपुर में रहने के कारण बालक 'हनुमान' के नाम से प्रचलित हुए ।[111]

इस ग्रंथ में भी हनुमान के पराक्रम का वर्णन देखने को मिलता है। वरुण से युद्ध करने के लिए हनुमान ने बालपन में ही रावण का पक्ष लेकर युद्ध किया था और वरुण के सौ पुत्रों को कैद किया था।[112]

ग्रंथ के पर्व पचास में हमें देखने को मिलता है कि सीता की खोज में लंका जाते हुए हनुमान ने अपनी माता के निष्कासन के लिए प्रतिशोध स्वरूप अपने दादा महेन्द्र को भी सेना सहित परास्त किया था। परास्त महेन्द्र फिर उनकी वीरता की प्रशंसा करता है। आगे चलकर लंका प्रवेश के समय उन्होंने वज्रमुख का वध किया है। सीता की गोद में राम की मुद्रिका फेंक कर उन्होंने वहां अपने पहुंचने का संकेत दिया। रावण को पति स्वरूप स्वीकारने के लिए मंदोदरी ने जब सीता पर दवाब डाला और सीता ने उसके प्रस्ताव का अस्वीकार किया तब मंदोदरी उन्हें मारने को उद्यत हुई। लेकिन हनुमान ने वहां प्रकट होकर मंदोदरी को ऐसा करने पर रोक लगाई। इस ग्रंथ में हनुमान के लंका दहन का वर्णन नहीं मिलता है।

रावण पुत्र इन्द्रजित् हनुमान को बांध कर रावण के पास लाता है। रावण प्रजावर्ग में अपनी वीरता प्रदर्शित करने के लिए हनुमान को नगर में चारों तरफ घुमाने का आदेश देता है। लेकिन जब हनुमान रावण की युद्धशक्ति से पूर्णतः परिचित हो गये तब उन्होंने तत्क्षण अपना बंधन तोड़ दिया। लंका के अनेक महलों को तोड़ दिया और राम के पास लौट आये।[113]

पउमचरियं के उद्देश्य 19, गाथा-42 में उल्लेख किया गया है कि 'हनुमान के रूप एवं गुण से सम्पन्न और पूर्णिमा के चन्द्र के समान सुन्दर मुखवाली एक हजार उत्तम स्त्रियां थीं।' इसी उद्देश्य में जानकारी दी गई है कि हनुमान की प्रधान पत्नियों में वरुण की कन्या सत्यवती, चन्द्रनखा की पुत्री अनंगकुसुमा, सुग्रीव पुत्री पद्मरागा, नल की पुत्री हरिमालिनी आदि हैं।

इस ग्रंथ में राम द्वारा साहसगति को मार सुग्रीव और उसकी पत्नी को वापस दिलाने के बाद सुग्रीव की आज्ञा से विद्याधर सीता की खोज में लग गये। हनुमान को लंका भेजा गया। यहां वज्रमुख का वध कर उसकी कन्या लंका सुन्दरी को परास्त कर उसके साथ रात भर क्रीड़ा करते हैं[114]।

लंका में विभीषण द्वारा हनुमान का स्वागत होता है। विभीषण से सीता को लौटाने के लिए रावण से अनुरोध करने के लिए हनुमान ने कहा।

सुरम्य पद्मोद्यान में हनुमान की भेंट सीता से हुई। मंदोदरी को हनुमान ने अपने कुल, मातापिता का परिचय देते हुए अपने को सुग्रीव का सेवक बताया।[115] हनुमान ने सीता को अपने कंधे पर बिठा कर राम के पास पहुंचाने की बात कही। लेकिन सीता ने कहा-'पर पुरुष का संग और स्पर्श करना मेरे लिए उपयुक्त नहीं है। राम यहां आकर ही मुझे ले जायें।'

हनुमान द्वारा लाखों भवनों और वृक्षों को नष्ट करने की सूचना पाकर रावण अपने वीर सेनाध्यक्षों से कहता है-''कैलाश पर्वत को उठाने से मेरा जो यश तीनों लोकों में फैला था उसे आज नगरी का विनाश करने वाले हनुमान ने पोंछ डाला।''[116]

इन्द्रजित् हनुमान को बांध कर रावण के दरबार में ले आया। हनुमान ने यहां आकर कहा-'हे रावण! रत्नश्रवा आदि सुभटों के कुल में उत्पन्न होने पर भी अनीतिकारी एवं अधम पुत्र तुमने कुल का नाश किया है।'' हनुमान जंजीर तोड़कर आकाश में उड़ जाते हैं और राम को वस्तुस्थिति की जानकारी देते हैं।

इस ग्रंथ में महाकवि ने हनुमान द्वारा लंका दहन का वर्णन नहीं किया है। युद्ध के दौरान लक्ष्मण को शक्ति बाण लगने पर इसकी खबर हनुमान अयोध्या जाकर देते हैं।

पउमचरियं ग्रंथ में हनुमान के जैन धर्म में दीक्षित होने का उल्लेख किया गया है। वे अपने परिजनों और पत्नियों के साथ जिन भवन मंदिर में आते हैं। अपने परिजनों से कहते हैं ''मनुष्य जन्म में बन्धुजनों के साथ रहने के बाद अवश्य वियोग होता है। इस लोक में मरते हुए पुरुष का परित्राण वैसा न माता, न पिता और न पत्नी करते हैं जैसा धर्म करता है। जन्म-मरण के अनन्त संसार से भयभीत मैं अब दीक्षा लेता हूँ।'' इसके बाद संयम मार्ग में उत्साही हनुमान ने मुकुट और कुण्डलों के साथ आभूषण पुत्र को दे दिये। फिर मुनि धर्मरत्न के पास दीक्षा ली। पति शोक में दुखी उनकी पत्नियां लक्ष्मीमती के पास श्रमणियां हो गईं।[117]

Scanned with OKEN Scanner

सुग्रीव

आदित्यरजा और इन्द्रमाली की तीन संतानें थीं- बालि, सुग्रीव और बहन श्रीप्रभा। आदित्यरजा ने अपने बड़े पुत्र बालि को राज्य का उत्तराधिकार दिया और छोटे पुत्र सुग्रीव को युवराज बनाकर स्वयं दीक्षा ग्रहण की।

रावण दूत ने बालि के समक्ष उपस्थित होकर संदेश दिया कि रावण ने किष्किन्धि नगरी में आदित्यरजा को राज्यपद पर अधिष्ठित किया था। तुम उसके पुत्र रावण की अधीनता स्वीकार कर अपनी बहन श्रीप्रभा को उसकी शरण में भेंट करो। लेकिन बालि ने रावण के इस प्रस्ताव को अस्वीकार किया। वह रावण की शक्ति से भी परिचित था। उसने वैराग्य धारण किया और अपना राज्य सुग्रीव को सौंपकर स्वयं दीक्षित हुआ। कालान्तर में सुग्रीव ने अपनी बहन श्रीप्रभा को रावण को सौंपकर उसकी अधीनता स्वीकार की।

सुग्रीव की पत्नी थी तारा। साहसगति नामक विद्याधर भी तारा के सौंदर्य पर मुग्ध था। वह तारा से विवाह करना चाहता था। लेकिन उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिया गया। साहसगति ने रूप परिवर्तन विद्या सिद्ध की। सुग्रीव का रूप धारण कर साहसगति ने तारा का अपहरण किया और सुग्रीव के राज्य किष्किन्धि को भी छीन लिया।

राम पत्नी वियोग में भटक रहे थे। यही स्थिति सुग्रीव की भी थी। किसी सेना नायक ने सुग्रीव को सुझाव दिया कि सीताहरण में खरदूषण और जटायु मारे गये हैं। सुग्रीव ने विचार किया कि जिसने खरदूषण को मारा है, उसी की शरण में मुझे शांति मिल सकती है। राम ने सुग्रीव को आश्वासन दिया कि मैं तुम्हारी सहायता करूँगा लेकिन तुम सीता की खबर मुझे ला दो। सुग्रीव ने भी वचन दिया कि "यदि आपकी पत्नी का समाचार मैं सातवें दिन तक न ला सका तो मैं आग में प्रवेश करूँगा।"[118] राम के कहने पर सुग्रीव ने साहसगति से युद्ध किया और घायल हुआ। घायल सुग्रीव को राम ने अपने शिविर में लाकर बताया कि तुम दोनों को पहचानने में मैं भ्रमित हो रहा था इसलिए साहसगति को मार न सका। दूसरी बार सुग्रीव ने फिर साहसगति से युद्ध किया और राम ने साहसगति को मार कर सुग्रीव को उसकी पत्नी और उसका राज्य वापस दिलाया।

सुग्रीव रावण की वीरता से पूर्व परिचित था। वह रावण के सम्मुख जाने से भय खाता था। इसी कारण उसने रावण की अधीनता स्वीकार कर अपनी बहन श्रीप्रभा को उसे सौंपा था। सुग्रीव का भय दूर करने के लिए लक्ष्मण ने अपनी वीरता का प्रदर्शन करते हुए कोटिशिला पर्वत उठाया। कोटिशिला के सम्बन्ध में एक भविष्यवाणी प्रसिद्ध थी कि जो उसे उठा सकेगा, उसी से रावण की मत्यु होगी। लक्ष्मण की वीरता पर विश्वास कर सुग्रीव ने सीता की खोज के लिए अपने सेवक हनुमान को लंका भेजा।[119]

पउमचरियं के पर्व साठ में उल्लिखित है कि भुजंगपाश ने लक्ष्मण की पताका पर गरुड़ को देख लिया तथा हार मान कर भाग गया। इस रचना के अनुसार इन्द्रजित्, राम-लक्ष्मण के स्थान पर सुग्रीव-भामण्डल को भुजंगपाश में बांध लेता है।[120]

लक्ष्मण की मृत्यु के बाद सुग्रीव ने राम को सुझाव दिया कि इस शरीर का संस्कार

करें। आगे चलकर सुग्रीव ने अपने देश का स्वामी अपने पुत्र अंगद को बनाकर राम के साथ वैराग्य धारण किया और प्रव्रजित हुआ।[121]

वाल्मीकि रामायण के गौण पात्र

दशरथ

ऋग्वेद में दशरथ की चर्चा एक बार आई है। लेकिन इसका सम्बन्ध रामायण के दशरथ से होने का कोई संकेत नहीं मिलता।

दशरथ की वंशावली में हमें काफी भिन्नता देखने को मिलती हैं। पौराणिक साहित्य में इक्ष्वाकु से राम तक तिरेसठ राजाओं के नाम आते हैं लेकिन रामायण में इनकी संख्या छत्तीस हैं। इसके अलावा रामायण के छत्तीस नामों में से केवल अठारह नाम ही दोनों वंशावलियों में विद्यमान हैं। सम्भव है कि रामायण में केवल उन राजाओं के नाम उल्लिखित हों, जिनका राज्याभिषेक हुआ था।[122]

रामायण में इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न अज के पुत्र महाराज दशरथ के बाल्यकाल का कोई विशेष वर्णन नहीं मिलता। हां, यह अवश्य ज्ञात होता है कि वे शब्दवेधी बाण चलाने में कुशल थे और युवावस्था में हाथी के शिकार के धोखे में उन्होंने एक मुनिकुमार की हत्या कर दी थी।

अज के बाद अयोध्या के राजा, दशरथ हुए जिन्होंने अपनी राज्य व्यवस्था में सुधार किये। अयोध्या की लम्बाई बारह योजन थी और चौड़ाई तीन योजन। नगर के चारों ओर उद्यान लगे थे और आमोद-प्रमोद की व्यवस्था थी। पास-पड़ोस के राजाओं से दशरथ के अच्छे सम्बन्ध थे। अंग, काशी, मिथिला नरेश से उनकी काफी घनिष्ठता थी। लेकिन राम विवाह से पूर्व यह सम्बन्ध कब और किस रूप में स्थापित हुआ, इसका कोई संकेत नहीं है। जटायु ने भी राम को बताया कि वे दशरथ के पुराने मित्र हैं।

रावण के बल-पराक्रम से दशरथ पहले से ही भली भांति परिचित थे। विश्वामित्र से चर्चा करते हुए उन्होंने स्वयं स्पश्ठ शब्दों में कहा है कि मैं रावण के समक्ष युद्ध में ठहर नहीं सकता।

रामायण में कैकेयी और मंथरा के बीच बातचीत से यह जानकारी मिलती है कि वैजयन्त नरेश शम्बर ने इन्द्र के विरुद्ध युद्ध छेड़ा था और दशरथ देवताओं की ओर से युद्ध करने गये थे। कैकेयी उनकी सारथी थी। शम्बर के सैनिकों ने दशरथ को घायल किया था और कैकेयी ने उन्हें सुरक्षित स्थान में ले जाकर उनके प्राणों की रक्षा की थी। जनकपुर से लौटते समय परशुराम से भेंट हुई थी जहां दशरथ ने हाथ जोड़कर अपने पुत्रों को अभय दान की कामना की थी। रामायण में और कहीं भी ऐसी कोई घटना का वर्णन नहीं मिलता जहां युद्ध में उन्हें कभी विजय मिली हो और उन्होंने अपने पराक्रम का परिचय दिया हो।

Scanned with OKEN Scanner

रामायण में दशरथ का चरित्र एक कामुक दुर्बल राजा के रूप में देखने को मिलता है। कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी के अलावा इनकी साढ़े तीन सौ रानियों का उल्लेख मिलता है। यह उल्लेख दो स्थानों पर वर्णित है। सबसे पहले राम वनगमन के पूर्व दशरथ ने अपने मंत्री सुमन्त्र को राजमहल की अपनी स्त्रियों को बुलाने का आदेश दिया था। इसके बाद वनगमन के समय राम ने कौशल्या से विदा लेने के बाद अन्य साढ़े तीन सौ माताओं से क्षमा मांगते हुए वनगमन की अनुमति ली थी।

इक्ष्वाकुवंश के राजाओं को सत्यवादी होने की बात अक्सर सुनने को मिलती है। लेकिन दशरथ का चरित्र उस से भिन्न प्रतीत होता है। वे हर स्थल पर वचन अवश्य देते रहे। लेकिन उसकी पूर्ति के समय सदैव पश्चाताप करते रहे। कैकेयी से विवाह करने के समय भी दशरथ ने एक वचन दिया था। उस वचन की जानकारी कैकेयी, मंथरा और राम को थी। भरत जब राम को अयोध्या लौटाने के लिए पंचवटी गये थे तब राम ने भरत से कहा था कि पिताजी ने जब तुम्हारी माता जी से विवाह किया था उसी समय उन्होंने तुम्हारे मातामह से राज्य शुल्क देने की शर्त की थी। दशरथ के चरित्र को सत्यवादी बनाये रखने का सम्पूर्ण श्रेय राम और कैकेयी को ही जाता है। कैकेयी को दिये दोनों वरदान की पूर्ति के लिए अगर कैकेयी की जिद न होती और राम की पितृभक्ति न होती तब दशरथ द्वारा दिये गये वरदान का क्या हश्र होता?

सम्भवतः दशरथ के स्वभाव और उनके चरित्र से पूर्णतः अवगत थी कैकेयी। इसी कारण उसे दशरथ की सौगन्धों और प्रतिज्ञाओं पर कोई विश्वास नहीं हुआ था। इसके लिए उसने देवताओं को साक्षी बनाया था-

चन्द्रादित्यौ नभश्चैव ग्रहा रात्र्यहनी दिशः।
जगच्च पृथिवी चेयं सगन्धर्वाः सराक्षसाः॥
निशाचराणि भूतानि गृहेषु गृहदेवताः।
यानि चान्यानि भूतानि जानीयुर्भषितं तव॥[123]

अर्थात्- "चन्द्रमा, सूर्य, आकाश, ग्रह, रात, दिन, दिशा, जगत्, यह पृथ्वी, गन्धर्व, राक्षस, रात में विचरने वाले प्राणी, घरों में रहने वाले गृहदेवता तथा इनके अतिरिक्त भी जितने प्राणी हों, वे सब आपके कथन को जान लें-आपकी बातों के साक्षी बनें।"

यज्ञ क्रियाओं के प्रति दशरथ निष्ठावान रहे हैं। पुत्र की आकांक्षा के लिए उन्होंने अश्वमेध यज्ञ करना ही सर्वश्रेष्ठ उपाय समझा था और ऋषि ऋंग ने अथर्वशिरस् मंत्रों के द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ सम्पन्न कराया था। भरत के पंचवटी पहुंचने पर राम ने दशरथ का कुशलक्षेम पूछा था। भरत ने दशरथ के यज्ञकर्ता होने की पुष्टि की है और कहा है कि यज्ञों के कर्त्ता महाराज दशरथ का स्वर्गवास हो चुका है। राम को युवराज बनाने से पूर्व दशरथ ने अपने द्वारा सैकड़ों यज्ञ करने का संकेत दिया है।

तत्र पुष्येऽभिषिञ्चस्व मनस्त्वरयतीव माम्।
श्वस्त्वाहमभिषेक्ष्यामि यौवराज्ये परतप॥[124]

अर्थात्- "इसलिये उस पुष्यनक्षत्र में ही तुम अपना अभिषेक करा लो। शत्रुओं को संताप देने वाले वीर! मेरा मन इस कार्य में बहुत शीघ्रता करने को कहता है। इस कारण कल अवश्य ही मैं तुम्हारा युवराजपद पर अभिषेक कर दूंगा।"

यज्ञ कर्म के अतिरिक्त अन्य शास्त्र मर्यादाओं का पालन करने में दशरथ का विशेष ध्यान रहता था। पुत्रों के जन्म के पश्चात् ग्यारह दिन बीत जाने पर बारहवें दिन ही उन्होंने नामकरण का संस्कार किया था।[125] मनु की व्यवस्था के अनुसार नामकरण संस्कार दसवें या बारहवें दिन ही शुभ माना गया है।

युवराज पद पर अभिषेक से पूर्व उन्होंने राम को कुश की शैय्या पर सोने का तथा सीता के साथ संयमपूर्वक उपवास का निर्देश दिया था और वशिष्ठ से भी अनुरोध किया था कि राम को सीता सहित उपवास व्रत का पालन कराया जाये।[126]

दशरथ को राजधर्म के पालन की कोई चिन्ता नहीं थी। अकारण ही किसी भी अवध्य को मार डालने अथवा किसी के धन का अपहरण करने में संकोच नहीं करते थे। कोप भवन में कैकेयी को मनाने के समय दशरथ ने स्वयं कहा है- 'अपनी प्रसन्नता के लिए तुम ही बताओ आज किस अवध्य का वध कर दिया जाये अथवा किस प्राणदंड पाने योग्य अपराधी को मुक्त कर दिया जाये? किस दरिद्र को धनवान कर दिया जाये और किस धनवान को कंगाल बना दिया जाये।'

मा रौत्सीर्मा च कार्षीस्त्वं देवि सम्परिशोषणम्॥ 32 ॥
अवध्यो वध्यतां को वा वध्यः को वा विमुच्यताम्।
दरिद्रः को भवेदाढ्यो द्रव्यवान् वाप्यकिंचनः॥33 ॥(पृ. 211)

दशरथ कैकेयी से सदा भयभीत रहे हैं। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि वे कैकेयी की आज्ञा के अधीन थे। उसके किसी भी अभिप्राय को भंग करने का उनमें साहस नहीं था-(2/10/34)। सुमन्त्र के लौटने पर दशरथ ने राम के सम्बन्ध में पूछने का साहस नहीं किया था। जब कौशल्या ने दशरथ को बताया कि जिस कैकेयी के डर से आप राम का समाचार पूछ नहीं पा रहे हैं- वह यहां उपस्थित नहीं है। तब दशरथ ने साहस कर सुमन्त्र से बातें कीं-

देव यस्या भयाद् रामं नानुपृच्छसि सारथिम्।
नेह तिष्ठति कैकेयी विश्रब्धं प्रतिभाश्यताम्॥[127]

अर्थात्- "देव! आप जिसके भय से सुमन्त्र जी से श्रीराम का समाचार नहीं पूछ रहे हैं, वह कैकेयी यहां मौजूद नहीं है, अतः निर्भय होकर बात कीजिये।"

कौशल्या को पति सुख कभी प्राप्त न हो सका। जब राम ने कौशल्या को, दशरथ और कैकेयी द्वारा दिये गये वन जाने की सूचना दी थी तब दशरथ को कोसते हुए वह रो पड़ी थी। उसने कहा था- पति के प्रभुत्वकाल में जो सुख प्राप्त होना चाहिए, वह मुझे देखने को नहीं मिला और ज्येष्ठ होकर भी मुझे सौतों की अप्रिय बातें ही सुनने को मिलती रहेंगी।[128]

इस तरह रामायण में वर्णित दशरथ के चरित्र के सम्बन्ध में कहा जा सकता है

Scanned with OKEN Scanner

कि दशरथ के मन में किसी आचार-व्यवस्था के प्रति कोई निष्ठा नहीं थी। उनके सभी निर्णय तथा कार्य राजद्वेष एवं इन्द्रिय विकारों से प्रभावित थे।

कैकेयी

वाल्मीकि रामायण में राजा दशरथ की अनेक रानियों का उल्लेख किया गया है। लेकिन उनमें तीन रानियों का नाम सर्वोपरि है-कौशल्या, कैकेयी, और सुमित्रा। इन तीनों रानियों में कैकेयी का चरित्र काफी महत्त्वपूर्ण बन गया है। अगर यह कहा जाये कि राम और दशरथ के चरित्र को ऊपर उठाने में कैकेयी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है तब यह अतिशयोक्ति नहीं होगी। दशरथ, वशिष्ठ, सुमन्त्र आदि ने कैकेयी को पापिन, कुल-कलंकिनी, क्रूर हृदया, कुलघातिनी, पति हत्यारी, दुराचारिणी, निर्दया, पाप निश्चया, दुष्टा, अनार्या आदि कह कर अनगिनत गालियां दी हैं।[129]

कैकेयी एक कुशल सारथी रही है, उसे युद्ध विद्या का ज्ञान था। सत्य के प्रति सच्ची निष्ठा रही है। राम के प्रति स्नेह रहा है, वात्सल्य रहा है। राम के सद्गुणों की वह सदैव प्रशंसक रही है। वह राजमहिषी रही है। शासन करने की उसमें क्षमता रही है। वह निर्भीक रही है। इन सारी विशेषताओं के रहने के बाद भी कैकेयी गालियों से संबोधित होती रही है। हम संक्षेप में उन उद्धरणों को प्रस्तुत कर रहे हैं।

कैकेयी को नृपति की सुता कहा गया है। अनेक स्थलों पर उसे कैकयराज-पुत्री कहा गया है। कैकेयी से विवाह करने के समय राजा दशरथ ने उसकी संतान को राज्याधिकार देने का अनुबन्ध स्वीकार किया था। इस अनुबन्ध को मानने के लिए दशरथ की कोई विवशता रही हो-यह संकेत नहीं मिलता। इस अनुबन्ध की जानकारी मंथरा और राम को भी थी।

कैकेयी पूरी महारानी के रूप में मिलती है। महल में कौशल्या और सुमित्रा के मायके की कोई दासी नहीं है लेकिन कैकेयी की दासी मंथरा रामकथा की एक महत्वपूर्ण पात्र रही है। राजमहलों में कैकेयी का प्रभाव और प्रभुत्व रहा है। दशरथ, कैकेयी से सदैव भयभीत रहा है। सुमन्त्र जैसा महामंत्री भी डर के कारण कैकेयी के सामने कुछ बोलने का साहस नहीं करता।

सौंदर्य के मामले में भी कैकेयी अन्य रानियों में श्रेष्ठ थी। उसके नेत्र कमल दल के समान सुन्दर थे। दशरथ ने उसके सौंदर्य का गुणगान किया है। विवाह के कुछ दिन बाद ही दशरथ को उसने अपने वश में कर लिया था। दशरथ ने स्वयं स्वीकार किया है कि मैं और मेरे अनुचर तुम्हारी आज्ञा के अधीन हैं-'अहं च हि मदीयाश्च सर्वे तव वशानुगाः।'[130] अर्थात्-'मैं और मेरे सभी सेवक तुम्हारी आज्ञा के अधीन हैं। इन सारी बातों के बाद भी कैकेयी के आचरण और व्यवहार में कहीं भी अभिमान की भावना का प्रतिबिम्ब नहीं मिलता।

राम के प्रति कैकेयी का स्नेह-वात्सल्य बना रहा है। वह भरत से भी अधिक राम को स्नेह देती है। राम के राज्याभिषेक की सूचना मंथरा द्वारा प्राप्त कर कैकेयी राम के

सद्गुणों का वर्णन करती हुई प्रसन्न होती है और अपने को भाग्यशाली मानती है। राम के स्नेह-वात्सल्य में कैकेयी दशरथ के दोनों वरदान और विवाह के समय दशरथ द्वारा किये गये अनुबंध को भी विस्मृत कर चुकी है। यह तो संयोग रहा कि मंथरा ने बार-बार उन वरदानों का और अनुबंध का स्मरण दिलाकर कैकेयी को कोप भवन में जाने को मजबूर किया।

कैकेयी पर जितने भी दोषारोपण लगाये गये हैं उनमें कोई भी दोष सत्यता की कसौटी पर खरे नहीं उतर पाता। एक स्थल पर उसने दशरथ से अवश्य कहा है कि कौशल्या को राजमाता के रूप में देखना वह सहन नहीं कर सकती। इसके अलावा और कोई उदाहरण नहीं मिलता जिससे यह प्रमाणित हो कि वह क्रोधी, लोभी, दुराग्रही, दुराचारिणी, पापिनी आदि रही है।

वीरांगना होने के कारण ही कैकेयी देवासुर संग्राम में दशरथ की सारथी रही है और उसने दशरथ की प्राण रक्षा की है। इस संदर्भ से कैकेयी के साहस, युद्ध कौशल, शौर्य आदि का परिचय मिलता है।

कैकेयी राजकुल की कन्या होने के कारण राज्य के नियमों से पूर्णतया परिचित थी। उसे यह ज्ञात था कि नियमानुसार ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का उत्तराधिकारी होता है। मंथरा को वर और अनुबंध का स्मरण दिलाने के बाद भी कैकेयी कहती है युवराज पद पर अभिषिक्त होने के अधिकारी राम ही हैं-

धर्मज्ञो गुणवान् दान्तः कृतज्ञः सत्यवाक्छुचिः।
रामो राजसुतो ज्येष्ठो यौवराज्यमतोऽर्हति।।[131]

अर्थात् -'कुब्जे! श्रीराम धर्म के ज्ञाता, गुणवान्, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ, सत्यवादी और पवित्र होने के साथ ही महाराज के ज्येष्ठ पुत्र हैं, अतः युवराज होने के योग्य वे ही हैं।'

निर्भीकता और स्पष्टवादिता कैकेयी के स्वभाव की विषेशता थी। मंथरा और भरत से राम के गुणों की प्रशंसा उसने खुलकर की। दशरथ पर भी उसका विश्वास नहीं था। इसी कारण देवताओं को साक्षी बनाकर अपने हृदय की बात स्पष्ट शब्दों में उसने दशरथ के सामने रखी। दशरथ के लाख हाथ-पैर जोड़ने के बाद भी कैकेयी अपनी मांगों पर दृढ़-संकल्प रही। कदम आगे बढ़ा कर पीछे लौटना उसका स्वभाव नहीं है।

कैकेयी में सहनशक्ति की अपूर्व क्षमता थी। राम वनगमन से पूर्व लक्ष्मण द्वारा क्रोधावेष में दशरथ को बन्दी बनाने और उनके समर्थकों की हत्या करने की बात कही गई है। लेकिन कैकेयी ने लक्ष्मण की बातों को सुनकर भी कोई प्रतिकूल प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। वह शांत चित्त हो सुनती रही। सत्य के प्रति कैकेयी निष्ठावान रही है। वह स्वयं कहती है-

सत्यमेकपदं ब्रह्म सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः।
सत्यमेवाक्षया वेदाः सत्येनावाप्यते परम्।।[132]

अर्थात्-'सत्य ही प्रणवरूप शब्दब्रह्म है, सत्य में ही धर्म प्रतिष्ठित है, सत्य ही अविनाशी वेद है और सत्य से ही परब्रह्म की प्राप्ति होती है।'

Scanned with OKEN Scanner

अगर यह कहा जाये कि दशरथ को सत्यवादी प्रमाणित करने में कैकेयी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है तब कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। कैकेयी, दशरथ को सत्यपालन करते हुए धर्म पालन के लिए प्रेरित करती है। महाराज शैव्य, अलर्क और समुद्र का उदाहरण देकर सत्य का पालन करने को प्रेरित करती है।[133]

राम वन-गमन के बाद अयोध्या की राजसत्ता का पूरा भार कैकेयी ने अपने हाथों में ले लिया था। दशरथ ने इसका संकेत मृत्यु से पूर्व ही किया था। राम वनगमन के पश्चात् अयोध्या में संक्रमण काल आ गया था। रामायण में वर्णन आया है कि कैकेयी की नयी राज्य व्यवस्था और राम वनगमन के कारण, बाजार बन्द हो गये थे, सड़कों की चहल पहल समाप्त थी, व्यापारियों की दूकानें बंद थीं, खेलकूद बंद थे, यज्ञ बन्द हो गये थे। अयोध्यावासी अपने को अनाथ महसूस कर रहे थे। पूरे राज्य में कर्फ्यू सा दृश्य था।

कैकेयी धर्म और आचार की सभी व्यवस्थाओं के प्रति पूर्णतया निरपेक्ष रही है। सत्यनिष्ठ रही है। आडम्बर, मिथ्याचरण अथवा छल-प्रपंच के द्वारा यश, प्रतिष्ठा और सुख प्राप्त करना कैकेयी को कभी प्रिय नहीं था। दशरथ को सत्यनिष्ठ बनाये रखने के लिए वह लगातार प्रयासरत रही है ताकि इक्ष्वाकुवंश पर सत्य से विचलित होने का कलंक न लगे।

कैकेयी का चरित्र इतना गम्भीर और द्वन्द्वात्मक है कि उसकी गुत्थियों को सुलझाना सरल नहीं। राम के वन गमन की एक घटना से उसकी चारित्रिक विशेषताओं से मुंह फेर लेना उचित नहीं है। कैकेयी के गम्भीर और निर्दोष व्यक्तित्व पर चिन्तन करने की आवश्यकता है और यह एक अतिरिक्त शोध की अपेक्षा रखता है।

हनुमान

रामकथा के वानर, ऋक्ष और राक्षस विन्ध्य प्रदेश तथा मध्य भारत की आदिवासी अनार्य प्रजातियाँ थीं। रामायण में इन आदिवासियों को वास्तव में वानर, ऋक्ष आदि कहा गया है। आदि काव्य में अनेक स्थलों से पता चलता है कि प्रारम्भ में ये सब मनुष्य ही माने जाते थे।[134]

रामायण के वानर मनुष्यों की तरह बुद्धि सम्पन्न हैं, मानवीय भाषा बोलते हैं, कपड़े पहनते हैं, घरों में निवास करते हैं।, विवाह संस्कार को मान्यता देते हैं और राजा के शासन के अधीन रहते हैं। इससे स्पष्ट है कि कवि की दृष्टि में वे निरे वानर नहीं हैं। उनकी अपनी संस्कृति और सामाजिक व्यवस्था है।

डा0 याकोबी अनुमान करते हैं कि हनुमान कृषि सम्बन्धी कोई देवता थे, संभवतः वर्षाकाल का अधिष्ठाता। वह तो वायु का पुत्र है, बादलों के समान कामरूपी है और आकाश में उड़ता है। इसी से उनका नाम 'मारुति' भी है। ऋग्वेद (6,17,2) में वर्णित है-'शिप्रेहनू नासिके वा'। अतः इससे इन्द्र और हनुमान इन दोनों वर्षा देवताओं का सम्बन्ध निर्दिष्ट होता है। डा0 याकोबी यह भी कहते हैं कि हनुमान की लोकप्रियता का कारण सिर्फ रामायण में उनका चरित्र-चित्रण ही नहीं रहा है, बल्कि प्राचीनकाल में यक्ष पूजा

के साथ हनुमान का सम्बन्ध स्थापित किया गया है।[135]

हनुमान की गणना देवताओं में की जाती है। ऐसा अनुममान किया जाता है कि हनुमान सम्भवतः आठवीं-नौवीं शताब्दी में देवत्व की श्रेणी में आ गये हों। हनुमान केसरी वानर के क्षेत्रज और वायु के औरस पुत्र थे। रामायण के अनुसार केसरी सुमेरु पर्वत (जनपद) के राजा थे। वायु और अंजना से ही हनुमान का जन्म हुआ था।[136]

सूर्य को फल समझकर खाने के लिए जाते समय इन्द्र के प्रहार से हनुमान की ठोढ़ी का बांया भाग टूट गया था। ब्रह्मा की कृपा से जब हनुमान चेतना में आये तब इन्द्र, वरुण, अग्नि, कुबेर आदि देवताओं ने उन्हें कई वरदान दिये। सूर्य ने वचन दिया कि जब हनुमान में शास्त्राध्ययन की शक्ति आ जायेगी तब वे उन्हें शास्त्रों का ज्ञान प्रदान करेंगे। हनुमान के बालपन के उपद्रव से सभी ऋषिगण परेशान थे। लेकिन ब्रह्मा ने उन्हें अवध्य का वरदान दिया था। बालपन के उपद्रव से परेशान भृगु और अंगिरा के वंश में उत्पन्न महर्षियों ने इन्हें बल पराक्रम भूले रहने का शाप भी दिया था। इसके बाद ही वे अनुशासित बालक रहे- ।[137]

रामायण के पात्रों में हनुमान ही एक ऐसे पात्र हैं जिन्होंने शास्त्र, भाषा, व्याकरण एवं अन्य विषयों का गम्भीर अध्ययन किया था। सूर्य ने उन्हें शास्त्र की शिक्षा दी। सूर्य की ओर मुख कर सुबह से शाम तक हनुमान जी उनसे व्याकरण का अध्ययन करते रहे। पूरी लगन से सूत्र, वृत्ति, वार्तिक, महार्थ और संग्रह का अध्ययन किया था। छन्द-शास्त्र और दूसरे शास्त्रों के ज्ञान में उनकी बराबरी करने वाला कोई दूसरा नहीं था। नव व्याकरण पर ब्रह्मा के समान इनका पूरा अधिकार था और विद्या, ज्ञान तथा अनुष्ठानों के विधि विधान में वे देवगुरु वृहस्पति की बराबरी करते थे ।[138]

ऋष्यमूक पर्वत पर राम से मिलने पर हनुमान जी की विद्वता को देख राम भी हतप्रभ हो गये थे। उन्होंने स्पश्ट रूप से कहा है कि हनुमान जी समूचे व्याकरण का कई बार स्वाध्याय किया होगा। तभी तो उनके मुंह से कोई अशुद्धि नहीं निकली। बातों के समय उनके नेत्र, मुख, ललाट, भौंह तथा अन्य अंगों से भी कोई दोष प्रकट नहीं हुआ। स्वर भी मध्यम रहा। वाणी मधुर है-राम ने हनुमान की प्रशंसा की है-[139] ।

शास्त्रों के ज्ञाता रहते हुए हनुमान जी देश-काल के अनुरूप कर्तव्य का भी उन्हें विशेष ज्ञान था। बातचीत की कला के मर्मज्ञ होने के कारण ही हनुमान जी ने सुग्रीव को कर्त्तव्य का ध्यान कराया।[140]

हनुमान जी भूगोल और वन विज्ञान के विशेषज्ञ रहे हैं। अन्य वीर वानरों से श्रेष्ठ सुग्रीव ने हनुमान को ही माना और सीता की खोज का उन्हें दायित्व सौंपा। सुग्रीव कहते हैं-असुर, गन्धर्व, नाग, मनुष्य, देवता, समुद्र और पर्वतों सहित सम्पूर्ण लोक का तुम्हें पूरा ज्ञान है। तुम नीतिशास्त्र के पण्डित हो। एकमात्र तुम्हीं में बल, बुद्धि, पराक्रम, देशकाल का अनुसरण तथा नीतिपूर्ण व्यवहार एक साथ देखे जाते हैं।

हनुमान जी के वन-विशेषज्ञ का प्रमाण हमें तब मालूम होता है जब सीता की खोज विन्ध्यगिरि और घोर जंगलों में करते रहने के बाद वानरों को प्यास लगी थी। सभी

Scanned with OKEN Scanner

वानरों का हाल बुरा था। लेकिन हनुमान जी ने पेड़-पौधों और पक्षियों की चहचहाहट के सहारे पानी, भोजन और स्वयंप्रभा का आश्रम खोज लिया था-

अस्माच्चापि बिलाद्धंसाः क्रौञ्चाश्च सह सारसैः॥
जलार्द्राश्चक्रवाकाश्च निष्पतन्ति स्म सर्वश।
नूनं सलिलवानत्र कूपो वा यदि वा ह्रदः॥
तथा चेमे बिलद्वारे स्निग्धास्तिष्ठन्ति पादपाः।[141]

अर्थात्-'सामने की इस गुफा से हंस, क्रौंच, सारस और जल से भींगे हुए चकवे सब ओर निकल रहे हैं। अतः निश्चय ही इसमें पानी का कुआं अथवा और कोई जलाशय होना चाहिए। तभी इस गुफा के द्वारवर्ती वृक्ष हरे भरे हैं।'

रामायण काल में वैदिक संस्कृत के अलावा लौकिक संस्कृत का भी प्रचलन हो चुका था जिसे 'मानुषी संस्कृत' कहा जाता था। रावण परिवार और लंका के नर-नारी मानुशी संस्कृत का ही प्रयोग करते थे। हनुमान जी का दोनों भाषाओं पर पूर्ण अधिकार था।[142] अशोक वाटिका में सीता से बात करने से पूर्व वे चिन्तित हुए कि उनसे किस भाषा में बात की जाये? अन्य जनपदीय भाषाओं का भी उन्हें ज्ञान था। इन भाषाओं में 'अर्थवत् वाक्य' अर्थात् जनपदीय भाषा में ही उन्होंने सीता से बातें कीं।

अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत्।
मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता॥[143]

अर्थात्- 'ऐसी दशा में अवश्य ही मुझे उस सार्थक भाषा का प्रयोग करना चाहिए, जिसे अयोध्या के आस-पास की साधारण जनता बोलती है, अन्यथा इन सती-साध्वी सीता को मैं उचित आश्वासन नहीं दे सकता।'

अशोक वाटिका में सीता का पता लगा लेने के बाद हनुमान जी वापस आ सकते थे। लेकिन उन्होंने रावण पक्ष की शक्ति, बल-बुद्धि आदि का पता लगा लेना भी श्रेयस्कर समझा (5/41/2-3)। अक्षयकुमार के युद्ध कौशल पर वे मुग्ध हुए थे। अक्षयकुमार के मारने के संबन्ध में हनुमान जी को 'कर्म विशेष तत्त्वविद्' कहा गया है (5/47/25)।

दूत के रूप में भी हनुमान जी मात्र दूत ही नहीं बने रहे बल्कि वे लक्ष्य की प्राप्ति तक चिन्तन मनन करते थे। राम-लक्ष्मण के आगमन पर सुग्रीव ने हनुमान जी को दूत बनाकर भेजा था कि वे बालि के भेजे गये शत्रु तो नहीं। लेकिन हनुमान जी ने भिक्षु रूप धारण कर राम लक्ष्मण का परिचय प्राप्त कर सुग्रीव से उनकी मैत्री कराई ताकि सुग्रीव के लक्ष्य की प्राप्ति हो सके और दूसरी तरफ राम के लक्ष्य की भी पूर्ति हो सके।

सुग्रीव और जाम्बवान् भी हनुमान जी के पराक्रम की प्रशंसा करते थकते न थे। हनुमान जी काफी सूझ-बूझ के बाद अपने पराक्रम का परिचय देते थे। अशोक वाटिका को जलाने और तहस नहस करने के पूर्व उन्होंने विचार किया था कि यहां के शूरवीरों में कितना साहस है और उनमें कितनी शक्ति है? राम को इसकी उचित सूचना देने के पश्चात् ही लंका पर विजय पाई जा सकती है।

उत्साह और धैर्य की विशेषता हनुमान जी में सदा वर्तमान रही। लंका में सीता के नहीं मिलने पर भी वे उनकी खोज में प्रयत्नशील रहे। इन्द्रजित् द्वारा मायावी सीता का वध देख अन्य वानर भागने लगे। लेकिन हनुमान ने सभी का हौसला बढ़ाया और कहा मैं आगे जाता हूँ तुमलोग मेरे पीछे आओ। वे कहते हैं उत्तम कुल में उत्पन्न शूरवीरों के लिए युद्ध में पीठ दिखाना सर्वथा अनुचित है-

पृष्ठतोऽनुव्रजध्वं मामग्रतो यान्तमाहवे।
शूरैरभिजनोपेतैरयुक्तं हि निवर्तितुम्॥[144]

अर्थात्- 'मैं युद्ध में आगे-आगे चलता हूँ। तुम सब लोग मेरे पीछे आ जाओ। उत्तम कुल में उत्पन्न शूरवीरों के लिये युद्ध में पीठ दिखाना सर्वथा अनुचित है।'

शत्रु की बढ़ती शक्ति को देख हनुमान जी उसकी उपेक्षा करना नासमझी मानते थे। वे उसकी शक्ति की प्रशंसा भी करते थे। लेकिन जब उसकी शक्ति चरम पर पहुंचने को होती तब उसे दबाना भी वे जानते थे। अक्षयकुमार के वध में यही दृश्य देखने को मिलता है।

हनुमान जी कर्म परिणाम के सिद्धान्त को स्वीकार करते थे। बालि वध से दुखी तारा को समझाते हुए उन्होंने कहा है कि प्रत्येक प्राणी अपने शुभ और अशुभ कर्म फलों को ही भोगता है।[145] वे शरीर को अनित्य और प्राणी का मरणधर्मी होना ही स्वीकार करते हैं। इसीलिए वे व्यक्ति को जीवन में न्याय सिद्धान्तों के अनुसार ही आचरण करने की बात कहते हैं। वे केवल 'काल' को ही सर्वोच्च शक्ति मानते हैं। व्यक्ति के सुख-दुख कालजनित संयोग के परिणाम हैं।

कर्म काण्ड के स्थान पर हनुमान आचार की पवित्रता पर जोर देते हैं। आचार की पवित्रता व्यक्ति की इस सीमा तक रक्षा करती है कि अग्नि में भी उसको जलाने की सामर्थ्य नहीं होती। लंका में इस अग्नि में सीता भी न जल जायें। लेकिन फिर उनमें दृढ़ता उत्पन्न हुई और कहा अखंड पातिव्रत और आचार पालन में सभी कष्टों को सहने वाली सीता में इतनी शक्ति है कि वे स्वयं ही अग्नि को जला सकती हैं और अग्नि में उनको जलाने की सामर्थ्य हो ही नहीं सकती।[146]

क्रोध को हनुमान जी सबसे बड़ा विकार मानते थे। क्रोधावेश में ही मनुष्य अनेक पापकर्म कर बैठता है। क्रोधी मनुष्य की दृष्टि में कोई भी काम अकरणीय और कोई भी बात अकथ्य नहीं रह जाती। क्रोधावेश में लंका में आग लगाने की अपनी क्रिया की भी वे भर्त्सना करते हैं। समस्त लोक के विनाश का दोशी वे अपने को मानते हैं-

धिगस्तु मां सुदुर्बुद्धिं निर्लज्जं पापकृत्तमम्।
अचिन्तयित्वा तां सीतामग्निदं स्वामिघातकम्॥[147]

अर्थात्- 'मेरी बुद्धि बड़ी खोटी है, मैं निर्लज्ज और महान् पापाचारी हूँ। मैंने सीता की रक्षा का कोई विचार न करके लंका में आग लगा दी और इस तरह अपने स्वामी की ही हत्या कर डाली। मुझे धिक्कार है।'

नारी के प्रति हनुमान के विचार सदा आदरणीय रहे हैं। नारी को अबला मानने के

Scanned with OKEN Scanner

कारण ही उसके प्रति क्रोध करना वे उचित नहीं मानते। लंका प्रवेश के समय अधिष्ठात्री देवी 'लंका' द्वारा उन्हें रोकने और थप्पड़ मारने पर हनुमान जी ने उनपर क्रोध नहीं किया। सीता को डराने-धमकाने वाली राक्षसियों को देख हनुमान जी ने किसी प्रकार रोष प्रकट नहीं किया, उन्हें जीवित छोड़ दिया। नारी बल के प्रति वे इतने आस्थावान् थे कि उनके अनुसार सती साध्वी नारियां ही अपनी तपस्या के बल पर लोकों को धारण कर सकती हैं और यदि वे क्रुद्ध हो जायें तो लोक को नष्ट भी कर सकती हैं। सीता के बल के सम्बन्ध में भी वे कहते हैं कि क्रोधावेश में सीता भी ऐसा कर सकती हैं।[148]

रामायण के हनुमान जी के समस्त कार्य और निर्णय, उनकी बुद्धि और विज्ञान पर ही आधारित रहे हैं। प्रत्येक प्रसंग उन्हें बुद्धिवादी और विज्ञानवादी ही सिद्ध करता है। यदि उन्होंने कभी धर्म की चर्चा की है तब उसका कारण समाज की आचार-व्यवस्था रही है। देश काल के अनुरूप बुद्धि और विवेक के अनुसार उन्हें जो भी तर्क संगत प्रतीत हुआ, उसे पूरी शक्ति लगाकर पूर्ण किया।

सुग्रीव

वाल्मीकि रामायण में सुग्रीव का चरित्र हमने गौण पात्रों की श्रेणी में रखा है। रामकथा के अन्तर्गत जब रावण द्वारा सीता हरण का प्रसंग आता है और राम सीता के वियोग में पशु-पक्षियों से सीता का समाचार पूछते हुए विचलित होते हैं तब बालि-सुग्रीव का प्रसंग दिया गया है। सुग्रीव अपने भाई बालि द्वारा निष्कासित होता है और वह आत्मरक्षा के लिए हिमालय, मेरु, विन्ध्य पर्वत आदि होते हुए ऋष्यमूक पर्वत की मलय चोटी पर आश्रय लेता है। राम-रावण और बालि-सुग्रीव की कथा अलग होते हुए भी महाकवि ने अपनी लेखनी के माध्यम से हनुमान के द्वारा राम और सुग्रीव की मैत्री कराई है। फिर कथा नये ढंग से आगे बढ़ती है।

किश्किन्धा के अधिपति ऋक्षरजा की पत्नी के गर्भ से इन्द्र और सूर्य के संयोग से क्रमशः बालि और सुग्रीव का जन्म हुआ था। इस ग्रंथ में सुग्रीव के बाल्यावस्था की कोई चर्चा नहीं है। सूर्यपुत्र होने के कारण ही सुग्रीव को सूर्य के समान प्रभावान् कहा गया है।[149]

रामायण में सुग्रीव का चरित्र एक कामी, विलासी और राज्यलोभी के रूप में पाठकों के सामने उभर कर आया है। रूमा के साथ विवाह होने के बाद भी बालि की पत्नी तारा पर सुग्रीव का ध्यान केंद्रित रहा है और बालि की हत्या के बाद उसने तारा को साथ रखा।

सुग्रीव की राज्यलिप्सा की झलक हमें उस समय ही मिलती है जब बालि और मायावी राक्षस के बीच गुफा में एक वर्ष तक युद्ध होता है। फेनयुक्त रक्त की धारा गुफा से निकलते देख सुग्रीव के होश उड़ गये। उसने अपने भाई के हत्यारे को बदला लेने के उद्देश्य से ललकारा भी नहीं। गुफा के द्वार पर एक बड़ा चट्टान रख सुग्रीव कायर सदृश्य किष्किन्धा लौट आया।

कुल परम्परा के अनुसार बालि के बाद उसके पुत्र अंगद को राजा होना चाहिए था। लेकिन प्रजा के बीच अलोकप्रिय रहते हुए भी सुग्रीव ने स्वेच्छा से राज्य ग्रहण कर लिया।

बालि के अधीन किष्किन्धा राज्य रहने पर भी सुग्रीव का उस राज्य पर कोई अधिकार नहीं था। पूरी रामायण में इसका कोई संकेत नहीं मिलता कि सुग्रीव की पत्नी रूमा के प्रति बालि का कोई आकर्षण था अथवा उसके प्रति बालि ने कोई अमर्यादित व्यवहार किया है। राम से भेंट होने पर सुग्रीव ने स्वयं प्रचारित किया है कि बिना किसी अपराध के बालि ने उसे राज्य से निष्कासित कर दंडित किया है और रूमा को रख लिया है। सुग्रीव के इस आचरण के लिए कबन्ध ने उसे अपराधी मानते हुए 'कृत किल्विष' शब्द का प्रयोग किया है।[150]

आत्मरक्षा के लिए सुग्रीव हिमालय, मेरु, विन्ध्य पर्वत, समुद्र आदि को छान डाला था जिससे उसे पृथ्वी के भूगोल का चाक्षुष ज्ञान हो गया था। सीता की खोज में राम के आगमन पर सुग्रीव ने वानरों को विभिन्न दिशाओं का परिचय देते हुए सीता को ढूंढने का संकेत दिया। यह सुनकर राम को भी आश्चर्य हुआ था सुग्रीव के समस्त भूमण्डल की जानकारी देख कर।

सुग्रीव किष्किन्धा राज्य का अधिपति होने के बाद भी सदैव भयभीत बना रहता था। डरपोक होने का संकेत तो हमें पूर्व में भी प्राप्त हुआ जब मायावी राक्षस और बालि के बीच युद्ध हुआ और गुफा से निकलते रक्त की धार देख सुग्रीव अपनी जान बचाने के लिए भाग खड़ा हुआ था। ऋष्यमूक पर्वत पर राम लक्ष्मण के आगमन पर वह भयभीत हुआ कि संभव हो वे बालि के भेजे मेरे शत्रु हों। राज्य प्राप्ति के बाद सीता की खोज की शर्त भूलने पर और लक्ष्मण के आने पर सुग्रीव स्वयं उनसे मिलने की हिम्मत नहीं जुटा पाया। उसने उनसे मिलने के लिए तारा को भेजा। इन घटनाओं से यह जानकारी मिलती है कि किसी भी व्यक्ति से मिलने के पूर्व सुग्रीव उसकी भली भांति परीक्षण कर लेता था और सतर्कतापूर्वक उससे भेंट करता था। वह सामान्यतः किसी भी व्यक्ति पर विश्वास करने के लिए तैयार नहीं था।

सुग्रीव क्रोधी स्वभाव का था। मायावी राक्षस की हत्या कर लौटने पर बालि ने सुग्रीव के लिए 'सुदारुणः', जैसे शब्दों का प्रयोग किया है। क्रोध के वश में सुग्रीव उचित-अनुचित का विवेक भी खो देता था। बालि वध के पश्चात् विलाप करते हुए उसने स्वयं राम से कहा था कि बालि ने मेरा बहुत तिरस्कार किया था इसलिए क्रोध और अमर्श के कारण मैंने उसके वध के लिए अनुमति दी थी।

क्रोधादमर्षदतिविप्रधर्षाद्
भ्रातुर्वधो मेऽनुमतः पुरस्तात्।
हते त्विदानीं हरियूथपेऽस्मिन्
सुतीक्ष्णमिक्ष्वाकुवर प्रतप्स्ये।।[151]

अर्थात्- "इक्ष्वाकुकुल के गौरव श्रीरघुनाथ जी! भाई ने मेरा बहुत अधिक

Scanned with OKEN Scanner

तिरस्कार किया था, इसलिये क्रोध और अमर्श के कारण पहले मैंने उसके वध के लिये अनुमति दे दी थी, परन्तु अब वानर-यूथपति बालि के मारे जाने पर मुझे बड़ा संताप हो रहा है। संभवतः जीवन भर यह संताप बना ही रहेगा।''

इसके अलावा सुग्रीव के क्रोधी स्वभाव की जानकारी सीता की खोज में असफल वानरों को मरवा डालने की पूर्व घोषणा से भी मिलती है। उसने नल को निर्देश दिया कि समस्त यूथपतियों को वानर सेना सहित अविलम्ब किष्किन्धा में पहुंचने का आदेश दिया जाये। पन्द्रह दिनों बाद पहुंचने वाले वानर को प्राण दण्ड दिया जायेगा।[152] दक्षिण दिशा में सीता की खोज करते हुए असफल वानरों को अंगद ने कहा था कि सुग्रीव क्रोधी राजा है, उसका दंड भी बड़ा कठोर होता है। इसलिए उससे और राम से आप सबको डरते रहना चाहिए-(4/49/9)। क्रोध के सम्बन्ध में सुग्रीव स्वयं स्वीकार करता था कि यह क्षत्रियों में एक आवश्यक गुण होना चाहिए।

सैद्धान्तिक रूप से सुग्रीव, मैत्री धर्म के निर्वाह पर अधिक बल देता था। राम से मैत्री होने के बाद उसने बार-बार मित्रों के कर्त्तव्य की चर्चा की है। मैत्री धर्म के बारे में सुग्रीव यही मानता था कि उच्छे स्वभाव वाले मित्र अपने घर के सोने-चांदी अथवा आभूषणों को अपने मित्रों के लिए अविभक्त ही मानते हैं। सुग्रीव के मैत्री भाव की प्रशंसा करते हुए राम ने कहा था कि एक स्नेही और हितैषी मित्र को जो कुछ करना चाहिए तुमने वही किया है। तुम्हारा कार्य सर्वथा उचित और योग्य है।

कर्तव्यं यद् वयस्येन स्निग्धेन च हितेन च।
अनुरूपं च युक्तं च कृतं सुग्रीव तत् त्वया।।[153]

अर्थात्-''सुग्रीव! एक स्नेही और हितैषी मित्र को जो कुछ करना चाहिये, वही तुमने किया है। तुम्हारा कार्य सर्वथा उचित और तुम्हारे योग्य है।''

व्यावहारिक रूप में सुग्रीव इनके निर्वाह के प्रति अधिक निष्ठावान और सतर्क नहीं दीखता। राम, सुग्रीव की सहायता पाने के लिए शरत् काल तक प्रतीक्षारत रहे लेकिन सुग्रीव रूमा और अन्य सुन्दरियों के साथ विलास क्रीड़ाओं में सारी शर्तें विस्मृत किए रहा। हनुमान अगर उसे मैत्री की शर्त का स्मरण न दिलाए होते तब सुग्रीव इसी तरह शर्तें विस्मृत किए रहता।

यहां यह भी स्पष्ट करना उचित होगा कि राम और सुग्रीव की मैत्री, दो व्यक्तियों के बीच स्नेह की मैत्री नहीं थी-बल्कि यह समय का तकाजा था और दोनों परिस्थितिवश एक समझौते से बंधे थे।

ब्राह्मण, ऋषि मुनियों, आश्रम स्थलों और समाधि स्थलों के प्रति सुग्रीव का सम्मान रहा है। राम लक्ष्मण के साथ किष्किन्धा लौटते हुए सुग्रीव ने सप्तऋषियों की तपस्या आदि का वर्णन करते हुए उन दिवंगत मुनियों को प्रणाम करने के लिए कहा था और कहा था कि जो उन पवित्र अन्तःकरण वाले मुनियों को प्रणाम करते हैं, उनके शरीर में किंचितमात्र भी अशुभ नहीं रह जाता[154]। बालि के मरने के बाद सुग्रीव ने शास्त्रानुकूल विधि से संस्कार किया था।

उपर्युक्त तथ्यों को देखने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि सुग्रीव एक पराक्रमी और शूरवीर था। राम से सुग्रीव की मैत्री कोई मैत्री नहीं थी बल्कि दोनों को एक दूसरे की मदद की आवश्यकता थी। परिस्थितियों के अनुसार स्वयं अपने लाभ के लिए सुग्रीव शास्त्र मर्यादा के अनुकूल या प्रतिकूल कुछ भी करने के लिए हमेशा तैयार रहता था।

संदर्भ-सूची

1. नाथूराम प्रेमी : जैन साहित्य का इतिहास, पृ. 280
2. विमलसूरि : पउमचरियं-पर्व-103, गाथा-140, पृ. 547
3. पउमचरियं : उद्देश्य-27, गाथा-19, पृ. 226-
4. पउमचरियं : 28. गाथा-113-114
5. पउमचरियं : उद्देश्य-31, गाथा-77, पृ. 251
6. पउमचरियं : उद्देश्य-31, गाथा-89-91, पृ. 252
7. पउमचरियं भाग-2 : पर्व 62, गाथा-6-11, पृ. 383
8. पउमचरियं : पर्व-44, गाथा-64-65, पृ. 317
9. पउमचरियं : पर्व-49, गाथा-30-35, पृ. 341
10. पउमचरियं : पर्व-48, गाथा-1-5
11. पउमचरियं : पर्व-96, गाथा-29-35, पृ. 501
12. पउमचरियं : उद्देश्य-27, गाथा- 41, पृ. 227
13. पउमचरियं : पर्व-114, गाथा-25
14. पउमचरियं : पर्व-118, गाथा-92, पृ. 596
15. रामकथा : कामिल बुल्के : पृ. 258
16. पउमचरियं, भाग-1: उद्देश्य-25, गाथा-9-11, पृ. 216
17. पउमचरियं : उद्देश्य-31, गाथा-105-108, पृ. 253
18. पउमचरियं: भाग-1, उद्देश्य-45, गाथा-24, पृ. 319
19. पउमचरियं, उद्देश्य-65, गाथा-29-30
20. पउमचरियं, भाग-2: पर्व-103, गाथा-140, पृ. 547
21. पउमचरियं- भाग-2, पर्व-75, गाथा-4-9, पृ. 427
22. पउमचरियं- भाग-1, उद्देश्य-7, गाथा-96, पृ. 80
23. पउमचरियं- भाग-2, पर्व-103, गाथा-119, पृ. 546
24. पउमचरियं- भाग-1, उद्देश्य-7, गाथा-170, पृ. 85
25. पउमचरियं, भाग-1: उद्देश्य-9, गाथा-77, पृ. 110
26. पउमचरियं, भाग-1: उद्देश्य-9
27. पउमचरियं- भाग-1, उद्देश्य-12, गाथा-57-58, पृ. 132
28. पउमचरियं भाग-1, उद्द्देश्य 90, पृ. 125

Scanned with OKEN Scanner

29. पउमचरियं-भाग-1: उद्देश्य-12, गाथा-36, पृ. 130
30. पउमचरियं, भाग-1: उद्देश्य-26, गाथा-99-101, पृ. 224
31. पउमचरियं- भाग-1, उद्देश्य-31 गाथा-104
32. पउमचरियं, भाग-1: पर्व-46, गाथा-7-8 पृ. 321
33. पउमचरियं : भाग-1, पर्व-46 गाथा-43 पृ. 343
34. पउमचरियं, भाग-1 पर्व-53 गाथा-61 पृ. 351
35. पउमचरियं भाग-2 पर्व-96. गाथा-19, पृ. 501
36. पउमचरियं- भाग-2, पर्व-102, गाथा-16-17, पृ. 525
37. पउमचरियं, भाग-2 पर्व-102 गाथा- 42-43, पृ. 527
38. ऋग्वेद : 10.93.14
39. ऐतरेय ब्राह्मण : 7, 27-34
40. शतपथ ब्राह्मण : 4, 6, 1, 7
41. जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण : 3.7.3.2 (4.9.1.1
42. वा0रा0: भाग-1: 2, 8, 14-15 एवं 18-19, पृ. 202-203
43. वा0रा0 भाग-1, 2/22/6-8, पृ. 252
44. वा0रा0, भाग-1: 2/20/2-3, पृ. 243
45. वा0रा0, खंड-1, 2/18/28-29,पृ. 239
46. वा0रा0, भाग-1 2/19/22,पृ. 241
47. वा0रा0, भाग-1: 2/21/30, पृ. 248
48. वा0रा0, खंड-2 6/118/19, पृ. 564
49. वा0रा0, खंड-1: 3/61/6, पृ. 634
50. वा0रा0, खंड-1: 2/4/43-44, पृ. 194
51. वा0रा0 खंड-1, 2/26/33, पृ. 265
52. वा0रा0 खंड-1 :2/31/10, पृ. 275
53. वा0रा0 खंड-1 2/97/ 5-6, 8, 11 पृ0 436-437
54. वा0रा0 युद्धकांड 6/101/ 12-13, पृ. 514
55. वा0रा0 खंड-2, 7/39/ 23-24, पृ. 710
56. वा0 रा0, खंड-2: 6/18/ 3, पृ. 244
57. वा0रा0 खंड-1 : 3/67/ 29, पृ. 649
58. वा0रा0 खंड-1, 1/15/ 16-17, पृ. 61
59. वा0रा0, खंड-2 । 6/117/ 14-15
60. रामकथा : फादर कामिल बुल्के : पृ. 258
61. महाभारत : सरलादास कृत
62. रस विनोद (टढ़िया) : दीनकृष्णदास कृत
63. वा0रा0, भाग-1, 1/18/28
64. वा0रा0, भाग-1, 1/18/30
65. रामायण का आचार दर्शन: अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव, पृ. 142

66. वा0रा0, भाग-1: 2/58/30, पृ. 348
67. वा0रा0, भाग-1: 2/23/10, पृ. 254
68. वा0रा0, खंड-1: 4/33/46, पृ. 773-774
69. वा0रा0, खंड-1: 2/23/11, पृ. 254
70. वा0रा0, खंड-2, 6/83/31, पृ. 461
71. वा0रा0,खंड-1: 3/66/6, पृ. 646
72. वा0रा0, खंड-1 : 2/23/7
73. वा0रा0, भाग-1: 2/96/30, पृ. 436
74. वा0रा0, भाग-2 5/10/22 पृ. 40
75. वा0रा0, खंड-1:3/32/20, पृ. 566
76. वा0रा0, खंड-1- 6/94/35, पृ. 496
77. वा0रा0, खंड-2: 7/9/33, पृ. 622
78. वा0रा0, खंड-1 1/15/33, पृ. 62
79. वा0रा0, खंड-2 :7/16/36-37, पृ. 431
80. वा0रा0 खंड-2 5/51/18 पृ. 151
81. वा0रा0, खंड-2, 5/49/17, पृ. 149
82. वा0रा0, भाग-1: 1/20/20 पृ. 74
83. वा0रा0, भाग-1: 1/20/18, पृ. 74
84. वा0रा0, खंड-1 :2/27/6-7, 9, पृ. 266
85. वा0रा0 खंड-1, 2/37/272, पृ. 293
86. वा0रा0, खंड-1: 2/118/ 3-4, पृ. 487
87. वा0रा0 खंड-1, 3/47/ 37, पृ. 600
88. वारा0 खंड-2, 5/26/ 5,7,8, पृ. 83,
89. वा0रा0- 2- 5/36/10, पृ. 109
90. वा0रा0- 2: 5/37/22, पृ. 114
91. वा0रा0, भाग-2: 5/37/62-64, पृ. 116
92. वा0रा0 भाग-2: 6/113/38-40,पृ. 553
93. वा0रा0, भाग-2: 6/115/13, पृ. 557
94. वा0रा0, खंड-2, 6/115/19 एवं 21, पृ. 558
95. वा0रा0, भाग-2: 6/118/5-6,पृ. 563
96. वा0रा0, भाग-2 : 7/48/13, पृ. 725
97. वा0रा0 खंड-2, 7/97/15, पृ. 810
98. पउमचरियं, भाग-1 उद्देश्य-22, गाथा-11, पृ. 210
99. पुराणम्, भाग-2, पृ. 144-147
100. पउमचरियं, भाग-1, उद्देश्य-22, गाथा-108
101. पउम0, भाग-1, उद्देश्य-28, गाथा-71, पृ. 232
102. पउमचरियं, भाग-1, उद्देश्य-24, गाथा-37, पृ. 215

Scanned with OKEN Scanner

103. पउमचरियं, भाग-1, उद्देश्य-31, गाथा-48, पृ. 250
104. पउमचरियं, भाग-1, उद्देश्य-31, गाथा126, पृ. 254
105. पउमचरियं, भाग-1, उद्देश्य-24, गाथा-2-9, पृ. 213
106. पउमचरियं-भाग-1, उद्देश्य-24, गाथा-23, पृ. 214
107. पउमचरियं,भाग-1, 24.37. पृ. 215
108. पउमचरियं - उद्देश्य-32, गाथा-49-56, पृ. 256
109. एम0इ0 पार्टीगर : जर्नल रायल एशिआटिक सोसाइटी, 1911 पृ. 803 और 1913, पृ. 396
110. पउमचरियं, भाग-1, उद्देश्य-15-18
111. पउमचरियं, भाग-1, उद्देश्य120-121, पृ. 174
112. पउमचरियं, भाग-1, उद्देश्य-19
113. पउमचरियं, भाग-1: पर्व-53
114. पउमचरियं, भाग-1, पर्व-52, गाथा-19-22, पृ. 346
115. पउमचरियं, भाग-1, पर्व-53. गाथा-93, पृ. 348
116. पउमचरियं, भाग-1, पर्व-53, गाथा-93, पृ. 353
117. पउमचरियं, भाग-2, पर्व-108, पृ. 566-567
118. पउमचरियं, भाग-1, पर्व-47, गाथा-31, पृ. 329
119. पउमचरियं, भाग-1, पर्व-48
120. पउमचरियं, भाग-2, पर्व-60, और रामकथा, पृ. 449 टि0
121. पउमचरियं, खंड-2, पर्व-114, गाथा-19-20, पृ. 582
122. पुराणम् (वाराणसी) भाग-2, पृ. 137 एवं भाग-4, पृ. 23
123. वा0रा0, खंड-1: 2/11/14-15, पृ. 213
124. वा0रा0, खंड-1: 2/4/22, पृ. 193
125. वा0 रा0 खंड-1/81/21
126. वा0 रा0, खंड-1, 2/4/23, 2/5/2
127. वा0रा0, खंड-1: 2/57/31, पृ. 346
128 वा0रा0, खंड-1: 2/20/38-39, पृ. 245
129 रामायण का आचार-दर्शन : अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव, पृ. 78
130 वा0रा0 खंड-1: 2/10/33, पृ. 211
131 वा0रा0, खंड-1: 2/8/14, पृ. 202
132 वा0रा0, खंड-1: 2/14/7, पृ. 224
133 वाल्मीकि रामायण, खंड-1, 2/14/4-6, पृ. 224
134 वा0रा0, भाग-2, 6/66/5, पृ. 387
135 रामकथा, डा0 कामिल बुल्के, पृ. 82, अनुच्छेद-96
136 वा0रा0, भाग-2: 4/66/8-20, पृ. 841-842
137 वा0रा0 भाग-2: 7/36/29-35
138 वा0रा0, भाग-2: 7/36/45-47
139 वा0रा0 भाग-1: 4/3/27-32,,पृ. 661-662

140 वा0रा0, खंड-1: 4/29/6-7 पृ. 755
141 वा0रा0, भाग-1: 4/50/15-16,पृ. 813
142 वा0रा0 5/30/17-18
143 वा0रा0, खंड-1: 5/30/19, पृ. 94
144 वा0रा0, खंड-2: 6/82/4, पृ. 457
145 वा0रा0, भाग-1: 4/21/2
146 वा0रा0, खंड-2: 5/55/23, 28
147 वा0रा0, खंड-2: 5/55/7, पृ. 163
148 वा0रा0, खंड-2: 5/59/3-5
149 वाल्मीकि रामायण, भाग-1, 4/38/8, पृ. 783
150 वा0रा0, खंड-1: 3/72/21,
151 वा0रा0 भाग-1: 4/24/6, पृ. 736
152 वा0रा0, भाग-1 : 4/29/32
153 वा0रा0, खंड-1, 4/7/17, पृ. 690
154 वा0रा0, खंड-1 : 4/13/25-26

Scanned with OKEN Scanner

पंचम अध्याय

कथा प्रवाह में प्रसंगों की संगति

पउमचरियं :- नगर वर्णन

कथा प्रवाह में विभिन्न प्रसंगों की अहं भूमिका होती है। कथा प्रवाह को विस्तार देने में जिस प्रकार पात्रों को जन्म देना पड़ता है उसी तरह पात्रों के कार्य क्षेत्र, अर्थात् नगर, आवास, प्राकृतिक सौंदर्य, विभिन्न ऋतुओं का चित्रण करना कवि, लेखक की मजबूरी हो जाती है। इन प्रसंगों के समावेश का कारण होता है कथा प्रवाह बनाना, कथावस्तु को सरस बनाना, पाठकों के लिए सुस्वादु बनाना।

मुख्य कथा-प्रवाह में गौण कथा प्रसंगों का स्थान वही होना चाहिए जो किसी औषधि विशेष के सेवन में सहयोगी द्रव्य रूप अनुपानादि का होता है। जिस तरह सुललित एवं सुखप्रद जल-विहार की एकरसता को दूर करने के लिए स्वच्छ जल के बीच-बीच में विकसित कमल समूह, क्रीड़ित हंस पंक्ति एवं अनुपम संतरणशील अगणित जलचारी जीवों की अनिवार्यता होती है ठीक उसी तरह कथा-प्रवाह में विभिन्न प्रसंगों के जुड़ जाने से कथावस्तु का सौंदर्य विकसित हो जाता है। इसके सौंदर्य से मात्र पाठक ही लाभान्वित नहीं हो पाते बल्कि कवि और लेखकों की लेखनी को भी एक गति मिलती है, वर्णनात्मक क्षमता के मार्ग खुलते जाते हैं। कवि, लेखक के हृदय में कथावस्तु के अनेक छिपे सौंदर्य पाठकों के सामने आ पाते हैं और पाठक उनका रसास्वादन करता है-आनन्दित होता है।

कथा-प्रवाह के अन्तर्गत प्रसंगों की इसी आदर्श संगति के आधार पर हम यहां 'पउमचरियं' और 'वाल्मीकि रामायण' के कुछ प्रसंगों के औचित्य एवं अनौचित्य की परख इस अध्याय के अन्तर्गत कर रहे हैं। कथा-प्रवाह के प्रसंगों में हमने नगर वर्णन, राजप्रासाद वर्णन, उपवन वर्णन और ऋतु वर्णन को रखा है। उनका वर्णन प्रायः रूपक, उपमान एवं प्रतीक शैलियों द्वारा हुआ है।

मगध (राजगृह नगर)

आज से छब्बीस सौ वर्ष पूर्व बौद्ध इतिहास के अनुसार, भारतवर्ष सोलह महाजनपदों में विभक्त था। उन सोलह महाजनपदों में मगध राज्य की सीमा चीन के खोतान राज्य तक फैली थी। मगध की राजधानी राजगृह में अवस्थित थी। राजगृह नगर की चर्चा महाभारत में भी देखने को मिलती है। बौद्ध साहित्य में इस स्थल को 'राजगह' कहा गया है। इस नगरी में अनेक राजाओं का शासन रहा है। इसी कारण इसे 'राजगह'

अर्थात् 'राजगृह' कहा गया है। पंच पहाड़ियों से घिरा यह नगर शत्रुओं से पूर्णतः सुरक्षित था। जनता प्रसन्न थी।[1]

इह जम्बुदीवदीवे, दक्खिणभरहे महन्तगुणकलिओ।
मगहा नाम जणवओ, नगरा-ऽऽगरमण्डिओ रम्मो॥
गाम-पुर-खेड-कब्बड-मडम्ब- दोणीमुहेसु परिकिण्णो।
गो-महिसि-वलवपुण्णो, धणनिवहनिरुद्धसीमपहो॥

आचार्य विमलसूरि ने अपने महाकाव्य 'पउमचरियं' में भी मगध जनपद और इसकी राजधानी राजगृह का उल्लेख किया है। मगध का राजा श्रेणिक (बिम्बिसार) था। यह जनपद ग्राम, पुर, खेट, कर्बट, मडम्ब, द्रोणीमुख जैसे विविध प्रकार के नगरों से परिव्याप्त था। गाय, भैंस तथा घोड़े-घोड़ियों से परिपूर्ण था और सीमा तक जाने वाले इसके मार्ग अवरुद्ध से रहते थे। सार्थवाह, श्रेष्ठि, गृहपति कौटुम्बिक आदि उत्तम लोगों के समूह इसमें निवास करते थे। इसके बड़े-बड़े कोष्ठागार मणि, सुवर्ण, रत्न, मोती तथा प्रचुर धान्य से भरे-पूरे थे। लोग विभिन्न विज्ञानों में विचक्षण थे, अत्यन्त सुन्दर थे। बल, वैभव व कांति से युक्त थे। धर्म का किस प्रकार अधिक उद्योत हो ऐसा सोचने विचारने वाले लोग थे। इस जनपद में नृत्य एवं संगीत सर्वदा शब्दायमान रहता था। नट, नर्तक, छत्रधारी एवं बांस पर खेलने वाले नट लोग अपने कौशल का परिचय सदा दिया करते थे। पथिकजनों को नानाविध आहार तैयार कर खिलाया जाता था। बहुविवाह में विश्वास था। लोग इत्र और फूलों के बहुत शौकीन थे। जनपद चारों ओर सरोवरों, झीलों एवं उद्यानों से व्याप्त होने के कारण सुन्दर दीखता था। परराज्य के आक्रमण, संक्रामक रोग, चोर एवं दुर्भिक्ष से रहित होने के कारण यह जनपद सुखी था।[2]

राजगृह मगध जनपद की राजधानी है। यह श्रेणिक (बिम्बिसार) जैसे असाधारण व्यक्तित्व सम्पन्न राजा की राजनगरी है जो श्रमण धर्म सूर्य का उदयाचल एवं इस निर्मल पुण्य पवित्र रामकथा सरिता की मूल अवतरण भूमि है। वैसे राजगृह नगर का वर्णन कवि के लिए न्याय संगत ही नहीं, बल्कि सर्वथा अभीष्ट भी है। कवि ने वर्णन किया है कि मगध जनपद के मध्य भाग में मजबूत और विशाल किले से घिरा हुआ राजपुर (राजगृह) नामक एक प्राचीन नगर है। उस नगरी में भव्य भवन और धवल अट्टालिकाएं हैं। यह नगर खाइयों से घिरा तथा इसके प्राकार का अग्रभाग बन्दरों के मुंह जैसे आकारों से सुशोभित किया गया है। अनेक मूल्यवान पदार्थों से यह भरा-पूरा है और इसके घर जल-थल में उपलब्ध होने वाले बहुमूल्य रत्नों से भरे हुए हैं।

अनेक देशों से आये हुए व्यापारियों के वार्त्तालापों से यह नगर शब्दायमान रहता है। महलों के प्रांगण को सजाने में लाये गये मरकत एवं माणिक्य की किरणों से यह चितकबरा सा दिखाई पड़ता है तथा अगुरु, तुरुष्क एवं चंदन की सुगन्ध से यह सारा नगर परिव्याप्त है। यह देव मंदिरों से रम्य, बाग-बगीचों एवं उद्यानों से समृद्ध है। यह नगर सैकड़ों सरोवरों, झील, बावड़ी और खेतों के कारण रमणीय प्रतीत होता है। यहां के चौक-चौराहे विशाल एवं प्रेक्षणीय हैं। विद्वानों से समृद्ध यह नगरी लोगों के अस्खलित

चरित्र के कारण अत्यन्त प्रशंसनीय है। कवि ने बताया है कि यह नगर हजारों गुणों का आवास है और ऐसा प्रतीत होता है मानों इन्द्रपुरी अलका की शोभा लेकर इसका निर्माण किया गया हो।[3]

तस्स बहुमज्झदेसे, पायारुब्भडविसालपरिवेढं।
नयरं चिय पोराणं, रायपुरं नाम नामेणं।।
वरभवण-तुगंतोरण-धवलट्टालय कलंकपरिमुक्कं।
फलिहासु संपउत्तं, कविसीसयविरइयाभोयं।।
बहुभण्डसारगरुयं, जल-थलयसमिद्धरयणभरियघरं।
नाणादेससमागया-वणियजणुल्लावसद्दालं।।
भवणंगणच्चणेसु य, मरगय-मणिक्ककिरणकब्बुरियं।
अगुरुय-तुरुक्कं-चन्दण-जणवग्रपरिभोयसुसुयन्धं।।
चेइयघरेहि रम्मं, आरामुज्जाण-काणणसमिद्धं।
सर-सरसि-वावि-वप्पिण-सएसु अइमणहरालोवं।।
चच्चर-चदक्कमणहर-पेच्छणयमहन्तमहुरनिग्घोसं।
पण्डियजणसुसमिद्ध, अक्खलियचरित्तबहुसत्थं।।
किं जंपिएण बहुणा, तं नयरं गुणसहस्सआवासं।
अमरपुरस्स य सोहं, घेत्तूण व होज्ज निम्मवियं।।

लंका नगर

जैन साहित्य में प्रतिवासुदेव के नाम से चर्चित दशानन रावण की राजधानी और उसकी निवास भूमि लंका नगरी है। इस लंका की उपेक्षा कर कवि का मूल कथा प्रसंगों में संगति लाना दुष्कर था। इसलिए लंका नगरी के प्रसंग की अनिवार्यता स्वत: सिद्ध है। कवि ने इस नगर वर्णन को भी एक ऐसे प्रसंग में प्रस्तुत किया है जहां असंगति का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। क्योंकि विद्याधरों को जिस लंका नगरी पर आक्रमण करना है, उसी का प्रथम दृश्य उसके सामने आ प्रस्तुत होता है। फिर तो यह नगर वर्णन कवि की लेखनी से अपने आप चित्रित हो जाता है।

कवि ने लंका नगरी का वर्णन करते हुए लिखा है:-

निसुणेसु सायरवरे, विद्दुम-मणि-रयणकिरणपज्जलिए।
काणणवणेहि रम्मो, रक्खसदीवो त्ति नामेणं।।
सत्तेव जोयणसया, वित्थिण्णो सव्वओ समन्तेणं।
तस्स वि य मज्झदेसे, अत्थि तिकूडो त्ति वरसेलो।।
नव जोयणाणि तुंगो, पन्नासं सव्वओ य वित्थिण्णो।
सिहरं तस्स विरायइ, उब्भासेन्तं दस दिसाओ।।
सिहरस्स तस्स हेट्ठे, जम्बूणयकणगचित्तपायारा।
लंकापुरि त्ति नामं, नयरी सुरसंपयसमिद्धा।।[4]

अर्थात्- ''समुद्र के अन्दर विद्रुम, मणि एवं रत्नों की किरणों से देदीप्यमान तथा

बाग-बगीचों से रम्य राक्षस द्वीप नाम का एक द्वीप है। वह चारों ओर सात सौ योजन विस्तीर्ण है। उसके मध्य देश में त्रिकूट नाम का एक उत्तम पर्वत आया है। वह नौ योजन ऊंचा और चारों ओर पचास-पचास योजन विस्तृत है। दसो दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ उसका शिखर शोभित हो रहा है। उस शिखर के नीचे सोने के विचित्र प्रकारों वाली तथा देवताओं की सम्पत्ति से समृद्ध ऐसी लंकापुरी नाभ की नगरी आई है।''

लंका के सौंदर्य का वर्णन करते हुए कवि ने उल्लेख किया है कि वह प्रज्वलित अग्नि सरीखे उत्तम सोने के बने हुए किले से मानुषोत्तर पर्वत की भांति घिरी हुई है। नाना प्रकार के मणि एवं रत्नों से युक्त दीवार वाले तथा चन्द्रकान्तमणि एवं मृणाल के समान सफेद और ऊंचे देव मंदिरों के कारण वह मानों आकाश से मिलना चाहती है। किले के तोरणों में अविरल बांधी हुई ऊंची-ऊंची ध्वजाओं से तथा पवन से आहत पल्लव रूपी हाथों से ऊपर से उल्लंघन करने वालों को मानों वह आह्वान करती है। सरोवर और बावड़ियों से तथा बाग-बगीचे व वन-उपवनों सौर प्रासाद, सभा एवं चैत्यगृहों से वह अत्यन्त रमणीय प्रतीत होता है। देव भी उस अत्यन्त रमणीय महानगरी को देख उसे सहसा छोड़ना नहीं चाहते हैं। गुणों से युक्त तथा इन्द्र की अमरावती नगरी सरीखी वह नगरी समग्र जीव लोक में विख्यात है।[5]

साकेत (अयोध्या)

महाकवि विमलसूरि ने अपने महाकाव्य में अयोध्या का वर्णन साकेत नगर के नाम से किया है। यह नगर इक्ष्वाकु कुल के कई राजाओं द्वारा सुशोभित किया जाता रहा हैं।[6]

इस ग्रंथ में अयोध्या के सौंदर्य, उसकी महिमा, साज-सज्जा आदि के सम्बन्ध में कवि द्वारा कोई विशेष वर्णन देखने को नहीं मिलता है। दशरथ के राज्य, राम के साथ अन्य भाइयों के जन्म समारोह, नामकरण के शुभ अवसर अथवा मिथिला से सीता के साथ अयोध्या आगमन के समय भी ऐसा कोई उल्लेख देखने को नहीं मिलता जिससे अयोध्या नगरी की महिमा प्रस्तुत की जा सके।

राम वनगमन के अवसर पर अयोध्या (साकेत) नगरी की मलिनता का वर्णन संक्षेप में देखने को मिलता है-

तेसु कुमारेसु समं, सामन्तजणेण वच्चमाणेणं।
सुन्ना साएयपुरी, जाया छणवज्जिया तइया।।
न नियत्तइ नयरजणो, धाडिज्जन्तो वि दण्डपुरिसेहिं।
ताव य दिवसवसाणे, सूरो अत्थं समल्लीणो।।[7]

अर्थात्- उस समय उन कुमारों के साथ सामन्त जनों के जाने से साकेतपुरी उत्सवरहित शून्य नगरी सी हो गई। दण्डधारी पुरुषों (पुलिस) द्वारा भगाये जाने पर भी नगरजन वापस लौटते नहीं थे। उस समय दिवस का अवसान होने पर सूर्य अस्त हुआ।

इस उद्देश्य में वर्णित प्रसंगों से ज्ञात होता है कि यहां सामन्तजनों का जमघट होता था। अपराध होते थे। उसी की रोकथाम के लिए दण्डधारी पुरुषों (पुलिस) की व्यवस्था थी। अयोध्या (साकेत) नगरी के लोगों में भक्ति भावना विद्यमान थी। शांति प्राप्त करने के लिए जिन मंदिर जाते थे। राम, लक्ष्मण भी वन गमन से पूर्व जिन मंदिर आये और

Scanned with OKEN Scanner

जिन प्रतिमाओं की स्तुति कर जन समुदाय के साथ वहीं बैठे। उनकी माताओं ने भी जिन मंदिर में आकर पुत्रों का आलिंगन किया है।

उद्देश्य बत्तीस से ज्ञात होता है कि इस नगर में गुप्त द्वार भी था जिसके माध्यम से पद्म नगर से बाहर निकल सकते थे।[8]

एयं चिय सुणमाणा, पेच्छन्ता जणवयस्स विणिओगं।
अह निग्गया पुरीओ, सणियं ते गूढदारेणं।।

यह नगरी पद्म (राम) को भी बहुत प्रिय थी। वन से लौटने पर उन्होंने इस नगरी की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।[9]

भणिया य राहवेणं, सुन्दरि! एसा महं हिययइट्ठा।
विज्जाहरकयभूसा, साएयपुरी मणभिरामा।।

पद्म के इस कथन से संकेत मिलता है कि यह नगरी, सुर नगरी जैसी उत्तम रचना वाली है। यह विद्याधरों से विभूषित और मनोहर है। इन बातों से यह संकेत मिलता है कि साकेत नगरी की रम्यता, सुर नगरी जैसी थी। इसी कारण कवि ने इसकी तुलना 'सुरपुरी' के रूप में की है। जैन मतावलम्बियों की मान्यता रही है कि यहां विद्याधर बसते थे।

इस प्रकार नगर वर्णन के प्रसंग की अनिवार्यता से ही कथा-प्रवाह में इनकी संगति का स्पष्ट पता लगा जाता है।

राजप्रासाद वर्णन

पउमचरियं के कवि विमलसूरि ने राजप्रासाद के सौंदर्य का वर्णन करने में थोड़ी कमी कर दी है। नगर वर्णन पर उनकी विशेष दृष्टि रही है। नगर वर्णन से पाठक वहां की सुख-समृद्धि एवं वैभव का आकलन अवश्य कर लेता है। लेकिन राजप्रासाद की सीपियों को ढूंढ़ पाना कठिन प्रतीत होता है।

लंका का राजप्रासाद का वर्णन हमें उद्देश्य आठ में देखने को मिलता है:-

पइसरइ निययभवणं, थम्भसहस्साउलं तुगं।।
काण्यमयभित्तिचित्तं, मरगयलम्बन्तमोत्तिओऊलं।
मन्दाणिलपरिघुम्मिर-धबलपडागाचलकरग्गं।।[10]

अर्थात्- हजारों खम्भों से व्याप्त और ऊंचे भवन में रावण का प्रवेश हुआ। यह भवन सोने की दीवारों से शोभित था। मरकत मणियों में लटकते हुए मोतियों से वह व्याप्त था। मन्द-मन्द पवन से शनैः शनैः हिलती हुई सफेद ध्वजा के कारण उसका अग्रभाग चंचल प्रतीत होता था।

इसके अलावा हनुमान द्वारा विभिन्न भवनों को नष्ट-भ्रष्ट किये जाने की स्थिति में कवि की लेखनी उसकी भव्यता को स्मरण करने लगती है:-

उप्पइऊण नहयले, थम्भसहस्साउलं रयणचित्तं।
भंजइ रावणभवणं, हणुवो चलणप्पहारेहिं।।

उपवन वर्णन

पउमचरियं के महाकवि की लेखनी ने अपने ग्रंथ में प्रसंगवश जगह-जगह पर उपवनों की चर्चा की है। लेकिन उपवनों का सविस्तार वर्णन कहीं भी नहीं हो पाया है। ऐसा प्रतीत होता है कि राजप्रासाद के वर्णन की तरह ही कवि की लेखनी द्वारा उपवन का भी वर्णन किया गया है।

ग्रंथ में आदिनाथ ऋषभदेव, विषय भोगों का संहार कर 'केवलज्ञान' की प्राप्ति हेतु 'वसन्त तिलक' उद्यान में आते हैं। यह उद्यान बकुल, तिलक, चम्पक, अशोक, पुन्नाग और नाग जैसे सुन्दर वृक्षों से अत्यन्त समृद्ध है।

वरबउल-तिलय-चम्पय-असोग-पुन्ना-नागसुसमिद्धं।
पत्तो पवरुज्जाणं, वसन्ततिलयं ति नामेणं।।[11]

आगे चलकर कवि की लेखनी द्वारा समन्त कुसुम नामक उद्यान का वर्णन किया गया है। जानकारी दी गई है कि इस समन्त कुसुम उद्यान में सात प्रदेश हैं। वे प्रदेश हैं- प्रकीर्ण, आनन्द, सुखसेव्य, समुच्चय, चारण, प्रियदर्शन और पद्मोद्यान।

ये प्रदेश नानाविध वृक्षों से आसन्न हैं जहां नगरजन क्रीड़ा करते हैं। उद्यान प्रदेशों में सुगन्धित पुष्पों के समूह हैं। इन उद्यानों में श्रमणों में सिंह सरीखे, अतिशय धैर्य वाले तथा स्वाध्याय एवं ध्यान में निरत चारण श्रमण सदा बसते हैं। ताम्बूल की लताओं से व्याप्त, केतकी के पराग से धूसरित एवं आमोदपूर्ण प्रियदर्शन नाम का छठा उद्यान मन को हरने वाला है। पण्डकवन पद्मोद्यान नारंगी, कटहल, चम्पा, अशोक, पुन्नाग एवं तिलक आदि वृक्षों से सुशोभित है जहां से कोयल की मधुर ध्वनि सुनने को मिलती है। यहां जल से भरी, कमलों से व्याप्त बावड़ियां और जलाशय हैं। यहां अपहृत सीता देवकन्या सी प्रतीत होती थी।[12]

पढमं पइण्णगं ति य, धरणियले तह परं जणाणन्दं।
नाणाविहतरुछन्नं, तत्थ जणो नायरो रमइ।।
सइयम्मि उ सुहसेवे, समुच्चए तह चउत्थए रम्मे।
कीलइ विलासिणिजणो, सुयन्धकुसुमोहबलिकम्मो।।
चारणमणाभिरामे, उज्जाणे चारणा समणसीहा।
सज्झाय-झाणनिरया, वसन्ति निच्चं दढधिईया।।

इस प्रकार राम वन गमन के दौरान कई उद्यानों का, सीताहरण के बाद लंका के कई उद्यानों का, पर्व एकासी में त्रिभुनालंकार हाथी की वेदना नामक अध्याय में भी उद्यानों का उल्लेख किया गया है-लेकिन उसका विस्तार नहीं हुआ है।

ऋतु वर्णन

इस ग्रंथ में हमें प्रायः सभी ऋतुओं का वर्णन मिल जाता है। लेकिन प्रस्तुत अध्याय में सभी ऋतुओं का वर्णन विस्तार से कर पाना कठिन है। हम यहां कुछ प्रमुख ऋतुओं का उद्धरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

वर्षा ऋतु वर्णन

कवि ने तापसों की उत्पत्ति के संदर्भ में वर्षा ऋतु का उल्लेख किया है। कवि ने उल्लेख किया है कि वर्षा काल में बादलों के छा जाने से सारा आकाश अंधकार से व्याप्त हो गया है। सूर्य की किरणें तथा ग्रह-नक्षत्रों के समूह ओझल हो गये हैं। बिजली

की कौंध से तड़तड़ की आवाज आती है और धारा रूपी बाण से पृथ्वी की सतह छिन्न भिन्न हो रही है। वर्षा की धारा रूपी बाण से व्यथित शरीरवाला पथिक पुरुष अपनी पत्नी का स्मरण करके मूर्छित हो गया है। कदम्ब वृक्ष की ताजी-ताजी गन्ध सूंघकर लोग आसपास चक्कर लगाते हैं। मेढक, मोर और बादलों के शब्द मानों ताल दे रहे हैं। जल भरी खाई से गमन मार्ग अवरूद्ध होने के कारण खेद प्रकट किया जा रहा है।[13]

धवलबलायाधयवड-विज्जुलयाकणयबन्धकच्छा य।
इन्दाउहकयभूसा, झरन्तनवसलिलदाणोहा॥
अंजणगिरिसच्छाया, घणहत्थी पाहुडं व सुरवइणा।
संपेसिया पभूया, रक्खसनाहस्स अइगुरुया॥
अन्धारियं समत्थं, गयणं रवियरपणट्ठगहचक्कं।
तडयडसमुट्ठियरवं, धारासरभिक्भुवणयलं॥

वर्षा काल का वर्णन करते हुए कवि ने दण्डकारण्य वन में दशरथ पुत्रों के आगमन के समय भी वर्षा का वर्णन किया है। कवि ने उल्लेख किया है कि आकाश में फैले हुए काजल के समान काले मेघ गर्जना करके धराओं से मानों पृथ्वी को लपेट रहे हों, इस तरह रसने लगे। बादलों के समूह में से उत्पन्न, अत्यन्त प्रचण्ड और चारों ओर आवाज करता हुआ पवन एक दूसरे के साथ टकराकर वृक्षों को नचाता है। क्षणिक आभा से मंडित प्रदेश वाले नीले, हरे, पीले तथा सफेद रंग के दूसरे बादल आकाश में विचरण करते हुए शोभित हो रहे हैं। टहनियां और पत्ते जिसमें से फूटे हैं ऐसी पृथ्वी हरे हरे अंकुरों से श्यामल हो गई। सरोवर, तालाब, बावड़ी, खेत तथा नदी के प्रवाह नये जल से भर गये हैं।[14]

वसंत ऋतु का वर्णन

वसंतकाल में वज्रबाहु ने ध्यानस्थ मुनिवर को देखा। इस ऋतु में रक्ताशोक, हरिद्रुम, उत्तम दाड़िम के पेड़ तथा किंशुक वृक्ष से देदीप्यमान, कोयल के गीत से मुखरित, भौंरों की झंकार गीत से शब्दायमान, अनेक प्रकार के पुष्पों के सुगन्धित केसर व मकरन्द की तीव्र सुगन्ध से सुवासित दिशा समूह वाला तथा दक्षिण पवन से आन्दोलित वृक्ष मानों नाच रहे हों।[15]

रत्तासोय-हिलद्दुम-वरदाडिम-किंसुएसु दिप्पन्तो।
कोइलमुहलुग्गोओ, महुयरझंकारगीयरवो॥
वरबउल-तिलय-चम्पय-असोय-पुन्नाय-नायसुसमिद्धो।
पाडल-सहयार-ऽज्जुण-कुन्दलयामण्डिउद्देसो॥
बहुकुसुमसुरहिकेसर-मयरन्दुद्दामवासियदिसोहो।
दाहिणपवणन्दोलिय-नच्चाविज्जन्ततरुनिवहो॥

अयोध्या वापस लौटने के पश्चात् सीता के स्वप्न सुन राम ने शुभ संकेत देते हुए बताया कि उसे दो पुत्र होंगे। यहीं कवि ने वसंत ऋतु का वर्णन किया है। कवि ने कहा है अंकोठ रूपी तीक्ष्ण नाखून वाला, मल्लिका रूपी नेत्र वाला, अशोक पत्र रूपी जीभ वाला, कुरबकरूपी कराल दांत वाला, आम के केसर रूपी अरुणिमा से युक्त, पुष्पों की रजरूपी पीले शरीर वाला तथा अति मुक्तक लता रूपी ऊपर उठे हुए पंजों वाला-ऐसा

वसंतरूपी सिंह गजपतियों को भय देता हुआ आया। कोयल के बोलने से गीतयुक्त, भौंरों की गुनगुनाहट से झंकृत, कुसुम रज से समस्त दिशाओं को पीली पीली बनाने वाला, नानाविध वृक्षों से छाया हुआ, उत्तम पुष्पों से अर्चित एवं फल से समृद्ध ऐसा महेन्द्रोदय उद्यान नन्दन वन की भंति शोभित हो रहा था।[16]

अंकोल्लतिक्खणक्खो, मल्लियणयणो असोयदलजीहो।
कुरबयकरालदसणो, सहयारसुकेसरारुणिओ॥
कुसुमरयपिंजरंगो, अदमुत्तलयासमूसियकरग्गो।
पत्तो वसन्तसीहो, गयवयाणं भयं देन्तो॥
कोइलमुहलुग्गीयं, महुयरगुमुगुमुगुमेन्तझंकारं।
कुसुमरएण समत्थं, पिंजरयन्तो दिसायक्कं॥
नाणाविहतरुछन्नं, वरकुसुमसमच्चियं फलसमिद्धं।
रेहइ महिन्दउदयं, उज्जाणं नन्दणसरिच्छं॥

शरद वर्णन

कवि ने भामण्डल के सीता से पुनर्मिलन के संदर्भ में शरत्काल का वर्णन किया है। इस समय बादल रूपी सेवार से रहित, चन्द्ररूपी हंस से युक्त, सफेद तारे रूपी कुमुद से व्याप्त ऐसे आकाश रूपी जल को शरत् काल में देख कर लोगों को आनन्द होता है। अभी चकवाक, हंस और सारस एक दूसरे के साथ समालाप करते हैं और सब प्रकार के धान्य जिसमें उत्पन्न हुए हैं ऐसी पृथ्वी अधिक शोभित हो रही है।[17]

ववगयघणसेवालं, ससिहंसं धवलतारयाकुमुयं।
लोगस्स कुणइ पीई, नभसलिलं पेच्छिउं सरए॥
चक्काय-हंस-सारस-अन्नोन्नरसन्तकयसमालावा।
निप्फण्णसव्वसस्सा, अहियं चिय रेहए वसुहा॥

शम्बूक वध के समय कवि ने शरदकाल का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है-"बादलों के काले आवरण से मुक्त, पानी की धाराओं से धुलने के कारण निर्मल तारा रूपी कुमुदों से व्याप्त तथा चन्द्ररूपी हंस से युक्त गगन जल की भांति शोभित हो रहा है। अतिशय पवन से विमुक्त तथा सुहस्ती को प्राप्त करके प्रहृष्ट वन-उपवन पल्लवरूपी हाथों से मानों नाच रहे हैं। कमल से भरे हुए जल वाले सरोवरों और नदियों में हंस एवं सारस आदि पक्षियों का कलरव हो रहा है।"[18]

मेहमलपडमुक्कं, धोयं धरासु निम्मलं जायं।
रेहइ जलं व गयणं, तारा-कुमुएसु ससि-हंसं॥
धणवायविमुक्काइं, लहिऊण सुहत्थियं पहट्ठाइं।
पल्लवकरेसु नज्जइ, नच्चन्ति व काणणवणाइं॥

इसी तरह 'दशरथ का प्रव्रज्या के लिए निश्चय' और विभीषण के समागम' अंश में कवि ने हेमन्त ऋतु का वर्णन किया है। इस तरह हम पाते हैं कि कवि ने ऋतुओं का वर्णन कर कथा-प्रवाह में एक नया मोड़, नई दिशा देने का प्रयास किया है।

वाल्मीकि रामायणः

नगर-वर्णन

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत अयोध्या, लंका और किष्किन्धा नगरों का हमें विस्तार से वर्णन मिलता है। ये तीनों नगर रामकथा के मूल आधार स्तम्भ हैं जहां रामकथा की घटनाओं में अलग-अलग मोड़ आते हैं और इन्हीं नगरों से सम्बद्ध रामायण के चर्चित पात्र राम, रावण, हनुमान और सुग्रीव रहे हैं। इन नगरों का उल्लेख हम क्रमानुसार इस अध्याय में कर रहे हैं।

अयोध्या

इस नगर का वर्णन संक्षिप्त रूप से वाल्मीकि रामायण में अनेक स्थलों पर किया गया है। लेकिन इसका सांगोपांग वर्णन हम राम राज्याभिषेक के उपरान्त ही प्राप्त करते हैं जो हर्षोल्लास के वातावरण में स्वाभाविक रूप से वर्णित है। इसके अलावा दशरथ के शासनकाल में अयोध्या का सजीव चित्रण हुआ है।

सरयू नदी के तट पर अवस्थित कोशल जनपद में अयोध्या नगरी अवस्थित है जो समस्त लोकों में विख्यात है। धन-धान्य समृद्धशाली इस नगरी को स्वयं महाराज मनु ने बनवाया और बसाया है। इस महापुरी का क्षेत्र बारह योजन लंबा और तीन योजन चौड़ा था। बाहर के जनपदों में जाने का विशाल राजमार्ग वृक्षावलियों से विभूषित होने के कारण सुस्पष्टतया अन्य मार्गों से विभक्त जान पड़ता था। राजमार्ग पर फूल बिखेरे जाते थे और प्रतिदिन उस पर जल छिड़काव किया जाता था। इन्द्र की अमरावतीपुरी की तरह धर्म और न्याय के बलपर अपने महान् राज्य की वृद्धि करने वाले राजा दशरथ ने अयोध्यापुरी को पहले की अपेक्षा विशेष रूप से बसाया था।

अयोध्या नगरी के भवन बड़े-बड़े फाटक और किवाड़ों से सुशोभित थे। उसके भीतर अलग अलग बाजार थे। यहां सभी प्रकार के यंत्र और अस्त्र-शस्त्र संचित थे। यहां कलाओं के शिल्पी निवास करते थे। ऊंची ऊंची अट्टालिकाओं के ऊपर ध्वज फहराते थे। यहां बहुत सी नाटक मंडलियां थीं जिनमें केवल स्त्रियां ही नृत्य एवं अभिनय करती थीं। सुरक्षा की दृष्टि से चारों ओर गहरी खाई खुदी थी।[19]

कोशलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान्।
निविष्टः सरयूतीरे प्रभूतधनधान्यवान्॥
अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोकविश्रुता।
मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम्॥
आयता दश च द्वे च योजनानि महापुरी।
श्रीमती त्रीणि विस्तीर्णा सुविभक्तमहापथा॥
राजमार्गेण महता सुविभक्तेन शोभिता।
मुक्तपुष्पावकीर्णेन जलसिक्तेन नित्यशः॥
तां तु राजा दशरथो महाराष्ट्रविवर्धनः।
पुरीमावासयामास दिवि देवपतिर्यथा॥

कपाटतोरणवतीं सुविभक्तान्तरापणाम्।
सर्वयन्त्रयुधवतीमुषितां सर्वशिल्पिभिः॥

इसी तरह अयोध्या के सौंदर्यीकरण का उल्लेख वाल्मीकि रामायण के अयोध्या कांड में तब मिलता है जब राम के राज्याभिषेक के लिए जनता के बीच हर्षोल्लास का वातावरण फैल गया है:-[20]

सिताभ्रशिखराभेषु देवतायतनेषु च।
चतुष्पथेषु रथ्यासु चैत्येष्वट्टालकेषु च॥
नानापण्यसमृद्धेषु वणिजामापणेषु च।
कुटुम्बिनां समृद्धेषु श्रीमत्सु भवनेषु च॥
सभासु चैव सर्वासु वृक्षेष्वालक्षितेषु च।
ध्वजाः समुच्छ्रिताः साधु पताकाश्चाभवंस्तथा॥

वनवास से श्रीराम के अयोध्या वापस लौटने पर भी अयोध्या की अपूर्व सजावट का कवि ने उल्लेख किया है। ऊंची नीची भूमियों को समतल किया था। अयोध्या से नन्दिग्राम तक मार्ग को स्वच्छ करके आसपास की भूमि पर शीतल जल का छिड़काव किया गया है। नगर के डगर एवं राजमार्गों पर लावा और फूल बिखेरे गये हैं। वन वीथियों पर दोनों ओर ऊंची ऊंची पताकाएं फहराई गई हैं। नगर के सभी भवनों को सुनहरी पुष्पमालाओं, घनीभूत फूलों के सुन्दर गजरों, कमलपुष्पों और पंचरंगे अलंकारों से सुसज्जित किया गया है।[21]

वष्टीरनेकसाहस्रीश्चोदयामास भागशः।
समीकुरुत निम्नानि विषमाणि समानि च॥
स्थानानि च निरस्यन्तां नन्दिग्रामादितः परम्।
सिंचन्तु पृथिवीं कृत्स्नां हिमशीतेन वारिणा॥
ततोऽभ्यवकिरन्त्वन्ये लाजैः पुष्पैश्च सर्वतः।
समुच्छ्रितपताकास्तु रथ्याः पुरवरोत्तमे॥
शोभयन्तु च वेश्मानि सूर्यस्योदयनं प्रति।
स्रग्दाममुक्तपुष्पैश्च सुवर्णैः पंचवर्णकैः।

लंका नगर

सीता की खोज में हनुमान लंका पहुचते हैं। उन्हें लंका नगरी की शोभा अवर्णनीय प्रतीत हुई। शरदकाल के बादलों की भांति श्वेत कांतिवाले सुन्दर भवन उसकी शोभा बढ़ाते हैं। समुद्र की गर्जना के गम्भीर स्वर यहां सुनने को मिलते हैं। यह नगर अलकापुरी के समान शक्तिशालिनी सेनाओं से सुरक्षित है। सुन्दर फाटकों पर मतवाले हाथी शोभा पा रहे हैं। पुरी के अन्तर्द्वार और बहिर्द्वार दोनों ही श्वेत कांति से सुशोभित हैं। सुरक्षा की दृष्टि से भयंकर भुजंगों का संवरण होता रहता है। ग्रहों और नक्षत्रों के सदृश विद्युत दीपों के प्रकाश से यह पुरी प्रकाशित है तथा प्रचंड वायु की ध्वनि यहां सदा होती रहती है।

सोने के विशाल परकोटे से घिरी हुई लंकापुरी क्षुद्र घंटिकाओं की झंकार से युक्त पताकाओं द्वारा अलंकृत है। सुवर्ण द्वारों से नगरी की अपूर्व शोभा हो रही है। द्वारों पर

नीलम के चबूतरे हैं। समस्त द्वार हीरों, स्फटिकों और मोतियों से जड़े हैं। मणिमय फर्श उनकी शोभा बढ़ा रही है। उनके दोनों ओर तपाये स्वर्ण निर्मित हाथी शोभा पाते हैं। द्वारों का ऊपरी भाग चांदी से निर्मित होने के कारण स्वच्छ और श्वेत है। उनकी सीढ़ियां नीलम की बनी हैं। द्वारों का भीतरी भाग स्फटिक मणि के बने हुए धवल रंग के हैं। समस्त द्वार रमणीय सभा भवनों से युक्त, मनोरम और गगनचुम्बी हैं। कौंच और मयूरों का कलरव होता रहता है। द्वारों पर राजहंस भी निवास करता है। यहां भांति भांति के वाद्यों और आभूषणों की मधुर ध्वनि होती रहती है, जिससे लंकापुरी चहुंओर प्रतिध्वनित होती है।[22]

काञ्चनेनावृतां रम्यां प्राकारेण महापुरीम्।
गृहैश्च गिरिसंकाशैः शारदाम्बुदसंनिभैः॥
पाण्डुराभिः प्रतोलीभिरुच्चाभिरभिसंवृताम्।
अट्टालकशताकीर्णां पताकाध्वजशोभिताम्॥
तोरणैः कांचनैर्दिव्यैर्लतापङ्क्तिविराजितैः।
ददर्श हनुमॉल्लककां देवो देवपुरीमिव॥

रामचन्द्र जी भी लंका नगरी के समीप पहुँचकर उसकी शोभा देखकर आश्चर्यचकित होते हैं। उन्होंने कहा है संभवतः पूर्वकाल में विश्वकर्मा ने कला-चातुरी से इस पर्वत शिखर पर स्थित लंकापुरी का निर्माण किया है।[23]

आलिखन्तीमिवाकाशमुत्थितां पश्य लक्ष्मण।
मनसेव कृता लंकां नगाग्रे विश्वकर्मणा॥
विमानैर्बहुभिर्लंकां संकीर्णा रचिता पुरा।
विष्णोः पदमिवाकाशं छादितं पाण्डुभिर्घनैः॥
पुष्पितैः शोभिता लंका वनैश्चित्ररथोपमैः।
नानापतगसंघुष्टफलपुष्पोपगैः शुभैः॥

राजप्रासाद

राजप्रासाद वर्णन के अन्तर्गत भी हम अयोध्या और लंका इन दोनों के राज-प्रासादों को ही ले सकते हैं। नगर वर्णन के कारण इन राज-प्रासादों की संगति अलग से बिठाने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं रह जाती है। लंका और अयोध्या नगर वर्णन के अन्तर्गत राज-प्रासाद का वर्णन स्वयमेव हो जाता है। फिर भी कुछ अवसरों पर राजप्रासाद वर्णन कुछ विशिष्ट रूप में चित्रित हुए हैं जिन्हें इस तरह प्रस्तुत किया जा रहा है।

अयोध्या का राज-प्रासाद

राजा दशरथ के राज-प्रासाद की शोभा उस समय आकर्षण का केन्द्र बनी है जब राम और तीनों भाइयों की नववधुओं का आगमन होता है। राज-प्रासाद हिमालय के समान सुन्दर और गगनचुम्बी है:-[24]

स तं कैलासशृंगाभं प्रासादं रघुनन्दनः।

उसमें महान् अभ्युदयशाली आसन है। वह राजमहल कैलाश शिखर के समान उज्ज्वल और ऊंचा है। राज-परिवार के सदस्यों-पिता-माता, पुत्रवधू के लिए भवन

पृथक्-पृथक् भागों में बना है। रामचन्द्र का भवन भी इसी कम में पिता दशरथ एवं माता कौशल्या के भवन से पृथक् है। उनका भवन श्वेत बादलों के समान उज्ज्वल और इतना बड़ा है कि उसकी तीन ड्योढ़ियों में रथ के द्वारा ही प्रवेश किया जाता है।[25]

स रामभवनं प्राप्य पाण्डुराभ्रघनप्रभम्।
तिस्रः कक्ष्या रथेनैव विवेश मुनिसत्तमः॥

इसी तरह कैकेयी का भवन भी देखने को मिलता है। इसमें तोते, मोर, कौंच और हंस आदि पक्षी कलरव करते हैं। चम्पा और अशोक से सुशोभित बहुत से लताभवन और चित्रभवन उस महल की शोभा बढ़ा रहे हैं। हाथी दांत, चांदी और सोने के बने हुए उत्तम सिंहासन रखे गये हैं। नाना प्रकार के अन्न-पान और भांति भांति के भोज्य पदार्थों से यह भवन भरा-पूरा है। बहुमूल्य आभूषणों से सम्पन्न कैकेयी का यह भवन स्वर्ग के समान शोभा पा रहा है।[26]

शुकबर्हिसमायुक्तं क्रौंचहंसरुतायुतम्।
वादित्रवसंघुष्टं कुब्जावामनिकायुतम्।
लतागृहैश्चित्रगृहैश्चम्पकाशोकशोभितैः॥
दान्तराजतसौवर्णवेदिकाभिः समायुतम्।
नित्यपुष्पफलैर्वृक्षैर्वापीभिरुपशोभितम्॥
दान्तराजतसौवर्णैः संवृतं परमासनैः।
विविधैरन्नपानैश्च भक्ष्यैश्च विविधैरपि॥
उपपन्नं महार्हैश्च भूषणैस्त्रिदिवोपमम्।

लंका का राज-प्रासाद

कवि ने राक्षस राज रावण के महल का वर्णन करते हुए लिखा है कि यह त्रिकूट पर्वत के शिखर पर प्रतिष्ठित था। सुरक्षा की दृष्टि से यह श्वेत कमलों द्वारा अलंकृत खाइयों से घिरा था। उसके चारों ओर बहुत ऊंचा परकोटा था, जिससे राजभवन पूर्णतः घिरा था। वह दिव्य भवन स्वर्गलोक के समान मनोहर था और संगीत आदि के दिव्य शब्द गूंज रहे थे। घोड़ों की हिनहिनाहट सभी ओर फैली थी। आभूषणों की रुनझुन भी कानों में पड़ती थी। नाना प्रकार के रथ, पालकी आदि सवारी, विमान, सुन्दर हाथी, घोड़े श्वेत बादलों की घटा के समान दिखाई देने वाले चार दांतों से युक्त सजे सजाये मतवाले हाथी तथा मदमत्त पशु-पक्षियों के संचरण से उस राजमहल का द्वार बड़ा सुन्दर दिखाई देता था।[27-28]

त्रिविष्टपनिभं दिव्यं दिव्यनादविनादितम्॥
वाजिह्रेषितसंघुष्टं नादितं भूषणैस्तथा।
रथैर्यानैर्विमानैश्च तथा हयगजैः शुभैः॥
वारणैश्च चतुर्दन्तैः श्वेताभ्रनिचयोपमैः।
भूषितै रुचिरद्वारं मत्तैश्च मृगपक्षिभिः॥

विशेषकर राक्षसराज रावण का महल मेघ के समान ऊंचा, सुवर्ण के समान सुन्दर कान्ति वाला तथा मनोहर है। वह इस भूतल पर बिखरे हुए स्वर्ण के समान जान पड़ता

Scanned with OKEN Scanner

है। अपनी कांति से प्रज्वलित सा हो रहा है। अनेकानेक रत्नों से व्याप्त, भांति भांति के फूलों से आच्छादित तथा पुष्पों के पराग से भरे हुए पर्वत-शिखर के समान शोभा पाता है। वह विमानरूप भवन विद्युत्मालाओं से पूरित मेघ के समान रमणीय रत्नों से देदीप्यमान हो रहा है और श्रेष्ठ हंसों द्वारा आकाश में ढोये जाते हुए विमान की भांति जान पड़ता है।[29]

महीतले स्वर्गमिव प्रकीर्ण
श्रिया ज्वलन्तं बहुरत्नकीर्णम्।
नानातरूणां कुसुमावकीर्ण
गिरेरिवाग्रं रजसावकीर्णम्

नारीप्रवेकैरिव दीप्यमानं
तडिद्भिरम्भोधरमर्च्यमान्।
हंसप्रवेकैरिव वाह्यमानं
श्रिया युतं खे सुकृतं विमानम्

रावण के राज-प्रासाद में बहुत बड़ा अन्त:पुर है जिसमें मणियों की सीढ़ियाँ बनी हैं और सोने की खिड़कियाँ उसकी शोभा बढ़ाती हैं। उसका फर्श स्फटिक मणि से बनाया गया है जहां बीच बीच में हाथी दांत द्वारा विभिन्न प्रकार की आकृतियां बनी हुई हैं। मणियों के बने हुए खंभे, जो एक समान सीधे, बहुत ही ऊंचे और सब ओर से विभूषित हैं, उस अन्त:पुर की शोभा बढ़ा रहे हैं।[30]

मणिसोपानविकृतां हेमजालविराजिताम्॥
स्फाटिकैरावृवतलां दन्तान्तरितरूपिकाम्।
मुद्रावज्रप्रवालैश्च रूप्यचामीकरैरपि॥

उपवन

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत वाटिका, बाग, वन आदि नामों से उपवन का उल्लेख प्रत्यक्ष एवं परोक्ष शैलियों में वर्णित है। उनमें लंका की अशोक वाटिका को अधिक महत्त्व दिया गया है जहां अपहृत जानकी को आश्रय दिया गया है।

अशोक वाटिका समस्त कामनाओं को फल रूप में प्रदान करने वाले कल्पवृक्षों से भरी है तथा हर समय मदमत्त रहने वाले पक्षी उसमें निवास करते हैं। इस वाटिका में साल, अशोक, निम्ब और चम्पा के वृक्ष खिले हुए हैं। बहुवार, नाग केसर और बंदर के मुंह की भांति लाल फल देने वाले आम भी पुष्प एवं मंजरियों से सुशोभित होते हैं। अमराइयों से युक्त वे सभी वृक्ष शत शत लताओं से आवेष्टित हैं। वह वाटिका सोने और चांदी के समान वर्ण वाले वृक्षों द्वारा सब ओर से घिरी है। उसमें नाना प्रकार के पक्षी कलरव करते हैं।

सालानशोकान् भव्यांश्च चम्पकांश्च सुपुष्पितान्।
उद्दालकान् नागवृक्षांश्चूतान् कपिमुखानपि॥

तथाऽऽपप्रवणसम्पन्नॉल्लताशतसमन्वितान्।
ज्यामुक्त इव नाराचः पुप्लुवे वृक्षवाटिकाम्॥
स प्रविश्य विचित्रं तां विहगैरभिनादिताम्।
राजतैः कांचनैश्चैव पादपैः सर्वतो वृताम्॥

अशोक वाटिका विचित्र काननों से अलंकृत है और नवोदित सूर्य के समान अरुण रंग की दिखाई देती है। फूलों और फलों से लदे हुए नाना प्रकार के वृक्षों से व्याप्त हुई उस अशोक वाटिका का मतवाले कोकिल और भ्रमर सेवन करते हैं। वह वाटिका ऐसी है जहां जाने से हर समय लोगों के मन में प्रसन्नता होती है।। मृग और पक्षी मदमत्त हो उठते हैं। मतवाले मोरों का कलनाद वहां निरन्तर गूंजता रहता है। नाना प्रकार के पक्षी भी वहां निवास करते हैं। वहां कहीं कहीं की भूमि मणि, चांदी एवं सोने से जड़ी गयी है। विभिन्न आकारों की बावड़ियां भी हैं जो उत्तम जल से भरी हुई और मणिमय सोपानों से युक्त हैं। उनके भीतर मोती और मूंगों की बालुकाएं हैं। जल के नीचे की फर्श स्फटिक मणि की बनी हुई है और उन बावड़ियों के तटों पर तरह-तरह के विचित्र सुवर्णमय वृक्ष शोभा दे रहे हैं। उनमें खिले हुए कमलों के वन और चक्रवाकों के जोड़े शोभा बढ़ा रहे हैं। अनेकानेक विश्खाल, तटवर्त्ती वृक्षों से सुशोभित अमृत के समान मधुर जल से पूर्ण तथा सुखदायिनी सरिताएं चारों ओर से उन बावड़ियों का सदा संस्कार करती हैं।[31] लेकिन अशोक वाटिका का सौंदर्य, रावण के अविवेकपूर्ण अमर्यादित कार्यों के कारण आज हनुमान जी को बदला-बदला सा प्रतीत हो रहा है।

वाल्मीकि रामायण में ऋतु वर्णन

ऋतु वर्णन काव्यात्मक अभिव्यक्ति के लिए साधन और साध्य दोनों है। कल्पनाएं लताओं की तरह ऋतुओं के तरु के सहारे उन्मुक्त गगन में सर उठा कर वर्णित होती है। जहां पउमचरियं का कलाकार एक सधा हुआ व्यक्ति है और जो अपनी भावनाओं को ऋतुओं के परिप्रेक्ष्य में मूर्त रूप देने में सफल हुआ है, वहां वाल्मीकि रामायण का प्रणेता अनायास ही कुछ कदम आगे बढ़ाता दिखलाई पड़ता है। सजीवता और सरसता के प्रसंग में ऋतुओं का चित्रण करते समय खासकर वसंत, हेमन्त, एवं वर्षा ऋतुओं का वर्णन करते समय आदि कवि वाल्मीकि आश्चर्यजनक ढंग से बाजी मार लेते हैं।

हेमन्त ऋतु वर्णन

वाल्मीकि रामायण में हेमन्त ऋतु का वर्णन बड़ी ही सरलता, सहजता, विविधता तथा सरस कलात्मकता के साथ प्रस्तुत हुआ है। प्रकृति के प्रागंण में बिखरे हुए हेमन्त की कोई भी छवि कवि के नेत्रों से ओझल नहीं हो पाई है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे कवि प्रकृति के सूक्ष्म एवं स्थूल तत्वों की आड़ में स्वयं बैठकर उसके सोने-सलोने लावण्य को संवार रहा हो। महत्त्व की बात तो यह है कि प्रकृति और पंचतत्व का कोई भी कतरा कवि के नेत्रों से ओझल नहीं हो पाया है। एक एक प्राकृतिक उपादान कवि की कनक-कलम के सम्पर्क में आने पर कनकमय हो गया है, सजीव और गीतमय हो गया है।

Scanned with OKEN Scanner

हेमन्त की विशेषता कवि के शब्दों में इस प्रकार व्यक्त हुई है-

हेमन्त ऋतु में अधिक शीत के कारण लोगों का शरीर रूखा हो जाता है। पृथ्वी पर रबी की खेती लहलहाने लगती है। जल अधिक शीतल होने के कारण पेय नहीं रह जाता और अग्नि प्रिय से प्रियतर बन जाती है। इस ऋतु में प्रायः सभी जनपदों के निवासियों की अन्न प्राप्ति विषयक कामनाएं प्रचुर रूप से पूर्ण हो जाती है। गोरस की भी बहुतायत होती है तथा विजय की इच्छा रखने वाले भूपालगण युद्ध यात्रा के लिए विचरते रहते हैं।

सूर्यदेव इन दिनों यमसेवित दक्षिण दिशा का दृढ़ता पूर्वक सेवन करते हैं। इसलिए उत्तर दिशा सिन्दूरविन्दु से वंचित हुई नारी की भांति सुशोभित या प्रकाशित नहीं हो रही है। हिमालय पर्वत हिम के खजाने से भरा-पूरा होता है, लेकिन सूर्यदेव भी दक्षिणायन में चले जाने के कारण उससे दूर हो जाते हैं। दिवस का मध्यकाल धूप का स्पर्श होने से हेमन्त के सुखमय दिन अत्यन्त सुख से गगनागमन के योग्य होते हैं। सूर्यदेव सौभाग्यशाली जान पड़ते हैं तथा छाया और जल दुर्भाग्यपूर्ण लगता है। इस ऋतु में रात्रि बड़ी होती है। इन दिनों पूर्णिमा की चांदनी रात भी तुहिन बिन्दुओं से मलिन दिखाई देती है। स्वभाव से ही जिसका स्पर्श शीतल है, वह पछुआ हवा हिमकणों से व्याप्त होने के कारण दूनी सर्दी लेकर बड़े वेग से बहती है।[32]

अयं स कालः सम्प्राप्तः प्रियो यस्ते प्रियंवद।
अलंकृत इवाभाति येन संवत्सरः शुभः::॥
नीहारपरुषो लोकः पृथिवी सस्यमालिनी।
जलान्यनुपभोग्यानि सुभगो हव्यवाहनः॥
प्रकृत्या हिमकोशाढ्यो दूरसूर्यश्च साम्प्रतम्।
यथार्थनामा सुव्यक्तं हिमवान् हिमवान् गिरिः॥
निवृत्ताकाशशयनाः पुष्यनीता हिमारुणाः।
शीतवृद्धतरायामास्त्रियामा यान्ति साम्प्रतम्॥
ज्योत्स्ना तुषारमलिना पौर्णमास्यां न राजते।
सीतेव चातपश्यामा लक्ष्यते न च शोभते॥

वंसत ऋतु

वाल्मीकि रामायण में भी वंसत को काम के सहायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। उदाहरणार्थ सीताहरण के पश्चात् वियोगी राम की दशा इस ऋतु में और भी दयनीय हो गयी है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे ऋतुराज वंसत उद्दीपन रूप में उनके सामने उपस्थित हुआ हो। इस ऋतु के संबन्ध में मर्यादापुरुषोत्तम राम भी वर्णन करते हैं कि इस ऋतु में वृक्षों में फल और फूल लग जाते हैं। उनसे फूलों की वर्षा वैसी ही होती है जैसी वर्षा ऋतु में मेघाच्छन्न गगन से वर्षा होती है। मतवाले कोकिलों के कलनाद वाद्य का काम देते हैं और उन वाद्यों की ध्वनि के साथ वह वायु इन झूमते हुए वृक्षों को मानों नृत्य

की शिक्षा सी दे रही हो। मलय चन्दन का स्पर्श करके बहने वाली शीतल वायु शरीर को सुखद लगती है। मधुर मकरंद अृत्य के साथ गान कर रहे हों।[33]

सुखानिलोऽयं सौमित्रे कालः प्रचुरमन्मथः।
गन्धवान् सुरभिर्मासो जातपुष्फलद्रुमः॥
पश्य रूपाणि सौमित्रे वनानां पुष्पशालिनाम्।
सृजतां पुष्पवर्षाणि वर्षं तोयमुचामिव॥
प्रस्तरेषु च रम्येषु विविधाः काननद्रुमाः।
वायुवेगप्रचलिताः पुष्पैरवकिरन्ति गाम्॥
पतितैः पतमानैश्च पादपस्थैश्च मारुतः।
कुसुमैः पश्य सौमित्रे क्रीडतीव समन्ततः॥
विक्षिपन् विविधाः शाखा नगानां कुसुमोत्कटाः।
मारुतश्चलितस्थानैःषट्पदैरनुगीयते॥

वर्षा-ऋतु वर्णन

महाकवि वाल्मीकि ने अपने ग्रंथ में वर्षा काल को विश्रान्तिकाल के रूप में माना है। इसका कारण है कि इस काल में सम्पूर्ण जीव-कुल अपनी-अपनी गृह सीमा में निबद्ध एवं निश्चल से हो जाते हैं। गृह अवस्थित प्राणियों में स्वभावतः अन्तर्मुखी आमोद-प्रमोद के सिवा कोई अन्य गतिविधि नहीं दिखाई पड़ती। रामायण का यह वर्षाकाल अपनी इसी प्रासंगिक पृष्ठभूमि के साथ प्रारम्भ होता है।

महान् अजेय शत्रु वानरराज बालि के कोधानल से संतप्त सुग्रीव उसकी मृत्यु के पश्चात् सुख की नींद सोते हैं। इधर राम भी सुग्रीव की इस परिवर्तित स्थिति से अपनी प्रिया मिलन की आशा लता में पुष्प उगा देख क्षणिक विश्रान्ति का अनुभव करते हैं। ठीक इसी आनन्दोल्लास के वातावरण में वाल्मीकि रामायण का वर्षा ऋतु वर्णन का प्रसंग प्रस्तुत होता है। श्रीराम अपने अनुज लक्ष्मण से वर्षा वर्णन करते हुए कहते हैं कि यह आकाशस्वरूपा तरुणी सूर्य की किरणों द्वारा समुद्रों का रसपान कर कार्तिक आदि नौ मासों तक धारण किये हुए गर्भ के रूप में जलरूपी रसायन को जन्म दे रही है।

नवमासधृश्तं गर्भं भास्करस्य गभस्तिभिः।
पीत्वा रसं समुद्राणां द्यौः प्रसूते रसायनम्॥

इस समय मेघरूपी सोपान पंक्तियों द्वारा आकाश में चढ़कर गिरिमल्लिका और अर्जुनपुष्प की मालाओं से सूर्यदेव को अलंकृत करना सरल सा हो गया है। जो ग्रीष्मऋतु में घाम से तप गई है, वह पृथ्वी वर्षाकाल में नूतन जल से भींगकर शोकसंतप्त सीता की भांति वाष्प विमोचन कर रही है। मेघ के उदर से निकली कपूर की डली के समान ठंडी तथा केवड़े की सुगन्ध से भरी हुई इस बरसाती वायु को मानों अंजलियों में भरकर पीया जा सकता है।

मेघोदरविनिर्मुक्ताः कर्पूरदलशीतलाः।
शक्यमंजलिभिः पातुं वाताः केतकगन्धिनः॥

ये बिजलियां सोने के बने हुए कोड़ों के समान जान पड़ती है। इसकी मार खाकर मानों व्यथित हुआ आकाश अपने भीतर व्यक्त हुई मेघों की गम्भीर गर्जना के रूप में आर्तनाद सा कर रहा है। धरती की धूल शांत हो गई है। अब वायु में शीतलता आ गई है। गर्मी के दोषों का प्रसार बन्द हो गया है। भूपालों की युद्ध यात्रा रुक गई है और परदेसी मनुष्य अपने अपने देश को लौट रहे हैं। मानसरोवर में निवास के लोभी हंस वहां के लिए प्रस्थित हो गये हैं। इस समय चकवे अपनी प्रियाओं से मिल रहे हैं। निरन्तर होने वाली वर्षा के जल से मार्ग टूट-फूट गये हैं। इसलिए उनपर रथ आदि नहीं चल पा रहे हैं। वनप्रान्त मोरों के सुन्दर नृत्य से सुशोभित हो गये हैं। कदम्ब वृक्ष फूलों और शाखाओं से सम्पन्न हो गये हैं।[34]

नवमासधृशतं गर्भं भास्करस्य गभस्तिभिः।
पीत्वा रसं समुद्राणां द्यौः प्रसूते रसायनम्॥
शक्यमम्बरमारुह्य मेघसोपानपंद्रभिः।
कुटजार्जनमालाभिरलंकर्तु दिवाकरः॥
संध्यारागोत्थितैस्ताभ्रैरन्तेष्वपि च पाण्डुभिः।
स्निग्धैरभ्रपटच्छेदैर्वद्धव्रणमिवाम्बरम्॥
मन्दमारुतिनिःश्वासं संध्याचन्दनरंजितम्।
आपाण्डुजलदं भाति कामातुरमिवाम्बरम्॥

संदर्भ-सूची

1. पंच-पहाड़ियों से घिरी-राजगृह: डॉ0 चतुर्भुज
2. पउमचरियं, भाग-1, उद्देश्य-2, गाथा-1-7, पृ.8
3. पउमचरियं, भाग-1, उद्देश्य-2, गाथा-8-14, पृ.8-9
4. पउमचरियं, भाग-1, उद्देश्य-5, गाथा-126-129, पृ.46
5. पउमचरियं, भाग-1, उद्देश्य-8, गाथा-264-270, पृ.103
6. पउमचरियं, भाग-1, उद्देश्य-22, गाथा-96-100, पृ.210
7. पउमचरियं, भाग-1, उद्देश्य-31,गाथा-118-119, पृ.254
8. पउमचरियं, भाग-1, उद्देश्य-32, गाथा-6, पृ.255
9. पउमचरियं, भाग-2, पर्व-79, गाथा-11, पृ.446
10. पउमचरियं, भाग-1, उद्देश्य-8, गाथा-282-283, पृ.104
11. पउमचरियं, भाग-1, उद्देश्य-3, गाथा-134, पृ.28
12. पउमचरियं, पर्व-46, गाथा-66-78, पृ.325
13. पउमचरियं, भाग-1, उद्देश्य-11, गाथा-112-118, पृ.127
14. पउमचरियं, भाग-1, पर्व-43, गाथा-30-33, पृ.309
15. पउमचरियं, भाग-1, उद्दे0-21, गाथा-48-50, पृ.200
16. पउमचरियं, भाग-2, पर्व-92, गाथा-7-10, पृ.484

17. पउमचरियं, भाग-1, उद्देश्य-30, गाथा-2-3, पृ.240
18. पउमचरियं, भाग-1, पर्व-43, गाथा-2-3, पृ.310
19. वा0रा0, 1/5/5-10 पृ.39-40
20. वा0रा0 2/6/11-13, पृ.197
21. वा0रा0, 6/127/6-9, पृ. 585
22. वा0रा0 5/2/ 16-18, पृ.16
23. वा0रा0 6/24/9-11, पृ.262
24. वा0रा0 2/3/31, पृ.190
25. वा0रा0 2/5/5, पृ.195
26. वा0रा0 2/10/12-15, पृ.210
27. वा0रा0 5/4/26-28, पृ.24
28. वा0रा0 5/6(पूरा सर्ग)/ पृ. 27-30
29. वा0रा0 5/7/6-7, पृ.31
30. वा0रा0 5/9/22-23, पृ.35
31. वा0रा0 5/14/3-25, पृ.53-54
32. वा0रा0 3/16/ श्लोक- 4,5,9-12,14 पृष्ठ-528-529
33. वा0रा0 4/1/10-14, पृ.670
34. वा0रा0 4/28/3-6, पृ.750

Scanned with OKEN Scanner

षष्ठ अध्याय

कला पक्ष के अन्तर्गत काव्यगत रमणीयता के सम्पूर्ण तत्त्व अर्थात् भाषा, छन्द, अलंकार, रस, रीति, वक्रोक्ति आदि सभी का विवेचन आ जाता है। लेकिन इस अध्याय में इसका प्रयोग सीमित अर्थ में ही अभीष्ट है। इसी सीमित क्षेत्र के अन्तर्गत भाषा, छन्द, शब्द शक्तियां आदि को ही वर्ण्य विषय के रूप में लिया गया है।

जब से सृष्टि का प्रारम्भ हुआ और लोग एक स्थान पर समूह बना कर रहने लगे तब से आपस में विचारों के आदान-प्रदान के लिए कोई भाषा अवश्य महसूस की गई होगी। सम्भव है वह भाषा हिन्दी, बंगला, अंग्रेजी, उर्दू, संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि नहीं रही होगी। क्योंकि उस काल में कोई भाषा का उदय नहीं हुआ था। भाषा के उदय नहीं होने के कारण विचारों के आपसी आदान-प्रदान के लिए लोगों ने सांकेतिक भाषा का प्रयोग किया होगा। प्राचीन काल के वे सांकेतिक भाषा आज भी हमें कई अवसरों पर देखने को मिलते हैं। हल्दी लगाकर अथवा स्वस्तिक के चिह्न बनाकर शुभ कार्य का संकेत देना और मृत्यु आदि की सूचना देते समय पत्र का एक कोना फाड़ देना- शुभ समाचार लाल चिह्न से और अशुभ समाचार काले चिह्न से दूसरों तक पहुंचाना आदि ऐसे ही संकेत हैं जिन्हें हम पारम्परिक रीति रिवाज मानकर आज भी काम में ला रहे हैं।

भाषा, भाव और विचारों का वाहन होती है। यदि भाव और विचार सबल हैं और लेखक की भाषा समर्थ नहीं है तो वह अपनी अभीष्ट को पाठक तक पहुंचाने में समर्थ नहीं हो सकता है। इसलिए भावों का संकमण भाषा की शक्ति पर निर्भर है। भाषा की शक्ति आधारित होती है शब्द भंडार, शब्द चयन और प्रयुक्त शब्दों की अर्थ शक्ति पर। इसलिए कवि की अभिव्यंजन-शक्ति को आंकने के लिए उसकी भाषा का अध्ययन आवश्यक होता है। कवि की रचना में भावजनित रस के अतिरिक्त कलात्मक रोचकता भी होनी चाहिए। यह रोचकता भाषा की बोधगम्यता, संगीतमयता, श्रुति-मधुरता, उक्ति विलक्षणता आदि भाषा-गुणों पर आधृत होती है। घटनाओं के घात-प्रतिघात और भावों के उतार-चढ़ाव द्वारा उद्भूत प्रभावोत्पकता भाषा की सजीवता से हो जाती है। इसी कारण कलात्मक अभिव्यंजना आंकने के लिए कवि के काव्यगत रमणीयता के अन्य तत्त्वों की अपेक्षा भाषा को सर्वप्राथमिकता दी गई है, क्योंकि काव्य-कमल में अनुपम अर्थ और सुन्दर भाव जहां पराग और मकरंद का स्थान लेते हैं, वहीं सुन्दर भाषा सुगन्ध का, जो काव्यरसिक मधुपों को सहज ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। किसी कवि ने कहा भी है-

किं वा कवितया राजन् किं वा वनितया तथा।
पद-विन्यास-मात्रेण मनः नापहृतं यया।।

यह पद-विन्यास मात्र का सहज एवं सबल आकर्षण काव्यगत अन्य रमणीय तत्त्वों में परोक्ष अथवा गौण रूप से परे, भाषा में ही प्रत्यक्ष एवं प्रधान रूप से देखा जा सकता है। इसके अलावा भी युग-निर्माता कवियों की रचनाओं में उनकी शब्दावलियों में उनके युग के सांस्कृतिक संकेत रहते हैं, जिससे तत्कालीन सांस्कृतिक और सामाजिक इतिहास की दिशा में पर्याप्त सहायता मिलती है।[1]

उपर्युक्त संधारणाओं एवं परिभाषाओं को देखते हुए यह कहना समीचीन होगा कि कविता में गति, लय, तुक और विराम (यति) के माध्यम से भाव एवं गीति सौन्दर्य के रक्षार्थ वर्णों एवं मात्राओं के विधान को छन्द कहते हैं।

इसी संदर्भ में हम यह भी पाते हैं प्राचीन बड़े-बड़े संत एवं भक्त कवियों की मनोवृत्ति जहां एक ओर आत्म-परिचय से विमुख रही है, वहां दूसरी ओर उनका भाषात्मक प्रयोग उनके परिचय-रहस्य की ओर संकेत करते पाये जाते हैं। अतः भाषा की इसी अद्भुत आकर्षण शक्ति एवं सहज रहस्योद्घाटन-प्रकृति से प्रेरणा पाकर हम यहां विमलसूरि कृत 'पउमचरियं' और वाल्मीकि रामायण की भाषागत विशेषताओं पर विचार कर रहे हैं।

पउमचरियं की भाषा

'पउमचरियं' रामकथा से संबद्ध सर्वप्रथम प्राकृत काव्य है। संस्कृत साहित्य में जो स्थान वाल्मीकि कृत रामायण का है, वही स्थान प्राकृत में विमलसूरि कृत रामचरित काव्य पउमचरियं का है। इस ग्रंथ में महाराष्ट्री प्राकृत का परिमार्जित रूप विद्यमान है जिससे प्रतीत होता है कि इसकी रचना दूसरी सदी से पूर्व कभी संभव नहीं है।

इस ग्रन्थ के अन्तः परीक्षण से इसका रचना काल ई0 सन् तीसरी-चौथी शती प्रतीत होता है। इसी शताब्दी में महाकवि रविषेण ने इस चरित काव्य के आधार पर संस्कृत में 'पद्मचरितम्' की रचना की है। इस ग्रंथ में 'दीनार' का उल्लेख और श्री पर्वतवासियों का उल्लेख इस बात को प्रमाणित करते हैं कि विमलसूरि का समय द्वितीय शताब्दी के बाद होना चाहिए। इन तथ्यों से यह प्रमाणित होता है कि पउमचरियं सातवीं शताब्दी के पूर्व इनका स्थितिकाल सुनिश्चित है।[2]

वररुचि कृत 'प्राकृत-प्रकाश' के बारहवें परिच्छेद के बत्तीसवें सूत्र में 'शेषं महाराष्ट्रीवत्' द्वारा अन्य अनुशासनों को महाराष्ट्री से अवगत कर लेने की ओर संकेत है, जब कि इसके पूर्व इस ग्रंथ में महाराष्ट्री शब्द कहीं नहीं आया है और न इस भाषा का कोई अनुशासन ही इस ग्रंथ में उल्लिखित है। अतः यह निष्कर्ष निकालना सहज है कि यह परिच्छेद उस समय जोड़ा गया है, जब यह धारणा दृढ़ हो चुकी थी कि प्राकृत काव्य की भाषा महाराष्ट्री ही होनी चाहिए। इसलिए जहां प्राकृत का निर्देश है, वहां महाराष्ट्री को ही ग्रहण किया जाये।

'प्राकृत-प्रकाश' के बाद महत्त्वपूर्ण कृति आचार्य हेमचन्द्र का प्राकृत व्याकरण है जिसका रचना काल बारहवीं शती है। प्राकृत की विवेचना में रचनाशैली और विषयानुकम के लिए आचार्य हेमचन्द्र ने 'प्राकृत लक्षण' और 'प्राकृत प्रकाश' को ही आधार माना है।

Scanned with OKEN Scanner

इन्होंने प्राय: काव्यग्रंथों की भाषा महाराष्ट्री को ही माना है। आचार्य हेमचन्द्र ने इसे सामान्य प्राकृत कहा है।[3] जैकोबी के कथनानुसार पउमचरियं की रचना अपभ्रंश के साहित्य जगत् में आगमन के पूर्व हो चुकी थी।

प्रत्येक भाषा की अपनी-अपनी विशेषताएं होती हैं। जैन महाराष्ट्री प्राकृत की भी अपनी विशेषताएं हैं जो पउमचरियं में अंशत: व्यवहृत हो पाई है।

पउमचरियं की भाषा की विलक्षण विशेषताएं निम्नलिखित हैं:-

1. वचन में विरोध -- 'भागाविलासिणो अहयं'। उद्देश्य-14, गाथा-108
2. अनाधिकार 'मा' शब्द का प्रयोग-- छट्ठमादीए। उद्देश्य-14, गाथा-131
3. एक व्यंजन का दो नहीं बनना -- अणथन्ते। उद्देश्य-14, गाथा-134
4. कैलाश शब्द का 'कविलास' रूप में उच्चरित होना।
उद्देश्य-9, गाथा-57
5. असत्य समानता-- 'सुकय' की तुलना में 'दुकय' पर्व-118, गाथा-109
6. बिना प्रभावित किये रूप-- 'विसण्णमणा' पर्व-110, गाथा-8
7. कमजोर आधार का प्रयोग -- गुरवं पर्व--113, गाथा-14
8. संस्कृत रूपों में साक्षात् विकृति-- 'जणयन्ति' पर्व-113, गाथा-28

इस काव्य में भाषा को सजीव बनाने के लिए सूक्तियों का प्रचुर परिमाण में उपयोग किया गया है। हनुमान रावण को समझाते हुए सूक्ति का प्रयोग करते हैं:-

1. पत्ते विणासकाले, नासइ बुद्धी नराण निक्खुतं।
सा अक्हा न कीरइ, पुव्वकयकम्मजोएणं।।

पर्व-53, गाथा-138, पृष्ठ-356

विनाशकाल प्राप्त होने पर मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है।

2. मन्दोदरी रावण को समझाते हुए कहती है:-
लद्धपसायाएँ तओ, भणिओ मन्दोयरीएँ दहवयणो।
किं दिणयरस्स दीवो, दिज्जइ वि हु मग्गणट्ठाए?।।

पर्व-70, गाथा-27, पृष्ठ-411

क्या सूर्य को भी मार्ग दिखलाने के लिए दीपक दिया जाता है।

उच्च और वैभवशाली कुल में जन्म लेने पर भी महिला को परगृह में जाना ही पड़ता है। आशय यह है कि कन्या परकीया धन है, इस सूक्ति वाक्य की पुष्टि वाक्य में की गई है:-

3. परगेहसेवणं चिय एव सहावो महिलियाणं । उद्देश्य-6, गाथा-22
महिलाओं का स्वभाव परगृह में जाना ही है। कन्या परकीया धन है।

आचार्य विमलसूरि ने पर्यायवाची शब्दों का समकाल में प्रयोग किया है:- 'सोमससिवयणं' द्ध(देश्य-18, गाथा-27)।

कवि विमलसूरि की भाषा में अनुकरणवाली एक साथ बहुल पाया जाता है। उदाहरणार्थ-- गुमगुमगुमन्त, चीमचीमचीमंत, कठकठकठन्त आदि।

उपर्युक्त संक्षिप्त सर्वेक्षण से ही पउमचरियं की भाषा की जानकारी हो जाती है जो जैन महाराष्ट्री के प्राचीन रूप को प्रकट करता है।

छन्द

कविता में गति, लय, तुक एवं गेयता के रक्षार्थ वर्णों एवं मात्राओं के अनुबन्ध को काव्य की भाषा में छन्द की संज्ञा दी जाती है। हमारे प्राचीन भारतीय आर्षग्रंथ चाहे जिस किसी विषय के प्रतिपादन करते हों, छन्दोबद्ध हैं। प्राचीन काल में छन्दोबद्ध अभिव्यक्ति की भाषा होने के कारण ही वैदिक संस्कृत का नाम छान्दस् पड़ा। पाणिनी शिक्षा में छन्दों को 'वेद पाद' की संज्ञा दी गयी है-

छन्दः पादौ तु वेदस्यः - पाणिनी शिक्षा

षट्शास्त्रों में एक शास्त्र छन्द भी है,[5] जिसे पिंगल भी कहा गया है। पाद विभाग के कारण ही छन्दोबद्ध रचना पद्य कहलाती है। छन्दस्' शब्द की व्युत्पत्ति 'छदि' धातु से बतलायी जाती है। इसका अर्थ है छाना अर्थात् ढंकना, सुरक्षित करना। लोकभाषा में छाना किया है, जिसका अर्थ है ढंक कर सुरक्षित करना। गांवों में मिट्टी के घरों को घास-पुआल अथवा खपड़ैल से ढंककर धूप और वर्षा से सुरक्षा करने के लिए छादन अथवा छाना किया का प्रयोग हुआ है। रामचरितमानस की अवधी भाषा में भी इस क्रिया का प्रयोग हुआ है।

'गत ग्रीषम वर्षा ऋतु आई।
रहिहउँ उहां सैल पर छाई।।''

यहां छांदन शब्द (छाना) सुरक्षित करना अर्थ में प्रयुक्त है। 'छन्द' शब्द भी इसी छद् धातु से निष्पन्न है। वर्णों और मात्राओं के अनुबंध से लय की सुरक्षा होती है और यह लय भाव को सुरक्षित रखने में सहायक है इसलिए उस वर्ण मात्रात्मक विधान का नाम छन्द पड़ा।

कुछ विद्वानों ने छादन का अर्थ बन्धन बतलाया है। तदनुसार ''छन्द शब्द का अर्थ छादन अर्थात् बन्धन भी है। इसमें वर्ण और मात्राएं बंधी रहती है। छन्दभाव नदी की प्रवाहमान धारा के लिए तटबन्ध का काम करते हैं ताकि जलधारा अनियमित और उच्छृंखल होकर जनपीड़ा का कारण न बन जाएं। अतः छन्द वर्ण मात्राओं पर नियंत्रण द्वारा काव्य सौष्ठव के उत्कर्ष तथा सौंदर्य बन्धन के साथ सांगीतिक तत्वों को परिपुष्ट करते हैं।''[6]

वेद, विश्व साहित्य के प्राचीनतम साहित्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उन वेद चतुष्ट्य में भी सर्वाधिक प्राचीनता ऋग्वेद की है। वह छन्दोबद्ध है तत्पश्चात् सम्पूर्ण वैदिक साहित्य छन्दोबद्ध है। अतः छन्द काव्य रचना का प्राचीनतम विधान है। हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार छन्द शब्द का प्रथम उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है।[7]

महर्षि पाणिनी ने 'छन्द' का अर्थ आह्लादन बतलाया है। इस शब्द को उन्होंने 'चदि' धातु से उत्पन्न बतलाया है। ''चदि आह्लादन दीप्तौ च'' अर्थात् चदि किया का अर्थ आह्लादन या दीपन है। ''चदेरादेश्च छः'' सूत्र के अनुसार 'च' का परिवर्तन 'छ' में हो जाने से 'चन्दति' का रूप 'छन्दति' में परिणत हो जाता है। अर्थात् जो हर्ष और

दीप्ति प्रदान करे, वही छन्द है। इस आह्लाद काव्य के कारण वह रस का साधक तत्व बन जाता है।

भारतीय काव्य की सुदीर्घ परम्परा में विद्वानों ने छन्द को अनेक तरह से परिभाषित किया है। पाणिनीय शिक्षा में वेद पुरुष के छः अंगों के रूप में वेदांगों की प्रतिष्ठा हुई है। इसमें छन्द पिंगल भी एक वेदांग है। तदनुसारः-

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तो कल्पो च पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणस्मृतम्।
तस्यात्सांगमधीत्येव ब्रह्मलोके महीयते॥

श्री पिंगलाचार्य ने छन्द को अक्षर संख्या का परिणाम बतलाते हुए कहा है-"छन्दः शब्देनाक्षर संख्या वच्छन्दो त्राभिधीयत।"[8]

ऋग्वेद में छन्द के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए उसे 'अक्षरपरिमाण' कहकर परिभाषित किया गया है-**यस्य वाक्यं स ऋषिः। या तेनोक्ते सा देवता। यद्क्षर परिमाणं तच्छन्दः।**[9]

भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा के आद्य आचार्य भरतमुनि ने छन्द को परिभाषित करते हुए कहा है-

एवं नानार्थसंयुक्तैः पदैर्वर्णविभूषितैः।
चतुर्भिस्तु भवेद्युक्तं छन्दो वृत्ताभिधानवत॥[10]

अर्थात्- विविध अर्थों से युक्त (नानार्थयुक्त) चार पादों (चरणों) से और वर्णों से विभूषित वृत्त छन्द कहलाता है।

आचार्य विश्वनाथ ने छन्द की परंपरिक परिभाषा को स्वीकारते हुए काव्य रचना में उसे अतिशय महत्त्वपूर्ण बतलाया है। तदनुसार छन्दोबद्ध पद ही पद्य है। अर्थात् जो रचना छन्दोबद्ध नहीं है वह पद्यसाहित्य के रूप में कतई ग्राह्य नहीं। तदनुसार- "छन्दोबद्ध पदं पद्यं तैन मुक्तेन मुक्तकम्।"[11]

हिन्दी के रीतिकालीन आचार्य श्री जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' के अनुसार-

मत्त वरण यति गति नियम अन्तहि समता बन्द।
जो पद रचना में मिलें 'भानु' भनत सोई छन्द॥

अर्थात्- जिस पद रचना में मात्रा, वर्ण, यति, गति के नियमों का अनुसरण होता है और अन्त में अन्त्यानुप्रास होता है, वह छन्द है।

कवि सुमित्रानन्दन पंत के अनुसार--"कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छन्द सत्कम्पन, कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होता है।[12]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने छन्द को साधन एवं अभिव्यंजना का उपकरण बतलाते हुए कहा है-"अर्थमयी भाषा और संगीत के मिलने से छन्द की सृष्टि होती है।"[13]

कवीन्द्र रवीन्द्र ठाकुर के अनुसार-"छन्द रूप साहित्य है और काव्य साहित्य केवल रस साहित्य है। साधारणतया शब्द-समूह अर्थ वहन करता है, किन्तु छन्द उसका रूप ग्रहण करता है।

छन्द के सम्बन्ध में कुछ पाश्चात्य विद्वानों की धारणाएं भी उल्लेखनीय हैं। अंग्रेजी में छन्द के लिए meter शब्द का प्रयोग होता है जो लैटिन की mete धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है- to measure जो संस्कृत की 'मात्रा' शब्द के समीप है जिसका अर्थ है-माप (one that measure) क्रिया के रूप में इसका प्रयोग मापने के पर्याय हैं। यों तो अंग्रेजी के बहुत सारे विद्वानों ने 'लय' के महत्व को स्वीकारते हुए छन्द की महत्ता स्वीकार की है। फिर भी उनमें से कुछेक मंतव्य उल्लेखनीय हैं।

डॉ0 वीवर के अनुसार-"The un-duration of sound produced by the continuous flow of accent and non accent is known as rhythum and that which tutes the essential difference between poetry and prose." [14]

अर्थात्- स्वराघात (**accent**) और निराघात (non accent) के निरन्तर प्रवाह से उत्पन्न ध्वनि तरंग को (rhythum) कहते हैं, जिससे गद्य और पद्य के भेद परिलक्षित होते हैं।

लैसल्स एवरकाम्बी (Laisals Evercrambi) ने उक्त परिभाषा को और भी स्पष्ट करते हुए अपनी परिभाषा दी है:-

"Meter is the modulated repetition of a rhythmical pattern."[15]

अर्थात् लयात्मक आदर्श की निश्चित आवृत्ति को छन्द कहते हैं।

उपर्युक्त समस्त परिभाषाओं एवं मान्यताओं को आयत्त करते हुए डॉ0 (श्रीमती) मिथिलेश कुमारी मिश्र ने कहा है कि 'छन्द काव्य का इतना रमणीय तत्त्व है कि प्राचीनकाल का लगभग समस्त वाङ्मय (आयुर्वेद, इतिहास, धर्मशास्त्र, राजनीतिशास्त्र आदि) छन्दोबद्ध रूप में उपलब्ध होता है। रवीन्द्र नाथ टैगोर ने मुक्त छन्द का पक्षपात करते हुए भी कविता को भाव का ही छन्दोरूप माना है।[16]

डॉ0 रामकृष्ण मिश्र ने विविध परिभाषाओं की गवेषणा करते हुए अपनी मान्यता इस प्रकार दी है--" अतएव छन्द को परिभाषित करने के क्रम में कहा जा सकता है कि छन्द काव्य लेखन की प्रक्रिया की एक सहायक शब्द योजना है, जिसमें निश्चित मात्रा, वर्ण, यति तथा गति का समुचित समावेश होता है।[17]

हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार अक्षर, अक्षरों की संख्या एवं क्रम, मात्रा की गणना तथा यति गति आदि से सम्बन्धित विशिष्ट नियमों से नियोजित रचना छन्द कहलाती है।[18]

व्यावहारिक रूप से देखा जाता है कि छन्द में व्यवस्थित वर्णों एवं मात्राओं में एक भी न्यूनाधिक्य से उसकी लयात्मकता बाधित हो जाती है तथा पढ़ने में (सस्वर पाठ में) व्यवधान उत्पन्न होने लगता है। अतः लय और नाद, सौन्दर्य के माध्यम से भाव सौन्दर्य के रक्षार्थ कविता में छंद का विधान महत्त्वपूर्ण है। हमारे सम्पूर्ण लोक-काव्य चाहे वे प्रबन्ध काव्य हों या प्रगति काव्य, छन्दोबद्ध हैं क्योंकि वे वर्णों एवं मात्राओं के विधान

Scanned with OKEN Scanner

में अनुशासित है। शिष्ट महाकाव्य भी प्रायः छन्दोबद्ध हैं। बीसवीं शताब्दी में हिन्दी साहित्य में मुक्त छन्द को स्वीकार किया गया इसके प्रवर्तक कविवर सूर्यकांत त्रिपाठी निराला माने जाते हैं। तदन्तर हिन्दी कविता तथा लोकभाषाओं के शिष्ट साहित्य जिसमें मगही साहित्य भी परिगणनीय है, मुक्त छन्द का प्रयोग आरम्भ हुआ किन्तु वहां भी लय की रक्षा अनिवार्य रूप से की जाती है। छन्दोबद्धता के कारण जहां छन्दोबद्ध कविता में शब्दों के पर्याय ढूंढ़ने पड़ते हैं जो कभी-कभी उपयुक्त अर्थ गौरव को धारण करने में असमर्थ हो जाते हैं; का संकट छन्दमुक्त कविता में नहीं होता। वहां भाव के रक्षार्थ उपयुक्त शब्द प्रयोग की महत्ता होती है छन्द के लिए वर्णों और मात्राओं का बंधन प्रायः निरस्त होता है।

लय छन्द का प्राण तत्त्व है। छन्द में वर्णों और मात्राओं का विधान इस लय के रक्षार्थ ही प्रायोजित है। मात्राओं और वर्णों के विधान में स्वर का प्रमुख स्थान है। स्वर रहित वर्ण व्यंजन हमेशा अपूर्ण और अमात्रिक होते हैं । वर्णों और मात्राओं का आधारभूत तत्त्व स्वर है इसके बिना लय की रक्षा संभव नहीं। स्वरों के संतुलन से ही काव्य में लय सुरक्षित होता है। डा0 पत्तूलाल शुक्ल ने छन्द को परिभाषित करते हुए उसे वह वैखरी ध्वनि बतलाया है जो प्रत्यक्षीकृत निरंतर तरंगभंगिका से आह्लाद के साथ-साथ भाव और अर्थ की अभिव्यंजना करती है। यहां तरंग भंगिका का कारण भूत तत्त्व लय ही है जिससे कविता में आह्लादकता आती है। ये लय भाव और अर्थ की अभिव्यंजना में पूर्णतः सहयोगी है। लय से अभिव्यक्ति को एक भंगिका प्राप्त होती है, जिससे अर्थ संधारण में सहायता मिलती है। उदाहरणार्थ रामचरितमानस की एक पंक्ति द्रष्टव्य है :-

मैं सुकुमारि नाथ वन जोगू।
तुम्हहिं उचित तप मो कहं भोगू॥

उपर्युक्त पंक्ति का अर्थ भावात्मक भी है, निषेधात्मक भी। कवि का ध्येय निषेधात्मक अर्थ प्रतिपादन यहां अर्थ-संग्रहण में पाठक का लय सहायक होता है। इस लय में स्वरों का संघात महत्वपूर्ण होता है। स्वरों के आधार पर ही गणों और मात्राओं की गणना होती है। छन्द शास्त्र के स्वर दो प्रकार के होते हैं-(1) ह्रस्व तथा (2) दीर्घ। ह्रस्व स्वर की मात्रा एक तथा दीर्घ की दो मात्राएं मानी जाती है। वैदिक छन्दों में तीन मात्राओं के स्वर भी उपलब्ध हैं जिन्हें धातु स्वर की संज्ञा दी गयी है। वेदान्तर साहित्य में प्लुत स्वर के प्रयोग नहीं मिलते। लय की सुरक्षा इन स्वरों की सहायता से होती है। स्वर-मात्राओं की न्यूनाधिक्य से लय में व्यवधान उपस्थित होता है।

हिन्दी साहित्य कोश में लय सम्बन्धी अवधारणा इस प्रकार है-"लय की निष्पत्ति, गति, प्रवाह और यति, विराम के पारस्परिक एवं क्रमिक संघात से होती है। लय का स्वरूप तत्वतः आवृत्तिमूलक है तथा उसकी व्याप्ति दिक् और काल दोनों में है। संगीत और कविता में लय काल सापेक्ष रहता है और चित्रकला, मूर्तिकला तथा वास्तुकला में दिक् सापेक्ष। इस प्रकार लय की व्याप्ति सभी ललित कलाओं में पायी जाती है। गायन वादन और नृत्य संगीत के उन तीनों अंगों को परस्पर सूत्रबद्ध करने वाली वस्तु लय ही है। काव्य में यह शब्द संगीत के क्षेत्र से ही आया प्रतीत होता है। संगीत शास्त्र में लय

के तीन भेद मिलते हैं द्रुत, मध्यम और विलम्बित। संस्कृत वृत्त में द्रुत विलम्बित को यह नाम इसलिए मिला कि उसके प्रत्येक चरण के प्रारम्भिक अंश में द्रुत लय और अन्तिम अंश में विलम्बित लय होती है। छन्द के प्रत्येक पाद की गति लय समन्वित मानी जाती गयी है, यथा पादन्यासो लयमनुगतः। लय की एक महत्वपूर्ण विशेषता उसकी सम्मरण शक्ति (power of integration) है, जिसके द्वारा वह विभिन्न तत्वों को संग्रथित करती हुई श्लिष्टता प्रदान करती है। उसका एक और उल्लेखनीय गुण है-अपने क्रमिक संस्पर्श से भावावेग को उद्दीप्त करने की क्षमता।

कला काव्य और संगीत में ही नहीं सामान्य जीवन में भी लय तत्व की घनिष्ट व्याप्ति मिलती है। श्वास प्रश्वास हृद्गति ऋतुचक्र, दिन-रात आदि का अनुभव क्रमिक रूप से लयात्मकता के साथ ही होता है। लय और जीवन की यह घनिष्टता ही कदाचित् कला आदि के क्षेत्र में उसके विशेष आकर्षण के मूल कारण हैं।[19]

लय के परिणाम स्वरूप कविता गेय बनती है। गेयता के परिणामस्वरूप उसे पढ़ना, भावन करना तथा स्मृति में संचित करना सुगम हो जाते हैं; यही कारण है कि पाठक जितनी आसानी से कविता को याद कर लेते हैं उतनी आसानी से वे गद्य को (कहानी, निबंध, उपन्यास आदि को) याद नहीं कर पाते। कविता की 'लयात्मकता' पूर्णतः स्वर पर आधारित है। स्वर संगीत कला और काव्य कला दोनों ही में भाव सौन्दर्य का सन्धान करते हैं। गायक किसी भी संगीत को स्वर और ताल की मात्राओं में बांधकर उसे प्रस्तुत करके मनोमुग्धकारी बनाता है। उसमें गेयता तथा भाव सौन्दर्य की सृष्टि होती है। डॉ0 रामकृष्ण मिश्र के अनुसार छन्द वर्ण मात्राओं पर नियंत्रण द्वारा काव्य सौष्ठव में उत्कर्ष तथा सौन्दर्यवर्धन के साथ सांगीतिक तत्वों को परिपुष्ट करते हैं। तात्विक दृष्टि से विचार करते हुए उन्होंने छन्द के चार मूल तत्व बतलाये हैं। छन्द के स्वरूप का विवेचना करते हुए ये चारों तत्वों का संक्षिप्त परिचय दे देना यहां प्रासंगिक है।

मात्रा - 'मात्रा' शब्द डॉ0 मिश्र के अनुसार उच्चरित ध्वनि के इकाई का बोधक है। इस मात्रा का मूल आधार स्वर है। हमारे छन्दशास्त्रियों ने मात्रा के दो भेद बतलाये हैं-(1) ह्रस्व और (2) दीर्घ। ये दो भेद स्वर के भी हैं। छन्दों में स्वरों के आधार पर ही ह्स्व और दीर्घ मात्राओं की गणना होती है। ह्रस्व वर्ण की (स्वर की) एक मात्रा तथा दीर्घ वर्ण की दो मात्राएं होती है। ह्रस्व मात्रा का संकेत '।' तथा दीर्घ मात्रा का संकेत ऽ होता है। हमारे वैयाकरणों ने वर्णों के बारे में बतलाते हुए कहा है

एकमात्रो भवेद् ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यंजने चार्द्ध मात्रिकम्॥[20]

अर्थात्- ह्रस्व स्वरों की मात्रा एक, दीर्घ स्वरों की दो, प्लुत स्वरों की तीन तथा व्यंजनों की मात्रा आधी होती है। लघु गुरु पर विचार करते हुए श्रुतबोध में एकमात्रिक यानि ह्रस्व वर्ण को लघु तथा द्विमात्रिक यानि दीर्घ वर्ण को गुरु की संज्ञा दी गयी है। महाकवि कालिदास के अनुसारः-

संयुक्ताद्यंदीर्घ सानुस्वारं विसर्ग सम्मिश्रम्।
विज्ञेयमक्षरं गुरुं पादान्तस्थं विकल्पेन॥

Scanned with OKEN Scanner

अर्थात्- संयुक्ताक्षर से पूर्व का वर्ण (ह्रस्व होकर भी) दीर्घ होता है, दीर्घ स्वर से युक्त वर्ण, अनुस्वार और विसर्ग से युक्त वर्ण दीर्घ होते हैं। यानि इनकी मात्रा गुरु होती है। छन्दोमंजरी में इसे और भी ज्यादा स्पष्ट किया गया है:-

सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गी च गुरुर्भवेत्।
वर्ण संयोग पूर्वश्च तथा पादान्त कर्हिचत्॥[21]

हिन्दी साहित्य कोश में भी वर्ण को परिभाषित करते हुए बतलाया गया है कि नाद के तात्त्विक चिरन्तन रूप को अक्षर और उसके लिखित व्यक्त रूप को वर्ण की संज्ञा दी जाती है। वर्ण दो प्रकार के माने जाते हैं-(1) ह्रस्व तथा (2) दीर्घ। छन्द शास्त्र में ह्रस्व के लिए लघु तथा दीर्घ के लिए गुरु शब्द का प्रयोग होता है।

स्पष्ट है कि छन्द शास्त्र में वर्ण गणना का मूल आधार स्वर ही है। ये स्वर ही लय साधना के मूल एवं आधारभूत तत्व है। किसी भी वर्ण की मात्रा उसमें सम्पृक्त स्वरों के आधार पर परिगणित होती है।

यति

छन्द के दूसरे तत्व के रूप में यति की चर्चा होती है। यति का अर्थ है विराम। डा0 रामकृष्ण मिश्र ने यति को परिभाषित करते हुए कहा है-''कविता में चरण की निश्चित गति के ठहराव को यति कहते हैं।''[22] स्पष्ट है कि वर्णों की तरह ही लय के रक्षार्थ छन्द में यति की भी व्यवस्था होती है, जिस तरह स्वर के न्यूनाधिक्य अथवा हेर-फेर से छन्द की लयात्मकता बाधित होती है, वैसे ही यति के हेर-फेर से भी उसमें व्यवधान आते हैं। उदाहरणार्थ:-

सज्जन-चकोर गए प्रफुल्लित मानि मद में मोह को,
सहृदय शुचि कुमुद विकशे विसद बन्धु विनोद को,
छिटकी सुहिन्वी चन्द्रिका आनन्द अतिहिं विधायिनी,
यह भारतेन्दु भयो उदय धरि कुन्ति जो सुखदायिनी।[23]

हरिगीतिका छन्द के प्रत्येक चरण में अठाईस मात्राएं होती है। यह एक सममात्रिक छन्द है। उसके प्रत्येक चरण में कहीं-कहीं चौदह मात्राओं पर तथा कहीं-कहीं सोलह एवं बारह मात्राओं पर यति होती है।[24] हिन्दी साहित्य में प्रयुक्त हरिगीतिका छन्दों में प्राय: चौदह मात्राओं पर ही यति का प्रयोग मिलता है। यहां द्रष्टव्य है कि यति को पन्द्रह या तेरह मात्राओं का देने से ही लय बाधित होता है और छन्द की चारुता जाती रहती है। नाद सौन्दर्य बिखर जाता है। उपर्युक्त उदाहरण हरिगीतिका छन्द का ही है। रामचरितमानस में इस छन्द के प्रयोग अनेक स्थलों पर हुए हैं।

इस तरह लगभग प्रत्येक छन्द में अलग-अलग मात्राओं पर यति का विधान होता है, जिससे गेयता एवं लयात्मकता सुरक्षित होती है।

गति

छन्द के तीसरे आवश्यक तत्व के रूप में गति का स्थान है। गति का शाब्दिक अर्थ है-प्रवाह। डॉ0 रामकृष्ण मिश्र के अनुसार - छन्द की नियंत्रित धारावाहिता को गति कहते हैं। नियंत्रित धारावाहिता का तात्पर्य प्रवाह की लघुरूपता से है जिसके आधार पर सांगीतिक सौन्दर्य तथा माधुर्य का आस्वादन होता है। छन्द के नियमित और संधि गतिमयता पर ही संगीत के ताल लय का माधुर्य निर्भर करता है।[25]

स्पष्ट है कि लय एवं सांगीतिक सौन्दर्य के रक्षार्थ ही काव्य में गति की अनिवार्यता है। गति के विघटन से अथवा उसके अभाव में भी काव्य की लयात्मकता बाधित होती है। गति का मुख्य आधार भी स्वरों का आरोह अवरोह होता है। इस दृष्टि से वैदिक छन्दों में तो ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत करके स्वरों के तीन भेद तथा उदात्त अनुदात्त और स्वरित करके उन तीनों के भी तीन तीन उपभेद यानि कुल मिलाकर नौ प्रकार के स्वरों की व्यवस्था बतलायी गयी है।[26] उक्त स्वर भेदों के सही अंदाज के बिना गायक किसी भी संगीत को प्रस्तुत करने में असमर्थ हो जाता है। अत: कविता या छन्द को गति प्रदान करने के लिए भी स्वर-प्रकृतियों का (स्वर भेदों का सम्यक ज्ञान अपेक्षित है)। वैदिक छन्दों की तरह लोक संगीत एवं शास्त्रीय संगीत में भी इसका महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।

चरण

प्राय: प्रत्येक छन्द में चार चरण होते हैं। चरण को 'पाद' या पद भी कहा जाता है। छन्द में किसी पंक्ति के मुख्य विराम अथवा यति पर समाप्त होने वाली पंक्ति चरण कहलाती है। परन्तु प्रत्येक छन्द में चार ही चरण हो यह अनिवार्य नहीं है। वेदों में दो तीन और छ: चरणों के छन्द भी मिलते हैं। यजुर्वेद में ऐसी चर्चा आयी है:-

द्विपदायाश्चतुष्पदास्त्रिपदायाश्चषट्पदा:।
विच्छन्दाया: सच्छन्दा: सूचिभि: सम्यन्तुत्वा॥

हिन्दी में भी कुण्डलियां और छप्पय जैसे छन्दों में छ: चरण हुआ करते हैं। शेष छन्द प्राय: चार ही चरण के होते हैं।

कुल मिलाकर चरण छन्द का वह विरामस्थल है जहां शब्द के साथ-साथ ही भाव भी सुनिश्चित हो जाते हैं। जैसे गिरिधरदास की कुंडलियां में:-

''सांई वैर न कीजिए, गुरु पंडित कवि चार।
बेटा वनिता पौरिया यज्ञ करावन हार॥''

यहां पूरी कुंडलिया नहीं मात्र उसके दो चरण उद्धृत किये गये हैं। चरण के वीच में भी यति है किन्तु यहां भाव पूरा नहीं हो पाता। 'सांई वैर न कीजिए' के बाद यति है। परन्तु यहां प्रश्न बना रहता है-किससे? 'गुरु पंडित कवि चार' कहने पर चरण भी पूरा हो जाता है। वाक्य भी पुन: दूसरे चरण में उसका विस्तार होता है। अन्य चरणों में भी पूरा पूरा वाक्य पूरा पूरा भाव को अभिव्यक्त करता है। अंत में पूरे छन्द में एक भाव की पूरी अभिव्यक्ति हो जाती है।

तुक

छन्द के चरणान्त में प्राप्त होने वाले वर्ण साम्य तुक कहलाते हैं। प्राचीन साहित्य में छन्द में और तत्वों की तरह तुक को भी ध्यान में रखा जाता था। कविताएं प्राय: तुकान्त होती थी। सम्प्रति अतुकान्त छन्द भी अपने पूर्ण अस्तित्व में है। अत: तुक की दृष्टि से सम्प्रति छन्द दो प्रकार के पाये जाते हैं--(1) तुकान्त और (2) अतुकान्त। कुछ विद्वानों

Scanned with OKEN Scanner

ने तुकान्त कविता में अव्यातुप्रास के आलंकारिक संयोग को भी बतलाया है। कविता में लय के साथ उन तुकों का भी अविच्छिन सम्बन्ध है। ये तुक भी लय की रक्षा में सहयोगी है।

गण

गण छन्द के बड़े ही महत्वपूर्ण अवयव हैं। तीन वर्णों के समूह को गण कहते हैं। वेदों में छन्दों को अक्षर ब्रह्म का रूप माना गया है। तदनुसार गणों के देवता, फल, प्रभाव, अवतार आदि की बातें आती है। गण आठ प्रकार के होते हैं। प्रत्येक गण में निर्धारित मात्रा क्रम से तीन वर्णों का समाहार होता है। मात्राओं (स्वरों) के परिवर्तन से गण बदल जाते हैं। उदाहरणार्थ 'अनल' और 'पावक' दोनों एक ही अर्थ के बोधक तीन अक्षरों वाले शब्द हैं जिसका अर्थ है 'अग्नि'। किन्तु जहां 'पावक' भगण है-(ऽ।।) वहीं 'अनल' नगण। पहले (भगण) के देवता चन्द्रमा है, उसका फल यश है, प्रभाव शुभ है तथा रामावतार के रूप में परिगणित है। वहीं दूसरा नगण के देवता स्वर्ग, फल सुख, प्रभाव शुभ तथा अवतार नृसिंह है।

प्राचीन काल के कविर्मनीषी उक्त तत्वों को ध्यान में रखकर सुविचारित ढंग से छन्द प्रयोग करते थे। ज्योतिषशास्त्र के मर्मज्ञ पंडित, परम रामभक्त गोस्वामी तुलसीदास ने बड़े ही सुविचारित ढंग से 'रामचरितमानस' का आरम्भ 'वर्णानां' यानि भगण से किया है, जिसके देवता चन्द्रमा, फल यश, प्रभाव शुभ तथा अवतार श्री राम हैं।

भारतीय छन्दशास्त्र में गणों की संख्या आठ बतलायी गयी है। इसका स्वरूप इस प्रकार है:-

> **आदि मध्यावसानेषु भजसा यान्ति गौरवम्।**
> **मरता लाघवं यान्ति मनौ तु गुरु लाघवम्।।**[27]

अर्थात्- भगण, जगण और सगण में क्रमशः आदि मध्य और अन्त में गुरु मात्रा वाले वर्ण तथा शेष दो लघु मात्रा वाले वर्ण होते हैं। इसी प्रकार भगण, रगण और नगण में क्रमशः आदि मध्य और अन्त में लघु वर्ण तथा शेष दो गुरु वर्ण होते हैं। मगण में तीनों वर्ण गुरु तथा नगण में तीनों वर्ण लघु होते हैं।

वृत्त रत्नाकर में इस बात को दूसरे तरह से या कहें कि और भी स्पष्ट रूप से बतलाया गया है। यथा:-

> **मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्चनकारो,**
> **भादिगुरुः पुनरादि लघुर्यः।**
> **जो गुरु मध्य गतो रस मध्यः,**
> **सोऽन्तगुरु कथितोन्त लघुस्तः।।**

इस प्रकार गणों की कुल संख्या आठ हैं। इसका स्वरूप इस प्रकार बनता है:-

(1) मगण ऽऽऽ तीनों गुरु
(2) ऋनगण ।।। तीनों लघु
(3) भगण ऽ।। आदि गुरु, मध्य और अन्त लघु
(4) यगण ।ऽऽ आदि लघु मध्य और अन्त गुरु

(5) जगण ।ऽ। आदि अन्त लघु, मध्य गुरु
(6) रगण ऽ।ऽ आदि अन्त गुरु मध्य लघु
(7) सगण ।।ऽ आदि मध्य लघु, अन्त गुरु
(8) तगण ऽऽ। आदि मध्य गुरु अन्त लघु

इस प्रकार आठों गणों का स्वरूप स्पष्ट होता है। यों छन्द शास्त्रीय ग्रन्थों में गणों के शुभाशुभ फल, मित्रादि वर्ग की संज्ञा, ब्रह्म के अवतारों के स्वरूप देवता आदि की चर्चा आयी है । किन्तु यहां उतना अधिक विवेचना प्रासंगिक नहीं।

स्पष्ट है कि गणों का स्वरूप भी मूलतः स्वरों पर आधारित होता है। छन्द रचना में उन गणों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विशेष छन्द में विशेष गणों का विधि-निषेध का विधान है। इससे लय का संपोषण होता है। उदाहरणार्थ- चौपाई के अंत में यदि भगण और नगण का प्रयोग हो जाये तो उसकी लयात्मकता बाधित हो जाती है। इसलिए सोलह मात्राओं के सम मात्रिक छन्द चौपाई के चरणांत में नगण और भगण का प्रयोग निषिद्ध है क्योंकि इन दोनों गणों के अंतिम दोनों वर्ण लघु होते हैं, जबकि चौपाई में चरणान्त के गुरु होने का विधान है।

वर्णों एवं मात्राओं की गणना किन्हीं दृष्टि से छन्दों का वर्गीकरण (1) मात्रा वृत्त तथा (2) वर्ण वृत छन्द के रूप में किया जाता है। जिसमें वर्णों की गणनानुसार छन्द का निर्माण होता है। वे वर्णवृत्त अथवा वर्णिक छन्द हैं, जिसमें मात्राओं की गणना के अनुसार छन्द का निर्माण होता है। वे मात्रावृत्त छन्द कहलाते हैं। इनके भी सम, विषम और अर्द्धसम करके तीन तीन भेद हो जाते हैं। इससे ये स्पष्ट किया जा सकता है:-

छन्द

!	!
वर्ण वृत	मात्रा वृत
!	!
समवर्ण	सममात्रिक
अर्द्धसमवर्ण	अर्द्धसममात्रिक
विषमवर्ण	विषममात्रिक

काव्य सौन्दर्य में छन्द की अनिवार्यता

काव्य को सुन्दर बनाने में छन्द का महत्वपूर्ण स्थान है। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर विशेष मात्रा संख्या और विशेष वेग गति इन दो के संयोग को छन्द मानते हैं। वे छन्द शिल्प को एक संस्कृति मानते हैं। उनके अनुसार -"छन्द एक रूप साहित्य है और काव्य साहित्य केवल रस साहित्य है। साधारण तथा शब्द समूह अर्थ वहन करता है, किन्तु छन्द उसका रूप ग्रहण करता है।"[28]

स्पष्ट है कि कविता का कलेवर छन्दों में अभिव्यक्त होता है। छन्द भाव सौन्दर्य का संवाहक है। दूसरे शब्दों में कविता में सन्निहित भाव-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति छन्दों

Scanned with OKEN Scanner

के माध्यम से होती है। डॉ0 मिथिलेश कुमारी मिश्र के अनुसार -''काव्य को आच्छादित करनेवाला तथा मुग्धकरण की शक्ति से सम्पन्न तत्त्व छन्द ही है। छन्द के द्वारा कल्पना का रूप सजग होकर मन के दर्पण से स्पष्ट रहता है। उन भावों को ग्रहण करने में मन की सुगमता होती है। छन्द अपरिवर्तनशील होता है। काव्य की धारा उसे प्रभावित नहीं कर पाती। छन्दोबद्ध भाव ही अमरत्व प्राप्त करते हैं। मानव के इतिहास में उत्थान पतन के झोंके सदैव से छन्दों में ही व्यक्त होते रहे हैं। छन्द में भाव को प्रेषित करने की अद्‌भुत शक्ति होती है। वैदिक काल से अब तक अनेक विद्वानों ने छन्द को काव्य के महत्वपूर्ण अंग के रूप में स्वीकार किया है।[29]

पिंगल शास्त्र में तो छन्द को इन्द्र को उपदिष्ट ब्रह्म का वरदान बतलाया गया है:-

छन्दोज्ञानमिदं भवाद् भगवतो लेने सुराणां पतिः।
तस्माद्दुश्च्यवनस्ततः सुरगुरूर्माण्डव्य नामा कवि॥
माण्डव्यादपि सैवतस्तत ऋर्षियास्कस्ततः पिंगल।
स्तस्येदं यशसा गुरोर्मुविधृतं प्रात्यास्मदाधै कृतम्॥[30]

अर्थात्- इस छन्द ज्ञान को भगवान शिव से देवराज इन्द्र ने, उनसे दुश्च्यवन ने, उनसे देवगुरु वृहस्पति ने, उनसे माण्डव्य नामक कवि ने, उनसे महर्षि सैवत ने, उनसे महर्षि यास्क ने, उनसे पिंगल ने पुनः प्राप्त गुरु परम्परा द्वारा अविच्छिन्न रूप से यह अद्यावधि प्रवाहित होता रहा है।

काव्य में छन्द, भाव को अमरत्व प्रदान करते हैं। वह भाव ही सौन्दर्य का अधिष्ठा(भाव सौन्दर्य) को चिरंतनता प्रदान करता है। इसके संरक्षणार्थ काव्य में छन्द की अनिवार्यता है। छन्दों के कारण ही हमारे वैदिक साहित्य चिरंतन है, अमर है। कालिदास, भवभूति, कवीर, सूर और तुलसी जैसे कवियों को उनके छन्द ही अमरता प्रदान करते हैं। छन्दोबद्ध भाव भावनाओं के लिए सहज हृदयग्राह्य होता है। गद्य पांडित्य का परिचायक हो सकता है। भाव को अमरत्व एवं चिरंतनता नहीं दे सकता। काव्य में सौन्दर्य के रक्षार्थ छन्द का महत्व बतलाते हुए डॉ0 (श्रीमती) मिथिलेश कुमारी मिश्र का कथन सर्वथा समीचीन है-''छन्द काव्य के सौन्दर्य बोध का महत्वपूर्ण साधक तत्व है। इसके स्वरूप और विश्लेषण से ज्ञात होता है कि वस्तुतः काव्य चिन्तकों ने इसपर गम्भीरता से विचार भी किया है।[31]

सारांशतः कहना समीचीन होगा कि काव्य-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की समग्रता के लिए छन्द कविता का अनिवार्य तत्व है। शब्द और अर्थ काव्य के शरीर हैं, छन्द उनका सम्यक् विन्यास करता है। छन्दों में अर्थ के संवाहक शब्दों की एक व्यवस्था होती है, जो कविता को एक गठन, एक सुष्ठुता प्रदान कर उसकी आत्मा रस का उपकार करते हैं।

रस मीमांसकों ने इस तथ्य को मुक्तकंठ से स्वीकार किया है कि रस निष्पत्ति तब तक सम्भव नहीं है, जब तक उसके प्रकाशन की शैली उपयुक्त न हो। इसी प्रकाशन शैली में गुण या वृत्तियों की कल्पना की गई है। माधुर्य, ओज और प्रसाद गुण, अथवा कैशिकी, सात्वती, आरभटी और भारती वृत्तियाँ रस के लिए उपयुक्त शैलियां परिश्चित

की गई हैं। इन गुणों या वृत्तियों का लक्ष्य रस निष्पत्ति के साथ ही वातावरण को उपस्थित करने में भी रहा है, जिनका सम्बन्ध ध्वनि या नाद से है। लक्षणकार तो इन गुणों और वृत्तियों को रस का शरीर ही मानते हैं। जिस प्रकार बिना शरीर के आत्मा की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती, उसी प्रकार बिना गुण या वृत्ति के रस का उद्रेक नहीं हो सकता और यदि रस को प्रभावोत्पादकता या अनुभूति अपेक्षित है तो रस के अनुरूप ही गुणों की व्यवस्था करनी आवश्यक है।

श्रृंगार या करुण रस की अभिव्यंजना ओजगुण से संभव नहीं हो सकती। इसी प्रकार बीभत्स या भयानक रस की व्यंजना माधुर्य गुण द्वारा संभव नहीं है। जैसी आत्मा, वैसा ही शरीर अथवा जैसे संस्कार वैसे ही आचार की रूपरेखा होनी चाहिए। यदि पुरुष रस को कोमल वर्ण मिल जायं या कोमल रस को पुरुष वर्ण, तो दोनों की ही प्रभावोत्पादकता संदिग्ध है। इस कारण यह गुण व्यवस्था वर्णों द्वारा ही संभव है और वर्णों का नाद, रस की अनुभूति में सहायक होता है।

इसी नादात्मक भाव के अन्तर्गत छन्दशास्त्र का विधान भी हुआ है। किसी विशिष्ट भाव की अभिव्यक्ति विशिष्ट शब्दों द्वारा होती हुई भी एक विशेष लय का आग्रह करती है। इस लय की व्यवस्था छन्दों के निर्माण में सहायक होती है। दूसरी बात यह भी है कि लय का सम्बन्ध छन्द से है जो हमारी रागात्मक वृत्ति को आकृष्ट करती है। इसके द्वारा हमारा अनुरंजन भी होता है और लय के माध्यम से शब्द हमारे स्मृति-पटल पर अंकित भी हो जाते हैं। इस तरह छन्द-विवेचन से निम्न चार उद्देश्यों की पूर्ति हो जाती है:-

(1) विशेष मनोभावों की अभिव्यक्ति में उसके अनुरूप नाद की व्यवस्था।
(2) हमारी रागात्मक वृत्तियों का अनुरंजन।
(3) साहित्य और संगीत का पारस्परिक संबन्ध।
(4) स्मृति में काव्य की सुरक्षा।

प्रथम उद्देश्य तो भावों के प्रकाशन में उपयुक्त माध्यम का है जिसको हम ऊपर देख चुके हैं। यह स्पष्ट है कि हमारे हंसने की ध्वनि से रोने की ध्वनि भिन्न है। इसी प्रकार वीरत्व की वाणी कातरता के चीत्कार से भिन्न है। जब विविध मनोभावों के प्रकाशन की ध्वनियां हमारे दैनिक जीवन में इतनी भिन्न हैं तो साहित्य में उनके प्रकाशन की शैलियां भी भिन्न भिन्न होनी चाहिए। ऐसी स्थिति में मनोभावों को अधिकाधिक सफलता के साथ व्यक्त करने की दृष्टि से छन्दों की योजना अत्यन्त आवश्यक समझी जानी चाहिए। वीरत्व की वाणी में चार यगण का भुजंगप्रयात छंद जितना उपयुक्त है उतना चार सगण का त्रोटक छन्द नहीं, क्योंकि यगण में लघु, गुरु, गुरु का कम है और सगण में लघु, लघु, गुरु का। दर्पपूर्ण वाणी दीर्घ या गुरु वर्णों के क्रम में अधिक प्रभावपूर्ण होगी। लघु वर्णों की आवृति तो दर्प की अपेक्षा विनय में ही अधिक शोभनीय है। ऐसी स्थिति में वीर भावना के लिए शब्दों के नाद की प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से भुजंगप्रयात का वर्ण-कम वीर रस के अधिक उपयुक्त होगा। इस तरह यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि वर्णों के लघु, गुरु-कम में हमारी भावनाओं का इतिहास छिपा हुआ है।

Scanned with OKEN Scanner

द्वितीय उद्देश्य रागात्मक वृत्तियों के अनुरंजन में है। जब छन्दों का विधान लालित्य को लेकर उपस्थित होता है, तो उसके सौंदर्य-बोध की भावना प्रतिफलित होती है। यह सौंदर्य हमारी रागात्मिका वृत्तियों के कोड़ में प्रविष्ट होता है और काव्य के प्रति हमारा आकर्षण अधिक बढ़ जाता है। जो बात गद्य में कही जाती है, यदि वही पद्य में कही जाय तो उनसे न केवल शब्दों के लालित्य में वृद्धि होती है-वरन् उसमें नाद के आश्रय से व्यंजना-शक्ति भी प्रादुर्भूत होती है। कालिदास का 'रघुवंश' वस्तुतः रघुकुल के नरेशों का इतिहास है। लेकिन छन्दोबद्ध होने के कारण उसकी प्रत्येक पंक्ति में सौंदर्य की प्रतिष्ठा हो सकी है। यही बात 'पृथ्वीराजरासो' या 'आल्हाखंड' के सम्बन्ध में कही जा सकती है। यदि 'आल्हाखंड' गद्य में कहा जाता तो उससे हमारे हृदय में वीर रस का वैसा संचार नहीं होता जैसा कि पद्य में लिखे जाने के कारण है। छन्द का सीधा प्रभाव हमारी रागात्मक वृत्तियों पर पड़ता है और उससे रस-संचार में सहायता मिलती है।

तृतीय उद्देश्य साहित्य का संगीत के साथ निकट सम्बन्ध होने में है। संगीत में स्वर, नाद और लय का प्रमुख आधार है और यह आधार रागों की विविधता प्रस्तुत कर मनोभावों के विविध रूपों का द्योतक है। संगीत, शब्द को प्रमुखता प्रदान नहीं करता। काव्य ने शब्द देकर संगीत को अपनी परिधि में ले लिया है। यही कारण है कि अपनी विभिन्न मनोदशाओं में भाव-विभोर होकर भक्तिकाल के कवियों ने जिस काव्य की सृष्टि की है, उसमें संगीत का विशेष हाथ है। यह विशेषता हम सिद्धों के चर्या-गीतों से लेकर सूर, तुलसी आदि के महान् काव्य ग्रंथों तक में पाते हैं। इस भांति भारतीय साहित्य में जहां प्रेम और अनुराग की अभिव्यक्ति हुई है, वहां काव्य ने संगीत का आश्रय लिया है।

चतुर्थ उद्देश्य उपर्युक्त तीनों उद्देश्यों के हृदय-तत्व से सम्बन्धित होने के कारण हमारी स्मृति को निरन्तर जागृत करते रहने में है। विशिष्ट सौंदर्य बोध के साथ लय का योग होने के कारण काव्य का रूप हमारे स्मृति-पटल पर अंकित हो जाता है। हम किसी विषय की व्याख्या या विवेचन शब्दशः स्मरण नहीं रख सकते, किन्तु वही पद्य में पंक्तिबद्ध होने पर हमारी स्मृति में सुरक्षित रहती है। छन्दों की गति में हमारा हृदय अग्रसर होता रहता है और हम समस्त काव्य को कंठस्थ कर लेते हैं। अतः साहित्य में काव्य की शैली छन्दोबद्ध होने के कारण अधिक आकर्षक हो जाती है।

छन्द-विधान में तीन कोटियां निर्धारित की गई हैं- प्रथम है-मात्रिक, दूसरी-वर्णिक और तीसरी-मुक्तक।

मात्रा में लघु-गुरु मात्राओं की संख्या से मात्रिक छन्दों का निर्धारण होता है। वर्णिक छन्दों में तीन वर्णों की इकाई से निर्मित गणों के विविध समुच्चयों की व्यवस्था है और मुक्तक छन्दों में गुरु या लघु वर्णों की स्वतन्त्र इकाई ही छन्द का आधार है। ये छन्द मात्रा और गण से मुक्त होने के कारण 'मुक्तक' कहलाते हैं। कवि अपनी भावनाओं की दृष्टि से जिस छन्द का नाद उपयुक्त समझता है, उसका प्रयोग करता है और इस प्रयोग में काव्य की प्रभावोत्पादकता अधिक बढ़ जाती है। इस दृष्टि से भावनाओ में भी समय समय के अनुसार बढ़ती हुई तरंग की भांति एक विशेष गति रहती है। यदि जीवन को उसके असली रूप में छोड़ दिया जाय तो वह भी नाद का एक रूप हो सकता है।

यदि नक्षत्रों के भ्रमण में संगीत है और प्रकृति की प्रत्येक गतिशीलता में एक लय है तो मनुष्य की भावात्मक प्रगतिशीलता विश्व संगीत का रूप क्यों नहीं बन सकती? यदि ऐसा न होता तो क्रौंच-वध को देखकर आदि कवि वाल्मीकि के कंठ से जो भारती अनायास प्रस्फुटित हुई, उसकी लय में अनुष्टुप छन्द का निर्माण न हुआ होता। इस प्रकार मानव-जीवन की भावना ही छन्दोमयी है और यदि काव्य ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए छन्द का माध्यम ग्रहण किया, तो उसने अपनी स्वाभाविक नादात्मक प्रकृति का ही परिचय दिया है।

पाश्चात्य आलोचकों ने छन्द को काव्य के लिए अनिवार्य नहीं माना है। वे उसे काव्य के लिए एक संयोग की बात मानते हैं। उसके द्वारा मानव को बाह्य जगत् से सम्बन्ध स्थापित करने में सुगमता मात्र प्राप्त होती है। उसके लिए छन्द का संकीर्ण मार्ग और उसमें परिमित मात्राओं या गुणों की व्याख्या बाधा स्वरूप ज्ञात होती है। सम्भवतः इसी दृष्टिकोण से प्रेरित होकर आज हिन्दी के प्रयोगशील या प्रयोगवादी कवि काव्य में छन्द की व्यवस्था स्वीकार नहीं करते। शताब्दियों से अर्जित इस नाद सम्पत्ति का कोई उपयोग उनके समक्ष नहीं है। यही कारण है कि जहां प्राचीन साहित्य का अधिकांश हमें कंठस्थ है, वहां आधुनिक प्रयोगवादी काव्य की चार पांच पंक्तियाँ भी किसी के स्मृति पटल पर अंकित नहीं हो पाती। यदि काव्य का सम्बन्ध मानव की रागात्मक वृत्तियों से अविछिन्न है, तो नाद और उसके साथ छन्द भी साहित्य की शैलियों के अन्तर्गत अपना महत्त्वपूर्ण स्थान अवश्य ग्रहण करेगा।

अतः छन्द के उपर्युक्त उद्देश्यों एवं प्रकृति सिद्ध अनिवार्यता को सर्वभावेन स्वीकार करते हुए अब हम प्राकृत कवि आचार्य विमलसूरि के महाकाय - पउमचरियं में प्रयुक्त छन्दों का अवलोकन करते हैं।

पउमचरियं में प्रयुक्त छन्द

पउमचरियं प्रधानतः आर्या छन्द में लिखा गया है। यह प्राकृत पद्य का वास्तविक छन्द भी माना जाता है। इसका दूसरा नाम गाथा छन्द भी है। महाकवि आचार्य विमलसूरि ने अपने पर्वों के अन्त में बहुत से अन्य छंदों का भी प्रयोग किया है।

वर्णिक छन्दों में वसन्ततिलका, उपजाति, मालिनी, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, रुचिरा एवं शार्दूलविक्रीडित का प्रयोग उल्लेखनीय है। कवि ने आठ वर्णों के प्रमाणिक छन्द का ऐसा सुन्दर प्रयोग किया है जिससे युद्ध संगीत के ताल और लय के साथ सैनिकों के पैर भी उठते प्रतीत होते हैं:-

स सामिकज्जउज्जया, पवंगघायदारिया।
विमुक्कजीवबन्धणा, पडंति तो महाखडा॥
सहावतिक्खनक्खया, लसन्त चारुचामरा।
पवंगमाउहाहया, खयं गया तुरसमा॥
पवंगभिन्नमत्थया, खुडन्तदन्तिमोत्तिया।
पणट्ठदाणदुद्दिणा, पडन्ति मत्तकुंजरा॥

Scanned with OKEN Scanner

अन्य छन्द उदाहरण स्वरूप नीचे उद्‌धृत हैं

इन्द्रवज्रा छन्द :-

एवं तु कम्मस्स खओवएसे, गेण्हन्ति जीवा गुरुभासियत्थं।
काऊण तिव्वं मिलं च धम्मं, सिद्धालयं जन्ति विसुद्धभावा॥
(उद्देश्य-14, गाथा-158, पृष्ठ-153)

उपेन्द्रवज्रा छन्द :-

कए वि अन्नस्सुवयारजाए, कुणन्ति जे पच्चुवयारजोगं।
न तेसु तुल्लो विमलो वि चन्दो, न चेव भाणू न य देवराया॥
(पर्व-49, गाथा-39, पृष्ठ-341)

उपजाति छन्द :-

एवं मए सेणि! तुज्झ सिट्ठा, लोगट्ठिई पुव्वजणाणुचिण्णा।
सुणाहि एत्तो विमलप्पहावा, चत्तारि नामेहि नरिन्दवंसा॥
(उद्देश्य-4, गाथा-90, पृष्ठ-37)

दोधक छन्द :-

एव नरा सुणिऊण महन्तं, पुव्वकयं बहुदुक्खविवायं।
संजमसुट्ठियउज्जुयभावा, होइ सया विमले जिणधम्मे॥
(उद्देश्य-17, गाथा-123, पृष्ठ-174)

इन्द्रवज्रा छन्द :-

धम्मेण पुव्वस्सुकएण उत्तमा, सोक्खालया सव्वजणस्स वल्लहा।
पावन्ति तुंग विमलं जसं नरा, तम्हा सया होह सुसंजमुज्जया॥
(पर्व-50, गाथा-22, पृष्ठ-343)

रुचिरा छन्द :-

अहो,जणा! सुकयफलेण सुन्दरा, रई सया हवइ विओगवज्जिया।
तहा समाजयह जिणिन्दसासणे, सया सुहं विमलयरं निसेवह॥
(पर्व-51, गाथा-27, पृष्ठ-345)

वसंततिलका छन्द :-

एवंविहा उभयसेढिगया महन्ता, आहार-पाण-सयणा-ऽऽसणसंपउत्ता।
विज्जाहरा अणुहवन्ति सुहं समिद्धं, धम्मं करिन्ति विमलं च जिणोवइट्ठं॥
(उद्देश्य-3, गाथा-162, पृष्ठ-30)

मालिनी छन्द :-

वरकमलनिबद्धा निग्गयालीसमत्ता, महुरसरनिनायाच्चन्तरम्मा पदेसा।
तरुपवणवलग्गा पुप्फरेणुं मुयन्ता, विमलकिरणमन्ताइच्चभासा विसुद्धा॥
(उद्देश्य-2, गाथा-119, पृष्ठ-18)

मन्दाक्रान्ता छन्द :-

एवं राया मुणिगुणकहासत्तचित्तो महप्पा,
पूया-दाणं विणयपणओ देइ सव्वायरेणं।
सेविज्जन्तो गमइ दियहे दिव्वनारीजणेणं,
पुव्वोवत्तं विमलहियओ भुञ्जई देहसोक्खं॥
(उद्देश्य-29, गाथा-49, पृष्ठ-240)

शार्दूलविक्रीडित छन्द :-

एवं पुण्णफलोदएण पुरिसा पावन्ति तुगं सिरिं,
कित्तीछन्नसमत्थमेइणितला भग्गारिपक्खासया।
दिव्वाणं रयणाण होन्ति निलया लोगस्स मुञ्जा नरा,
पच्छा ते विमलाणुभावचरिया पावन्ति सिद्धालयं॥
(उद्देश्य-11, गाथा-121, पृष्ठ-128)

स्रग्धरा छन्द :-

बोहिं पावेन्ति धीरा परभवमहणी मोक्खमग्गाहिलासी,
तम्हा ठावेह चित्तं ससियरविमले सासणे संजयाणं॥
(उद्देश्य-7, गाथा-173, पृष्ठ-85)

पउमचरियं की शब्द शक्तियां आदि

शब्द और अर्थ का परस्पर अटूट सम्बन्ध है। जिस प्रकार जल के बिना लहर की और लहर के बिना जल की कल्पना नहीं की जा सकती, उसी प्रकार शब्द-विहीन अर्थ और अर्थ-विहीन शब्द साहित्य में हो ही नहीं सकते। अर्थ के तीन भेद होते हैं-वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य। इन अर्थों का बोध कराने वाली शब्द-शक्तियां भी तीन प्रकार की मानी गई हैं- अभिधा, लक्षणा और व्यंजना।

1. अभिधा- जिस शब्द-शक्ति से संकेतित या मुख्य अर्थ का बोध होता है, उसे अभिधा कहते हैं। अभिधा के द्वारा जिन शब्दों के अर्थों का बोध होता है, वे तीन प्रकार के होते हैं-रूढ़, यौगिक और योगरूढ़।

रूढ़- जिन शब्दों की व्युत्पत्ति नहीं होती, वे रूढ़ कहलाते हैं। 'व्युत्पत्तिरहिता: शब्दा: रूढ़ा:'(साहित्य दर्पण, विश्वनाथ)। जैसे - घड़ा, पुस्तक, वस्त्र आदि।

यौगिक शब्द- अवयवों (प्रकृति और प्रत्ययों) की शक्ति के द्वारा जिन शब्दों के अर्थों का बोध होता है, वे यौगिक शब्द कहलाते हैं। जैसे-सुधांशु, हिमकर, रजनीश आदि।

(सुधांशु शब्द के दो खंड हैं- सुधा+अंशु। सुधा का अर्थ है अमृत और अंशु का किरण, अर्थात् अमृत की किरणोंवाला=चन्द्रमा। इसी प्रकार हिम+कर और रजनी+ईश का अर्थ भी क्रमश: बर्फ की किरणों वाला, और रात्रि का स्वामी अर्थात् चन्द्रमा है।)

योगरूढ़'- जिन शब्दों के अवयवों से बोध होने वाली सभी वस्तुओं के लिए उस शब्द का प्रयोग न किया जाकर उन वस्तुओं में से किसी एक विशेष वस्तु के लिए ही प्रयुक्त किये जाने की (रूढ़ि) प्रसिद्ध हो, उन्हें योगरूढ़ कहते हैं। जैसे -वारिज, गिरिधारी आदि।

(वारिज के दो खंड हैं-वारि+ज, अर्थात् पानी में उत्पन्न होने वाला। पानी में अनेक वस्तुएं उत्पन्न होती है-काई, घास, कमल आदि। किन्तु वारिज का अर्थ कमल ही प्रसिद्ध है। इसी प्रकार गिरिधारी का अर्थ है पहाड़ को धारण करने वाला। पृथ्वी भी

Scanned with OKEN Scanner

पहाड़ों को धारण किये हुए है, हनुमान ने भी पहाड़ धारण किया था, किन्तु गिरिधारी का अर्थ कृष्ण ही प्रसिद्ध है।)

अभिधा से संकेतित अर्थ का ग्रहण निम्नलिखित कारणों से होता है:-

व्यवहार से- यदि किसी मनुष्य से गाय लाने को कहा जाये और वह गाय ले आये तो उसे देखकर बालक को भी यह ज्ञान हो जाता है कि दो सींग, पूंछ और फटी हुई खुरी के आकार वाले इस जीव को गाय कहते हैं।

प्रसिद्ध शब्द के साहचर्य से- मधुकर का अर्थ भौंरा भी होता है और शहद की मक्खी भी। यदि कहा जाये कि कमल पर बैठा हुआ मधुकर रस का पान कर रहा है, तो यहां कमल के साहचर्य से मधुकर का अर्थ भौंरा होगा, शहद की मक्खी नहीं। क्योंकि भौंरा ही कमल के रस का पान करता है।

आप्त वाक्य से-आप्त का अर्थ है प्रामाणिक या लोक-प्रसिद्ध पुरुष। जैसे यदि किसी बालक को बता दिया जाये कि यह राम का चित्र है तो वह राम की प्रतिकृति का संकेत उस चित्र में समझ लेता है।

उपमान से- उपमान का अर्थ है समानता। यदि किसी को यह ज्ञात है कि भीम बहुत खाता था, तो किसी के यह कहने पर कि राम भीम के समान खाऊ-पीर है वह तुरन्त समझ जायेगा कि राम बहुत खाता है।

2. **लक्षणा**:- जिस शब्द-शक्ति से मुख्य अर्थ का बोध होने पर रूढ़ि अथवा प्रयोजन के कारण मुख्यार्थ से सम्बन्ध रखने वाला अन्य अर्थ लक्षित होता है, उसे लक्षणा कहते हैं

मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढ़ितोऽथ प्रयोजनात्
अन्योद्धर्थो लक्ष्यते यत् सा लक्षणारापिता क्रिया॥

'काव्यप्रकाश'- मम्मट

लक्षणा के द्वारा लक्ष्यार्थ का बोध तीन कारणों से होता है-

(क) जब मुख्य अर्थ का बोध हो, अर्थात् अभिधा के द्वारा जो अर्थ निकल रहा हो, उसे ग्रहण न किया जाये।

(ख) जब मुख्य अर्थ का लक्ष्यार्थ के साथ सम्बन्ध हो।

(ग) जब रूढ़ि अथवा प्रयोजन में से कोई एक कारण हो।

लक्षणा के भेद:- इन तीनों कारणों में से प्रथम दो कारण-मुख्यार्थ का बोध और लक्ष्यार्थ से मुख्यार्थ का सम्बन्ध-तो प्रत्येक लक्षणा में होते हैं, किन्तु रूढ़ि या प्रयोजन इन दो में से कोई एक यहीं होता है। इसी आधार पर लक्षणा के दो भेद होते हैं-रूढ़ि लक्षणा और प्रयोजनवती लक्षणा।

रूढ़ि लक्षणा- जहां मुख्यार्थ का बोध होने पर रूढ़ि के कारण मुख्यार्थ से सम्बन्ध रखने वाला लक्ष्यार्थ ग्रहण किया जाता है, वहां रूढ़ि लक्षणा होती है। जैसे-

"डिगत पानि डिगुलात गिरि लखि सब ब्रज बेहाल।
कंप किसोरी दरस ते खरे लजाने लाल॥"

"ब्रज" का मुख्यार्थ गांव या गौओं का निवास स्थान है। वह जड़ है। जड़ ब्रज बेहाल कैसे हो सकता है? अतः ब्रज को बेहाल कहने में मुख्यार्थ का बोध है। ब्रजवालों को ब्रज कहने में रूढ़ि है। अतः यहां 'ब्रज' का अर्थ 'ब्रज में रहने वाले जीव' हैं।

प्रयोजनवती लक्षणा - जहां मुख्यार्थ का बोध होने पर किसी विशेष प्रयोजन के कारण मुख्यार्थ से सम्बन्ध रखने वाला लक्ष्यार्थ ग्रहण किया जाता है, वहां प्रयोजनवती लक्षणा होती है। जैसे-

"उदित उदय-गिरि-मंच पर रघुवर बाल-पतंग।
बिगसे सन्त-सरोज सब हरषे लोचन-भृंग॥"

यहां भगवान राम को बाल-पतंग (प्रभातकालीन सूर्य) कहने में मुख्यार्थ का बोध है। अतः 'भगवान राम की प्रभा प्रभातकालीन सूर्य के समान है।' यह मुख्यार्थ से सम्बन्धित लक्ष्यार्थ है। इस दोहे में राम की अंग-कान्ति के सौन्दर्य का वर्णन करना प्रयोजन है। इसलिए यह प्रयोजनवती लक्षणा है।

रूढ़ि लक्षणा और प्रयोजनवती लक्षणा के अनेक भेदोपभेद हैं।

(3) व्यंजना- अभिधा और लक्षणा शब्द-शक्तियां जब अपने-अपने अर्थों का बोध कराके शान्त हो जाती है, तब जिस शब्द-शक्ति से व्यंग्यार्थ का बोध होता है, उसे व्यंजना कहते हैं।

विरतास्वभिधाद्यासु यथाऽर्थो बोध्यते परः।
सा वृत्तिव्यंजना नाम शब्दस्यार्थादिकस्य च॥

साहित्य दर्पण, विश्वनाथ

व्यंग्यार्थ को ध्वन्यार्थ, सूच्यार्थ, आक्षेपार्थ और प्रतीयमानार्थ भी कहते हैं, क्योंकि यह वाच्यार्थ की तरह न तो कथित होता है और न लक्ष्यार्थ की भांति लक्षित होता है, बल्कि यह व्यंजित, ध्वनित, सूचित, आक्षिप्त और प्रतीत होता है।

व्यंग्यार्थ तीन प्रकार का होता है:-

(क) **वस्तु व्यंग्यार्थ**-जो व्यंग्यार्थ साधारण होता है, उसे वस्तु व्यंग्यार्थ कहते हैं।

(ख) **अलंकार व्यंग्यार्थ**- जो व्यंग्यार्थ अलंकार-रूप में होता है, उसे अलंकार व्यंग्यार्थ कहते हैं।

(ग) **रस व्यंग्यार्थ**- जो व्यंग्यार्थ रस-रूप में होता है, उसे रस-व्यंग्यार्थ कहते हैं।

व्यंजना के भेद:- व्यंजना के दो भेद होते हैं- शाब्दी व्यंजना और आर्थी व्यंजना।

(क) शाब्दी व्यंजना-जहां व्यंग्यार्थ किसी विशेष शब्द के आधार पर अवलम्बित हो, अर्थात् उस व्यंजक के स्थान पर उसका समानार्थक शब्द रख देने से व्यंग्यार्थ की प्रतीति न हो उसे शाब्दी व्यंजना कहते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

शाब्दी व्यंजना के दो भेद हैं- अभिधामूला शाब्दी व्यंजना और लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना।

(अ) अभिधामूला शाब्दी व्यंजना- अनेकार्थी शब्दों का संयोग आदि के द्वारा एक अर्थ नियन्त्रित हो जाने पर जिस शब्द-शक्ति द्वारा व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है, उसे अभिधामूला शाब्दी व्यंजना कहते हैं।

अनेकार्थस्य शब्दस्य संयोगाधैर्नियन्त्रिते।
एकत्रार्थेऽन्यधीहेतुर्व्यजना साऽभिधाश्रया॥

-'साहित्यदर्पण'; विश्वनाथ

अनेकार्थी शब्दों को नियंत्रित करके एक अर्थ का बोध कराने वाले कारण ये हैं-संयोग, वियोग, साहचर्य, विरोध, अर्थ, प्रकरण, लिंग, अन्यसन्निधि, सामर्थ्य, औचित्य, देश, काल, व्यक्ति और स्वर आदि।

संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्य विरोधिता।
अर्थः प्रकरणं लिंगं शब्दस्यान्यस्य सन्निधि॥
सामर्थ्यमौचिती देशः कालो व्यक्ति स्वरादयः।

-'साहित्यदर्पण'; विश्वनाथ

जैसे:-

"सोहत नाग न मद बिना, तान बिना नहिं राग।"

यहां 'नाग' और 'राग' अनेकार्थी शब्द हैं, किन्तु 'वियोग' कारण ने इनका अर्थ नियन्त्रित कर दिया है। अतः नाग का अर्थ है हाथी और राग का अर्थ है गाने की रागिनी।

(आ) लक्षणमूला शाब्दी व्यंजना- जिस प्रयोजन के लिए लाक्षणिक शब्द का प्रयोग किया जाता है, उस प्रयोजन की प्रतीति कराने वाली शब्द-शक्ति को लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना कहते हैं। यथा -'वह मनुष्य नहीं, निरा उल्लू है।' हरं 'उल्लू' शब्द से महामूर्ख शब्द व्यंजित है।

(ख) आर्थी व्यंजना- वक्तृ, बोधव्य, काकु, वाक्य, वाच्य, अन्यसन्निधि, प्रस्ताव, देश, काल और चेष्टा के वैशिष्ट्य से जिस शब्द-शक्ति द्वारा व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है, उसे आर्थी व्यंजना कहते हैं।

वक्तृबोद्धव्यवाकूनां वाक्यवाच्यान्यसन्निधेः।
प्रस्तावदेशकालादेवैशिष्ट्यात्प्रतिभाजुषाम्॥

'काव्यप्रकाश'; मम्मट

इस परिभाषा को और अधिक स्पष्ट करने के लिए इसमें आये हुए कारणों का संक्षिप्ततम परिचय देना आवश्यक है।

क. वक्तृ-वैशिष्ट्य- वाक्य के कहने वाले को वक्तृ (वक्ता) कहते हैं। वक्ता की उक्ति की विशेषता से जहां व्यंग्य अर्थ सूचित होता है, उसे वक्तृ-वैशिष्ट्य कहते हैं।

ख. बोधव्य-वैशिष्ट्य-श्रोता को बोधव्य कहते हैं। जहां वाक्य को सुनने वाले की विशेषता से व्यंग्य अर्थ सूचित होता है, उसे बोधव्य-वैशिष्ट्य कहते हैं।

ग. काकु-वैशिष्ट्य- एक विशेष प्रकार की कंठ-ध्वनि से कहे हुए वाक्य को 'काकु' कहते हैं। जहां काकु की उक्ति की विशेषता से व्यंग्यार्थ प्रतीत होता है, उसे काकु-वैशिष्ट्य कहते हैं।

घ. वाक्य-वैशिष्ट्य-जहां सारे वाक्य की विशेषता से व्यंग्यार्थ प्रतीत होता है, उसे वाक्य-वैशिष्ट्य कहते हैं।

ङ. वाच्य-वैशिष्ट्य-जहां उत्कृष्ट विशेषणों वाले वाच्य की विशेषता से व्यंग्यार्थ सूचित होता है, उसे वाच्य वैशिष्ट्य कहते हैं।

च. अन्य सन्निधि-वैशिष्ट्य-जहां वक्ता और बोधव्य के अतिरिक्त तीसरे पुरुष की समीपता के कारण व्यंग्यार्थ सूचित होता है, उसे अन्य सन्निधि वैशिष्ट्य कहते हैं।

छ. प्रकरण-वैशिष्ट्य-जहां विशेष प्रकरण होने के कारण व्यंग्यार्थ सूचित होता है, उसे प्रकरण-वैशिष्ट्य कहते हैं।

ज. देश-वैशिष्ट्य- जहां स्थान की विशेषता के कारण व्यंग्यार्थ सूचित होता है, उसे देश-वैशिष्ट्य कहते हैं।

झ. काल-वैशिष्ट्य- जहां समय की विशेषता के कारण व्यंग्यार्थ सूचित होता है, उसे काल-वैशिष्ट्य कहते हैं।

ञ. चेष्टा-वैशिष्ट्य- जहां चेष्टा की विशेषता के द्वारा व्यंग्यार्थ सूचित होता है, उसे चेष्टा-वैशिष्ट्य कहते हैं।

कहीं-कहीं एक ही स्थान पर अनेक वैशिष्ट्य एकत्र हो जाते हैं:-

"यह काल रसाल वसंत अहो! कुसुमायुध बान चलावतु री;
फिर धीर-समीर सुगंधित हू तरुनीन अधीर बनावतु री।
बन मंजुल-वंजुल-कुंज बनी सजनी ये घनी ललचावतु री;
नहीं पास पिया, करिए जु कहा? अब तू ही तो क्यों न बतावतु री।"

यह किसी नायिका की अपनी सखी के प्रति उक्ति है। इसमें वसन्त के कथन से काल-वैशिष्ट्य और वंजुल-कुंज के कथन से देश-वैशिष्ट्य है। साथ ही नायिका के वक्ता होने से वक्तृवैशिष्ट्य भी है। सम्पूर्ण वाक्यार्थ वाक्य-वैशिष्ट्य है। इसमें वक्तृ और वाक्य-वैशिष्ट्य से पृथक्-पृथक् व्यंग्यार्थ सूचित होता है।

(ख) वाल्मीकि रामायण की भाषा

इस अध्याय के प्रारम्भ में ही हमने भाषा, छन्द, शब्द शक्तियों पर गहन चिन्तन किया है। लेखकों, कवियों ने अपने विचार सशक्त माध्यम से जन साधारण के समक्ष रखा है। अपनी लेखनी को सुदृढ़ बनाने के लिए इन कवियों-लेखकों ने भाषा के लालित्य को सजाने संवारने के लिए शक्तियों को आधार बनाया है। बहुत सारी कथाएं इन विद्वानों ने सीधे रूप में जन मानस के समक्ष प्रस्तुत किया है। लेकिन लेखनी के सौंदर्य के लिए उन्होंने बीच-बीच में कुछ बातें सीधे न कर परोक्ष रूप में कहा है अर्थात्

Scanned with OKEN Scanner

अभिधा, लक्षणा और व्यंजना का सहारा लिया है। विविध छन्दों का प्रयोग कर कवि ने महाकाव्य की कोमलता को प्रकट किया है।

आदिकवि वाल्मीकि कृत रामायण की भाषा क्या है? यह साधारणतः आर्ष संस्कृत भाषा कहलाती आई है। विद्वानों के बीच भी यह सदा से प्रश्न उठता रहा है कि रामायण की भाषा पाणिनी से प्राचीन है अथवा अर्वाचीन। इस सम्बन्ध में डा0 एन0ए0 गोरे द्वारा संकलित संकलन में लिखा गया है कि रामायण की भाषा ब्राह्मणों की संस्कृत भाषा है।[32] पाणिनी ने भी अपने सूत्रों में रामायण में वर्णित ऋषियों के नामों को स्थान देकर रामायण की प्राचीनता सिद्ध की है। पातंजलि का कथन है कि ब्राह्मण इस देश (आर्यावर्त्त) के भाषा की समृद्धता को संचय नहीं करते क्योंकि वे लालची नहीं हैं। वे बिना किसी प्रयत्न के परम्परा से चले आये शिष्ट ज्ञान के द्वारा पूजित होते हैं।[33] इस सम्बन्ध में भंडारकर महोदय ने भी अपना विचार दिया है कि आर्यावर्त्त के ब्राह्मणों के बोलचाल की अपनी भाषा संस्कृत थी, जिसे वे बिना किसी व्याकरण के ज्ञान के शुद्ध-शुद्ध बोलते थे।[34]

डॉ0 वरुनोलिविय ने पाणिनी, पृष्ठ-47 में भी इस सम्बन्ध में अपना विचार दिया है कि ब्राह्मणों की भाषा उतनी ही अच्छी है जितनी पाणिनी-सूत्रों की। पाणिनी के द्वारा शिक्षित भाषा को सभ्य लोग बोलते थे जो ब्राह्मणों के व्यवहार में लाई गई भाषा से समानता रखती थी, क्योंकि वे स्वभावतः सदा इसका प्रयोग करते थे। समाज में उस समय अनेकानेक तरह के संस्कृत का प्रयोग होता था जो प्रयोगकर्त्ता की शिक्षा पर निर्भर होती थी।[35] इस तथ्य का उदाहरण महाकवि वाल्मीकि ने अपनी रामायण में कई स्थलों पर दिया है।

शिष्टों अर्थात् सभ्यों की भाषा और असभ्यों की अथवा लोक भाषा में भिन्नता थी। इसका स्पष्ट संकेत हम रामायण में इन पंक्तियों में पाते हैं। जब हनुमान जी सुग्रीव का दूत बन कर श्रीराम से कहते हैं। हनुमान के वक्तव्य को सुन श्रीराम मुग्ध हो जाते हैं। भाषा की शुद्धता नीचे उद्धृत है:-

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्।।

(वा0रा0 4/3/28, पृष्ठ-681)

अर्थात्- जिसे ऋग्वेद की शिक्षा नहीं मिली, जिसने यजुर्वेद का अभ्यास नहीं किया तथा जो सामवेद का विद्वान नहीं है, वह इस प्रकार सुन्दर भाषा में वार्त्तालाप नहीं कर सकता।

इस सम्बन्ध में और कहा गया है :-

नूनं व्याकरणं कृत्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम्।।

(वा0रा0 4/3/29, पृष्ठ-681)

अर्थात् निश्चय ही इन्होंने समूचे व्याकरण का कई बार स्वाध्याय किया है; क्योंकि बहुत सी बातें बोल जाने पर भी इनके मुंह से कोई अशुद्धि नहीं निकली।

जब हनुमान जी सीता की खोज करते हुए लंका पहुंचते हैं और सीता से उनकी भेंट होती है तब हनुमान जी यह विचारने पर विवश हो जाते हैं कि इनसे किस भाषा में संभाषण किया जाये। कवि ने उसे इस प्रकार प्रस्तुत किया है:-

अहं ह्यतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः।
वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्।।
यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति।।
अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत्।
मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता।।

(वा0रा0 5/30/17-19, पृष्ठ-94)

अर्थात् "एक तो मेरा शरीर अत्यन्त सूक्ष्म है, दूसरे मैं वानर हूँ। विशेषतः वानर होकर भी मैं यहां मानवोचित संस्कृत-भाषा में बोलूंगा। परन्तु ऐसा करने में एक बाधा है, यदि मैं द्विज की भांति संस्कृत-वाणी का प्रयोग करूँगा तो सीता मुझे रावण समझकर भयभीत हो जायेंगी। ऐसी दशा में अवश्य ही मुझे उस सार्थक भाषा का प्रयोग करना चाहिये, जिसे अयोध्या के आस-पास की साधारण जनता बोलती है, अन्यथा इन सती-साध्वी सीता को मैं उचित आश्वासन नहीं दे सकता।"

रामायण की इन पंक्तियों से विदित होता है कि द्विज यानि ब्राह्मण जाति संस्कृत बोलती थी और जन साधारण प्राकृत। डा0 एन0 ए0 गोरे ने इस सम्बन्ध में अपना विचार अपने ग्रंथ में इस प्रकार दिया है कि रामायण उस समय लिखी गई जब बड़े क्षेत्र में इस भाषा को लोग बोलते और समझते थे।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज जिस प्रकार का होगा उसका प्रतिबिम्ब उसी प्रकार साहित्य में प्रतिबिम्बित होगा। समाज का स्वरूप, बुद्धि, उत्थान-पतन, समृद्धि-दुरवस्था के निश्चित ज्ञान का प्रधान साधन तत्कालीन साहित्य होता है। इसी प्रकार साहित्य संस्कृति का प्रधान वाहन होता है। संस्कृति की आत्मा साहित्य के भीतर से अपनी मधुर झांकी सदा दिखलाया करती है। संस्कृति के उचित प्रसार और प्रचार का सर्वश्रेष्ठ साधन साहित्य ही है। संस्कृति का मूल स्तर यदि भौतिकवाद के ऊपर आश्रित रहता है तो वहां का साहित्य कदापि आध्यात्मिक नहीं हो सकता और यदि संस्कृति के भीतर आध्यात्मिकता की भव्य भावनाएं हिलोरें मारती रहती है तो उस देश तथा जाति का साहित्य भी आध्यात्मिकता से अणुप्राणित हुए बिना नहीं रह सकता। इस दृष्टि से आदि काव्य रामायण अपने आप में तत्कालीन समाज का जीता जागता स्वरूप प्रस्तुत करता है।

रामायण में हृदय पक्ष का प्राधान्य होने पर भी कला पक्ष की अवहेलना नहीं है। वाल्मीकि की भाषा उदात्त भावों की अभिव्यक्ति का समर्थ माध्यम है। छोटे-छोटे प्रायः समासविहीन पदों में महर्षि ने बड़े ही सरस और सरल शब्दों द्वारा अपने भावों की अभिव्यंजना की है। शाब्दिक सुषमा की ओर महर्षि का ध्यान स्वतः आकृष्ट हुआ है तथा उन्होंने इसका प्रकटीकरण बड़ी सुन्दरता तथा भावुकता के साथ किया है। आनुप्रासिक शोभा के लिए एक पद्य का दृष्टांत पर्याप्त होगा:-

Scanned with OKEN Scanner

विनष्टशीतांशुतुषारवंकको महाग्रहग्राहविनष्टपंक।
प्रकाशलक्ष्म्याश्रय निर्मलांकोरराजचन्द्रो भगवान् शशांकः॥

रस, गुण, अलंकार तथा ध्वनि के सभी भेद-प्रभेदों के उदाहरण रामायण के भीतर प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो सकते हैं- सहृदय विद्वानों की दृष्टि से यह बात छिपी नहीं है। समुद्र के मंथन से एक घड़ा अमृत निकला था, बाकी सब पानी ही था। पर वाल्मीकि के इस काव्य समुद्र में सब अमृत ही अमृत भरा है। इसमें एक श्लोक भी शायद ही ऐसा मिले, जिसमें काव्योचित गुण मौजूद न हो। यह आदि काव्य इसलिए नहीं कहलाता कि लौकिक संस्कृत में 'श्लोक रचना' सबसे पहले वाल्मीकि ने ही की; क्योंकि वैदिक काल के बाद स्मृतियों की रचना हुई थी। स्वायम्भुव मनु की स्मृति वाल्मीकीय रामायण से पहले मौजूद थी। भगवान् श्री राम ने घायल पड़े हुए बालि के सामने धर्म की व्याख्या करते हुए अपने श्रीमुख से मनु के दो श्लोकों का उल्लेख किया है- '**श्रूयेते मनुना गीतौ श्लोकौ चारित्रवत्सलौ।**' वे श्लोक रामायण में इस प्रकार उद्धृत हैं:-

राजभिर्धृतदण्डाश्च कृत्वा पापानि मानवाः।
निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा॥
शासनाद् वापि मोक्षाद् वा स्तेनः पापात् प्रमुच्यते।
राजात्वशासन् पापस्य तदवापनोतिकिल्बिषम्॥

(वा0रा0 4/18/31-32, पृष्ठ-723)

ऐसी स्थिति में वाल्मीकि के श्लोकों को आदिकाव्य मानने का यही कारण हो सकता है कि काव्योचित विशेषताओं के साथ सर्वप्रथम श्लोक रचना इन्होंने ही की।[36]

वाल्मीकि रामायण में छन्द

महाकवि वाल्मीकि अनुष्टुप् छन्द के आविष्कारक माने जाते हैं। उपनिषदों में भी अनुष्ट् छन्द का प्रथम प्रयोग वाल्मीकि ने ही किया जिसमें लघु-गुरु का निवेश नियमबद्ध है।[37]

नारद से रामकथा सुनकर महर्षि वाल्मीकि तमसा नदी के तट पर गये। किसी व्याध द्वारा क्रौंच पक्षी के जोड़े में से नर पक्षी के घायल होने से मादा क्रौंच पक्षी के करुण स्वर सुनकर महर्षि का हृदय करुण भाव से उमड़ पड़ा। उसी अवस्था में महाकवि के मुख से निकल पड़ा:-

मा निषाद प्रतिष्ठांत्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीरु काममोहितम्॥

(वा0रा0, 1/2/15, पृष्ठ-31)

अनुष्टुप् छन्द में इस श्लोक के निकलने पर महर्षि को स्वयं आश्चर्य हुआ कि यह गीति-लयबद्ध तथा निश्चित मात्राओं का शब्द समूह मेरे मुख से कैसे निकल गया। ब्रह्मा ने भी कहा-"तुम्हारे मुख से छन्द का आविर्भाव हुआ है। तुम नारद के द्वारा सुनी हुई रामकथा को इसी छन्द में श्लोकबद्ध करो।"

न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति॥
करु रामकथां पुण्या श्लोकबद्धां मनोरमाम्।

(वा0रा0 1/3/35, पृष्ठ-33)

आगे इस ग्रंथ में स्पष्ट किया गया है:-

तदुपगतसमाससंधियोगं
सममधुरोपनतार्थवाक्यबद्धम्।
रघुवरचरितं मुनिप्रणीतं
दशशिरसश्च वधं निशामयध्वम्॥

(वा0रा0, 1/3/43, पृष्ठ-33)

अर्थात् महर्षि वाल्मीकि के बनाये हुए इस काव्य में तत्पुरुष आदि समासों, दीर्घ-गुण आदि संधियों और प्रकृति-प्रत्यय के सम्बन्ध का यथायोग्य निर्वाह हुआ है। इसकी रचना में समता (पतत्-प्रकर्ष आदि दोषों का अभाव) है, पदों में माधुर्य है और अर्थ में प्रसाद-गुण की अधिकता है।

अनुष्टुप् छन्द के अलावा इस महाकाव्य में इन्द्रवज्रा, उपजाति, पुष्पिताग्रा आदि तेरह छन्द बराबर मिलते हैं।[38]

वाल्मीकि रामायण की शैलीगत विशेषता

मानव जीवन के सभी क्षेत्रों को वाल्मीकि ने मनोहारी, प्रशंसनीय एवं स्मरणीय शैली में व्यक्त किया है।[39] उदाहरण के लिए कवि ने स्वयं सर्वोत्तम शैली के बारे में कहा क्या कहा है :-

संस्मराम्यस्य वाक्यानि प्रियाणि मधुराणि च।
हृद्यान्यमृतकल्पानि मनःप्रह्लादनानि च॥

(वा0रा0 3/16/39, पृष्ठ-531)

सर्वोत्तम शैली वह होती है जो मधुर, हृदयग्राही, हृदयद्रावी, संक्षिप्त, स्पष्ट, अनुशासित और अलंकृत हो।[40] इन्होंने अपने ग्रंथ में यह भी कहा है कि वाल्मीकि की शैली सभी गुणों को धारण करने वाली है। प्रायः वैदर्भी रीति, अलंकार, रस-ध्वनि, चमत्कार और औचित्य से पूर्ण है। उदाहरण के लिए कवि की यह पंक्ति :-

न हस्ती चाग्रतः श्रीमान् सर्वलक्षणपूजितः।
प्रयाणे लक्ष्यते वीर कृष्णमेघगिरिप्रभः॥

(वा0रा0 2/26/16, पृष्ठ-264)

अर्थात् वीर! आपकी यात्रा के समय समस्त शुभ लक्षणों से प्रशंसित तथा काले मेघवाले पर्वत के समान विशालकाय तेजस्वी गजराज आज आपके आगे क्यों नहीं दिखायी देता है?

इस प्रकार लंका दहन के समय कवि ने किस चमत्कारी शैली में इस दृश्य को व्यक्त किया है :-

Scanned with OKEN Scanner

हनूमता वेगवता वानरेण महात्मना।
लंकापुरं प्रदग्धं तद् रुद्रेण त्रिपुरं यथा॥
(वा0रा0 5/54/30, पृष्ठ-160)

अर्थात् जैसे भगवान् रुद्र ने पूर्वकाल में त्रिपुर को दग्ध किया था, उसी प्रकार वेगशाली वानरवीर महात्मा हनुमान् जी ने लंकापुरी को जला दिया।

संदर्भ-सूची

1. पउमचरिउ तथा रामचरित मानस : एक सांस्कृतिक अध्ययन- डा0 डी0 एन0 शर्मा, पृष्ठ-174
2. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास: डॉ0 नेमिचन्द्र शास्त्री, पृष्ठ-312
3. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास: डॉ0 नेमिचन्द्र शास्त्री, पृष्ठ-80
4. पउमचरियं, भूमिका
5. काव्यमीमांसा अ0 2, पृ0 16, राजशेखर
6. मगही काव्यों के आधार पर निर्मित मगही काव्यशास्त्र का स्वरूप : डा0 रामकृष्ण मिश्र, पृ0-267
7. हिन्दी साहित्य कोश पृ0 249
8. पिंगलच्छन्द: सूत्रम् अ02 कारिका 1।
9. ऋग्वेद् सर्वानुक्रमणिका
10. नाट्यशास्त्रम् : अ0 14।
11. साहित्यदर्पण, परि0 6 श्लोक 3/4
12. पल्लव प्रवेश : सुमित्रानन्दन पंत, पृ021
13. साहित्य का मर्म, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 41
14. The Art of verification and technicalities of English verse. Page-1
15. Principles of English Prosody, Page 42
16. प्रसाद एवं रवीन्द्र के काव्य में सौंदर्यबोध : डॉ0 मिथिलेश कुमारी मिश्र, पृ0369
17. मगही काव्यों के आधार पर निर्मित मगही काव्यशास्त्र का स्वरूप, डा0 रामकुमार मिश्र, पृष्ठ-267
18. हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ-249
19. हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1, पृष्ठ-641
20. महाकवि कालिदास : श्रुतबोध, पृष्ठ-1, श्लोक-2
21. छन्दोमंजरी : गंगादास, पृष्ठ-6, श्लोक11, हरिदास संस्कृत ग्रंथमाला
22. मगही काव्यों के आधार पर निर्मित मगही काव्यशास्त्र का स्वरूप, डॉ0 रामकृष्ण मिश्र, पृष्ठ- 269
23. प्रसाद ग्रंथावली, प्रथम खंड, पृष्ठ-64
24. हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ-961
25. मगही काव्यों के आधार पर निर्मित मगही काव्यशास्त्र का स्वरूप : डॉ0 रामकृष्ण मिश्र, पृष्ठ-269

26. लघु सिद्धान्त कौमुदी : संज्ञा प्रकरण, पृ0-4
27. महाकवि कालिदास : श्रुतबोध, श्लोक-3
28. प्रसाद एवं रवीन्द्र के काव्य में सौन्दर्यबोध, पृष्ठ 358, डॉ0 मिथिलेश कुमारी मिश्र
29. प्रसाद एवं रवीन्द्र के काव्य में सौन्दर्यबोध, पृष्ठ 360, डॉ0 मिथिलेश कुमारी मिश्र
30. पिंगलच्छन्दसूत्रम् पृष्ठ-360
31. प्रसाद एवं रवीन्द्र के काव्य में सौन्दर्यबोध, पृष्ठ 383, डॉ0 मिथिलेश कुमारी मिश्र
32. ए विवलियोग्राफी आर्फ द रामायण, पृष्ठ-64
33. ए विवलियोग्राफी ऑफ द रामायण, पृष्ठ-64
34. ए विवलियोग्राफी ऑफ द रामायण, पृष्ठ-64
35. ए विवलियोग्राफी ऑफ द रामायण, पृष्ठ-64
36. कल्याण वाल्मीकि रामायणांक, पृष्ठ-36
37. रामायण, द्वारा- रामास्वामी शास्त्री, पृष्ठ-143
38. कल्याण : संक्षिप्त वाल्मीकि रामायणांक, साहित्य में श्रीमद्वाल्मीकि रामायण की विशेषता- मं0 मथुरानाथ जी शास्त्री, पृष्ठ-20
39. संस्कृत साहित्य का इतिहास,-आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ-24
40. डिपार्टमेंट ऑफ एजुकेशन, रमास्वामी शास्त्री, पृष्ठ-143.

Scanned with OKEN Scanner

सप्तम अध्याय

भारतीय काव्यशास्त्र की सुदीर्घ परम्परा जिन काव्य विच्छित्तियों की चर्चा करती रही है, उसमें अलंकार सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है और यह काव्यशास्त्र का बहुचर्चित विषय रहा है।

भारतीय काव्यशास्त्र (यों सम्पूर्ण शास्त्रों) की परम्परा को हमारे यहां आदि देव शिव से जोड़ा जाता है जिनके ताण्डव नृत्य के समय उनके ठक्का निनाद (डमरू की ध्वनि) से निष्पन्न चतुर्दश ध्वनियों[1] को माहेश्वर सूत्र की संज्ञा दी जाती है तथा उन्हीं ध्वनियों को भारतीय भाषाशास्त्र, संगीत शास्त्र, काव्यशास्त्र तथा कुल मिलाकर सम्पूर्ण वाङ्गमय का मूलाधार माना जाता है। इसकी चर्चा महर्षि पाणिनी ने अपने सुप्रसिद्ध व्याकरण ग्रंथ के मंगलाचरण के रूप में की है-

नृत्तावसाने नटराज राजो ननाद ठक्कां नवपंचवारम्।
उद्धर्त्तुकामः सनकादि सिद्धाः नेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्॥[2]

व्याकरण को "शास्त्राणां मुखम्" कहा गया है। आगे चलकर भाषा शास्त्र, काव्यशास्त्र आदि का विकास भी इन्हीं स्रोतों से हुआ है। अतः काव्यशास्त्र के भी आद्य आचार्य भगवान शिव हैं। उनके बाद आचार्य नन्दिकेश्वर का नामोल्लेख मिलता है। यद्यपि इनके द्वारा प्रणीत कोई ग्रंथ तो नहीं मिलता किन्तु आचार्य भरत ने अपने सुप्रसिद्ध लक्षण ग्रन्थ "नाट्यशास्त्रम्' में इनका नामोल्लेख किया है।

भारतीय काव्यशास्त्र की स्पष्ट परम्परा प्रामाणिक रूप में आचार्य भरत से ही आरम्भ होती है। इन्होंने काव्य का लक्षण बतलाते हुए "मृदु ललित पदाढ्यं, गूढ़ शब्दार्थ हीनं। जनपद सुख बोध्यं युक्ति मन्नृय योज्यं" आदि पदों का प्रयोग कर काव्य में सौंदर्य की महत्ता स्वीकार की है। सौन्दर्य अपने हर रूप मानव के आकर्षण का कारण रहा है। जीवन के हर क्षेत्र में हम सौन्दर्य की अपेक्षा करते हैं। सौन्दर्य मानव का प्रसादक दूसरे शब्दों में आह्लादक तत्त्व है। वह सदैव इन्द्रिय संवेद्य है जिससे मनः प्रसादन होता है। आचार्य भरत को काव्य शास्त्रीय परम्परा में रसवादी आचार्य माना जाता है। इन्होंने "बहुकृत रसमार्ग" कहकर काव्य में रस की प्राणवत् महत्ता स्थापित की है साथ ही रस के उपकारक तत्त्व के रूप में अलंकार का महत्व भी स्वीकार किया है।

अलंकार का शाब्दिक अर्थ है-आभूषण। जो अलंकृत करे, आभूषित करे वह अलंकार है। डॉ0 रामदहिन मिश्र के शब्दों में अलंकार शास्त्र को सौन्दर्य-विज्ञान (Aesrthetic of Poetry) कह सकते हैं।[3] डॉ0 मिश्र के अनुसार काव्य में रस का पहला, गुण का दूसरा तथा अलंकार का तीसरा स्थान है। यों अलंकार रहित रचना भी भाव-संप्रेषक तथा हृदयावर्जक हो सकती है। अलंकार यद्यपि काव्य का अस्थिर धर्म है

फिर भी काव्य में अलंकार का विशेष महत्त्व है। आचार्य भरत (दूसरी शती) के बाद आचार्य भामह के द्वारा (छठी शताब्दी) से आरम्भ होकर सुदीर्घ काल तक अलंकार को काव्य के प्राणतत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है। आचार्य आनन्दवर्धन की मान्यता है कि:-

अनन्ता हि वाग्विकल्पाः।
तत्प्रकाराः तव चालंकाराः॥[4]

अलंकार की परिभाषा देते हुए भारतीय समीक्षकों एवं आचार्यों की परम्परा ने विविध रूपों में अपनी मान्यताएं स्थापित की हैं। यों अलंकारों के अस्तित्व का अन्वेषण विद्वानों ने वैदिक ग्रन्थों से ही आरम्भ किया है। वेद, उपनिषद् और ब्राह्मण ग्रंथ में 'अलंकार' तथा 'अरंकृत' शब्द मिलते हैं। महर्षि यास्क ने इन दोनों शब्दों को पर्याय बतलाया है।[5]

रामायण महाभारत आदि ग्रन्थों में अनेक अलंकारों के उदाहरण भरे पड़े हैं। पुराण साहित्य में भी इसके प्रयोग पर्याप्त संख्या में प्राप्त होते हैं। 'अग्नि पुराण' को तो काव्य शास्त्र का ग्रन्थ ही माना जाता है तथा इसमें काव्य के सांगोपांग विवेचन के क्रम में अलंकारों के स्वरूप पर भी काफी चर्चा हुई है। अग्नि पुराण में इनके लक्षण भी बतलाये गये हैं तथा प्रयोग भी।

आचार्य भरत (वि0 2 शती) ने अपने ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्रम्' में काव्य में अलंकार की महत्ता प्रतिपादित की है तथा 'उपमा रूपकं चैव दीपकं यमकं तथा" आदि कुछ अलंकारों के लक्षण निरूपित करते हुए उनके पर्याप्त उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं।

इनके बाद आचार्य भामह (7-8 शती) जिन्हें अलंकार सम्प्रदाय का संस्थापक आचार्य माना जाता है, ने अलंकार पूर्ण शब्दार्थ को ही काव्य की संज्ञा दी है। "शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्[6] यहां सहितौ का अर्थ टीकाकारों ने 'सालंकारौ' बतलाया है। इन्होंने अलंकार को काव्य की अनिवार्य शर्त बतलाते हुए उसकी अतिशय महत्ता प्रतिपादित की है। कविता की तुलना वनिता से करते हुए इन्होंने कहा है:-

"न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्"[7]

अर्थात् वनिता का सुन्दर मुख भी आभूषणरहित होने पर प्रिय को अच्छा नहीं लगता। वैसे ही अलंकार रहित कविता भी आनन्ददायक नहीं होती। इसी स्थापत्य को दुहराते हुए हिन्दी के रीति कालीन आचार्य कविवर केशवदास ने कहा है- जदपि सुजाति सुलक्षणी सुवरण सरस सुवृत्त। भूषण विनु न विराजई कविता बनिता मित्त॥ कहकर अलंकार की अनिवार्यता और महत्ता को बतलाया है।[8] भारतीय समीक्षकों के अनुसार इन्होंने अलंकार को काव्य की आत्मा बतलाया है। आचार्य भामह ने अलंकार को वक्रोक्ति को समस्त अलंकारों का आश्रय तथा समस्त अलंकारों में व्यापक बतलाया है। अलंकार को परिभाषित करते हुए इन्होंने कहा है।

"सैषा सवैव वक्रोक्ति रनयार्थो विभाव्यते।
यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलंकारोऽनया विना॥[9]

अर्थात् अलंकार ऐसी शब्दोक्ति है जो वक्र का विधायक होती है। वक्रोक्ति के बिना कोई अलंकार है ही नहीं। क्योंकि अर्थ को विभामय करने वाली समस्त विद्या वक्रोक्ति है। यहां 'वक्रोक्ति' शब्द अलंकार विशेष का वाचक नहीं, उसका तात्पर्य चमत्कारपूर्ण वाग्विधान से है।

इन्हीं के समकालीन आचार्य दण्डी ने काव्य के शोभाकारक (शोभा विधायक) धर्म को अलंकार बतलाया है-"काव्य शोभा करान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते"[10]। तदनुसार अलंकार काव्य का शोभा कारक धर्म है।

आचार्य वामन ने (8वीं शती) आचार्य दण्डी की स्थापना में संशोधन करते हुए बतलाया है कि काव्य का शोभा विधायक धर्म अलंकार नहीं, गुण है, अलंकार उसका अतिशय हेतु है। तदनुसार-"काव्य शोभाया: कर्त्तारो धर्मा: गुणा:। तदतिशय हेतवस्त्वलंकारा:"[11] इन्होंने काव्य का शोभाकारक धर्म अलंकार को नहीं बतलाकर गुण को बतलाया है। माधुर्य प्रसाद और ओज आदि गुण ही काव्य का शोभाकारक धर्म है। अलंकार उसके अतिशय कारक (हेतु) हैं। आचार्य वामन ने अलंकार को परिभाषित करते हुए -"सौन्दर्यमलंकार:"[12] कहा है। तदनुसार सौन्दर्य मात्र ही अलंकार है। अलंकार की महत्ता बतलाते हुए इन्होंने कहा है-"काव्यं ग्राह्यमलंकारात्"[13] अर्थात्- अलंकार के बदौलत ही काव्य ग्राह्य होता है। काव्य की शोभा अथवा उसका सौन्दर्य अलंकारों में ही सन्निहित है। सौन्दर्य ही अलंकार है। दूसरे शब्दों में यह कहना अनुचित न होगा कि आचार्य वामन ने सौन्दर्य को अलंकार के पर्याय के रूप में स्वीकार किया है। वस्तुत: अलंकारों के माध्यम से भाव और भाषा दोनों में ही सौन्दर्य का आधान होता है।

आचार्य रुद्रट ने अपने ग्रंथ 'अलंकार सर्वस्वम्' में अभिधान प्रकार विशेष एवं अलंकारा:[14] कह कर कवि प्रतिभा से प्रसूत कथन विषेष को ही अलंकार कहा है। तदनुसार अलंकार कवि के अभिव्यक्ति कौशल की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। इसे और भी स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि एक ही तरह की परिस्थिति विभिन्न व्यक्तियों पर अलग अलग ढंग से प्रभाव डालती है तथा एक ही अनुभूति को विविध कलाकार विविध कौशलों में अभिव्यक्त कर उसे सौन्दर्य प्रदान करते हुए सहृदय हृदयावर्जक बनाते हैं। यह अभिव्यक्तिपरक विविधता ही अलंकार है जिसमें काव्य में सौन्दर्य की होती है।

ध्वनि संप्रदाय के संस्थापक आनन्दवर्धन ने (9वीं शती) भी आचार्य रुद्रट का समर्थन करते हुए अलंकार की परिभाषा दी है। इन्होंने बतलाया है:-

अनन्ता हि वाग्विकल्पा:।
तत्प्रकारा: एव अलंकारा:[15]

अर्थात् वाणी की अनन्त शैलियाँ ही अलंकार है। अन्यत्र उन्होंने कहा कि रस-कर्तृक आक्षिप्त वा आकृष्ट होने से जिसकी रचना संभव हो और रस के सहित एक ही प्रयत्न द्वारा जो सिद्ध हो वही अलंकार ध्वनि में मान्य है। इन्होंने अलंकारों को काव्य का सौन्दर्य कारक तत्त्व तो निर्विवाद रूप से स्वीकार किया है किन्तु इसकी सत्ता इन्होंने ध्वनि के अनेक भेदोपभेद बतलाते हुए "अलंकार ध्वनि' में समाहित कर दिया है। ये

अलंकारों को काव्य का प्राणतत्त्व न मानकर बाह्य सौन्दर्य ही मानते हैं। किन्तु सौन्दर्य के सृजन में अलंकारों का महत्त्वपूर्ण स्थान बतलाते हैं।"काव्यस्यात्माध्वनिरिति बुधर्य: समाम्नातपूर्व"[16] के उद्घोषक आचार्य आनन्दवर्धन ने अलंकार को रस के पोषक तत्त्व के रूप में स्वीकार किया है। रस से पृथक् उसके अस्तित्व में उनका विश्वास नहीं:-

रसाक्षिप्तया यस्य बन्ध: शक्यक्रियो भवेत्।
अपृथऽयत्न निर्वर्त्य सोऽलंकारों ध्वनौ मत: । [17]

अर्थात् रस और अलंकार की सिद्धि एक ही प्रयत्न में होनी चाहिए अलग से इसे प्रयोग की कोई आवश्यकता नहीं बनती। यानि उसका प्रयोग सायास न होकर सदैव अनायास होता है। 'विवक्षा तत्परत्वेन नाङ्गित्वेन कदाचन'[18] कहकर उन्होंने रसादि के अंग के रूप में अलंकारों के प्रयोग की मान्यता दी है किन्तु इन्हें अंगी होने को स्वीकार किया है। अर्थात् अलंकार काव्य का अंग हो सकता है कतई वह अंगी (आत्मा) नहीं हो सकता।

इनके परवर्ती 'वक्रोक्ति सम्प्रदाय' के संस्थापक तथा "वक्रोक्ति: काव्य जीवितम्" की स्थापना करने वाले आचार्य कुन्तक ने (10-11 शती ई0) भी अलंकार का स्वरूप विवेचन करते हुए आचार्य आनन्दवर्धन का समर्थन किया है तथा प्रकारान्तर से इन्हीं को संपुष्टि की हैं'

"वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्य भंगी भणितिरुच्यते" [19]

अर्थात् वाक्पटु साहित्यकारों (वाग्विदग्धौ) का अभिव्यक्ति कौशल (कहने का ढंग अथवा Diction) ही वक्रोक्ति है और वे ही अलंकार हैं। काव्य की परिभाषा देते हुए भी इन्होंने "शब्दार्थो सहितौ वक्रकवि व्यापार शालिनी। बन्धे व्यवस्थितौ काव्यम् तद्विदाह्लादकारिणीम्" कह कर सिद्ध किया वक्र कवि व्यापार से सम्पन्न रचना काव्य मर्मज्ञों के लिए आह्लादकारिणी होती है। दूसरे शब्दों में कहना यथेष्ट होगा कि वक्र कवि व्यापार ही काव्य का सौन्दर्य है, वही अलंकार है।

आचार्य मम्मट (11वीं शती ई0) ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'काव्य प्रकाश' में अलंकार को रस के पोषक तत्त्व के रूप में स्वीकार किया है। काव्य की परिभाषा में "तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति: पुन: क्वापि" कहकर इन्होंने दोष रहित तथा गुण युक्त शब्दार्थ व्यापार को अलंकार रहित होने पर भी काव्य के रूप में स्वीकार करते हुए काव्य में अलंकार की अनिवार्यता समाप्त कर दी है। वैसे अलंकार को परिभाषित करते हुए इन्होंने बतलाया है-

उपकुर्वन्ति तं सन्तं यऽङ्गद्वारेण जातुचित्।
आरादिवदलंकारास्तेऽनुप्रासोपमादय:।। [20]

अर्थात् अलंकार कविता रूपी सुन्दरी के लिए हार आदि आभूषणों की तरह है तथा वे रस के सम्पोषक तत्त्व के रूप में ग्राह्य है। दूसरे शब्दों में कहना समीचीन होगा कि आ0 मम्मट ने रस को अंगी तथा अलंकार को उसका उपकारक माना है।

Scanned with OKEN Scanner

इनके परवर्ती आ0 जयदेव (13वीं शती वि0) ने आ0 मम्मट के मत का प्रत्याख्यान करते हुए कहा है कि काव्य में रस भी निर्विवाद है किन्तु अलंकारयुक्त कविता विचार को उल्लसित करती है। काव्य में अलंकार की महत्ता बतलाते हुए इन्होंने कहा है-

"अंगी करोती यः काव्य शब्दार्थावनलंकृतीः।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णं अनलं का1ती॥" [21]

ऐसा कहकर इन्होंने अग्नि और उष्णता की तरह ही काव्य और अलंकार का अविच्छिन्न सम्बन्ध प्रतिपादित किया। एक बार प्रकारान्तर से आ0 जयदेव ने अलंकार को काव्यात्मा के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया। उष्णता अग्नि का प्राणतत्त्व है। यदि उष्णतारहित अग्नि का अस्तित्व संभव नहीं तो अलंकार रहित काव्य का अस्तित्व भी असंभव है। अतः इनके अनुसार अलंकार ही काव्य का प्राण है।

चौदहवीं शताब्दी में आनेवाले रसवादी आचार्य विश्वनाथ ने आ0 आनन्दवर्धन तथा आ0 मम्मट दोनों ही के प्रभाव को ग्रहण करते हुए अलंकार को शब्द और अर्थ के शोभातिशायी अर्थात् सौन्दर्य की विभूति बढ़ानेवाले अस्थिर बतलाया है। यथा-

"शब्दार्थयो रस्थरा ये धर्माः शोभातिशायिनः।
रसादीपन कुर्वन्तोऽलंकारा स्वेऽङ्गदादिवत्॥ [22]

हिन्दी के रीतिकालीन कवि आचार्य केशव, देव, भिखारीदास आदि ने अलंकार के सम्बन्ध में जो मान्यताएं स्थापित की हैं वे संस्कृत आचार्यों का अनुसरण ही कही जा सकती है। यथा-

"काहे को सिंगार कै बिगारति है मेरी आली
तेरे अंग बिना ही सिंगार के सिंगारे है। [23]

"अलंकार पहिरे अधिक अद्भुत रूप लखति" [24]

"बिनु भूषणनहिं भावइ कविता" [25]

"भूषण है भूषण सकल" [26]

इस प्रकार इन आचार्यों ने अलंकारों की महत्ता बतलायी उसकी कोई परिभाषा नहीं दी या दूसरे शब्दों में "शब्दार्थयोरस्थिराये धर्माशोभातिशायिनः" को ही अपनी परिभाषा में मान लिया। कविवर पद्माकर ने कुछ अलग हटकर इनका लक्षण बतलाया है-

"शब्दहुँ तेकहुँ अर्थ ते कहुँ दुहुँ ते उर आनि।
अभिप्राय जिहि भाँति जहँ अलंकार सोभानि" [27]

कहकर स्पष्ट किया शब्द अथवा अर्थ से अथवा दोनों ही से जहां चमत्कार पूर्ण अर्थात् सौंदर्यपरक कथन किया जाय वही अलंकार है।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध समीक्षक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार- अलंकार कथन की रोचक, सुष्टु और प्रभावपूर्ण प्रणाली है। यथा:-

"अलंकार है क्या? वर्णन करने की अनेक प्रकार की चमत्कारपूर्ण शैलियां, जिन्हें काव्यों से चुनकर प्राचीन आचार्यों ने नाम रखे और लक्षण बनाये। ये शैलियाँ न जाने कितनी हो सकती हैं। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि जितने अलंकारों के नाम ग्रंथों में मिलते हैं, उतने ही अलंकार हो सकते हैं।" [28]

अन्यत्र उन्होंने अलंकार को परिभाषित करते हुए कहा है-"भावों का उत्कर्ष दिखलाने और वस्तुओं के रूप और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी-कभी सहायक होनेवाली उक्ति ही अलंकार है।" [29]

कविवर सुमित्रानन्दन पंत के अनुसार-अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं। वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं। भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान है। वे वाणी के आचार-व्यवहार रीति नीति है। पृथक् स्थितियों के पृथक् स्वरूप भिन्न व्यवस्थाओं के भिन्न चित्र हैं। वे वाणी के ह्रास अश्रु स्वप्न पुलक हाव-भाव हैं। जहां भाषा की जाली केवल अलंकारों के चौखटे में फिट करने के लिए बुनी जाती है वहां भावों की उदारता शब्दों की कृपण जड़ता में बंधकर सेनापति के दाता और सूम की तरह 'इक्सार' हो जाती है।

उक्त मान्यताओं के आधार पर कहना समीचीन है कि अलंकार भावों की सुन्दर एवं आह्लादकारी अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त वाणी विधान है। इसके प्रयोग से कल्पना संवलित होती तथा अभिव्यक्ति सुन्दर बन पाती है। अलंकार सदैव शरीर धर्मी है। भारतीय मनीषा ने शब्द और अर्थ को काव्य का शरीर माना है। आ0 दण्डी ने "शरीरं तावदिष्यर्थ व्यवच्छिन्ना पदावली" कहकर काव्यात्मा सम्बन्धी प्रश्न को जन्म दिया और सदियों तक यह विवाद बना रहा। किन्तु शब्द और अर्थ का अस्तित्व काव्य के शरीर के रूप में अद्यावधि स्वीकार्य है। स्पष्ट है कि आभूषण सदैव शरीर को सुसज्जित करता है भले ही इससे आत्मा का प्रसादन होता है। अतः काव्य में अलंकार का महत्त्व सदैव सौंदर्यवर्धक तत्त्व के रूप में है। इसके प्रयोग में कवि कल्पना सदैव सहायक होती है। यों हिन्दी का कोई काव्यशास्त्र नहीं है। काव्यशास्त्रीय निकष के लिए लगभग समस्त भारतीय भाषाएं प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से संस्कृत की ऋणी है। हिन्दी में भी रीति काल से अब तक काव्यशास्त्र की पूरी परम्परा का आधार संस्कृत ही है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अलंकार शब्द और अर्थ को चमत्कृत करते हैं। अतः इस आधार पर अलंकारों के प्रायः दो वर्ग किये जाते हैं- (1) शब्दालंकार तथा (2) अर्थालंकार। जहां चमत्कार की सृष्टि शब्दों के माध्यम से होती है वहां शब्दालंकार तथा जहां चमत्कार की सृष्टि अर्थ के माध्यम से होती है, वहां अर्थालंकार होता है।

शब्दालंकार

"शरीर तावदिष्यर्थ व्यवच्छिना पदावली" [30] कहकर आचार्य दण्डी ने तथा "शब्दार्थयार्यथा वत्सहभावेन विद्या साहित्य विद्या" [31] कहकर आचार्य राजशेखर ने आचार्य भामह कृत काव्य लक्षण "शब्दार्थो सहितौ काव्यं" [32] को स्पष्टता प्रदान की। समस्त लक्षण ग्रंथ परम्परा ने शब्द और अर्थ को काव्य का कलेवर स्वीकार किया है क्योंकि शब्दों के बिना भाव की अभिव्यक्ति संभव नहीं है और भावों की प्रभावक

Scanned with OKEN Scanner

अभिव्यक्ति में साहित्य का स्वरूप व्यक्त होता है। अभिव्यक्ति का सौंदर्य शब्द और अर्थ पर ही निर्भर है क्योंकि ये दोनों भाव की अभिव्यक्ति के अन्यतम माध्यम हैं। डॉ0 श्याम सुन्दर दास ने काव्य तत्वों का विवेचन करते हुए शब्द और अर्थ तथा सौन्दर्य को काव्य का महत्वपूर्ण तत्व माना है। शब्द और अर्थ को काव्य का उपादान कारण मानना भी अनुचित नहीं होगा। सौन्दर्य की अभिव्यक्ति उसका निमित्त कारण है।

शब्द और अर्थ, जिसे दूसरे शब्दों में वागर्थ कहा जाय परस्पर अभिन्न है। निरर्थक ध्वनि को शब्द नहीं कहा जा सकता। वैयाकरणों ने काव्यों में अलंकारों का बड़ा महत्त्व माना है। भाषा और भाव दोनों को चमत्कृत रूप देकर समाकर्षक बना देना इन्हीं का काम है। इसी कारण कुछ आचार्यों ने अलंकार को काव्य का प्राण कहा है।

अलंकार शब्द का अर्थ है पर्याप्त रूप से सुसज्जित और सुशोभित करने वाला। 'अलंकियते अनेनेति अलंकारः' कहना चाहिए। किसी वस्तु को अलंकृत करने वाला अलंकार है। अथवा जिससे काव्य को अलंकृत किया जाय वही अलंकार है। कहने का तात्पर्य यह कि काव्य को सुशोभित करने वाले उन विधानों को अलंकार कहते हैं, जिनके द्वारा काव्य में आकर्षक चमत्कार आ जाता है। अलंकार से तात्पर्य सौंदर्य का भी है। कहा भी गया है- "सौंदर्यमलंकार"। सौंदर्य सदा आनन्दप्रद होता है-इसलिए अलंकार भी आनन्दप्रदायक है। काव्य की शोभा और श्री के बढ़ाने में अलंकार ही सर्वथा समर्थ है। ध्यान रहे कि केवल भाषा सौन्दर्य विधान ही अलंकार नहीं है वरन् भावोत्कर्षकारक और रस रस-भावोद्दीप्तिकारक सारे विधान भी अलंकार ही हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि काव्य की शोभा को बढ़ाते हुए रस-भावादि के उत्कर्ष चारु चातुर्य-चमत्कारपूर्ण वे सब विधान अलंकार हैं, जो शब्द और अर्थ में समाकर्षक सौंदर्य ला देते हैं। जिस प्रकार शरीर की शोभा आभूषणों से बढ़ती है उसी प्रकार अलंकारों से भी भाषारूपी काव्य शरीर का सौंदर्य बढ़ता है। आभूषणों से जैसे शरीर-शोभा वृद्धि के साथ ही मन भी प्रसन्न होता है और उसमें कुछ गौरव का भाव आ जाता है उसी प्रकार अलंकारों से भी काव्य के मन रूपी भाव को विशेषता मिलती है। इसलिए अलंकार काव्य में आवश्यक ही क्या अनिवार्य ही ठहरते हैं। यह ठीक है कि काव्य अलंकारों के बिना भी सुखद और सरस हो सकता है, किन्तु सौंदर्य तो काव्य का प्राण है। इसलिए सौदर्यकारक अलंकार काव्य में आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य भी हैं।

काव्य के प्रमुख तीन ही अंग हो सकते हैं-भाषा, भाव और शैली। इन तीनों में से भाषा विशेष प्रधान हैं। क्योंकि भाव भाषा के बिना प्रकट हो ही नहीं सकता। उसकी सत्ता और महत्ता इसी पर निर्भर है। भाषा के दो भाग हैं- शब्द और अर्थ। इसलिए काव्य में सौंदर्य चमत्कार इन्हीं दोनों से सम्बन्ध रखता है। जब काव्य में शाब्दिक सौंदर्य प्रधान होता है तब उस सौंदर्य विधान को शब्दालंकार और जब अर्थ सम्बन्धी सौंदर्य-चमत्कार प्रधान रहता है तब उस सौंदर्य विधान को अर्थालंकार कहते हैं। जब कभी अर्थात्मक और सौंदर्यात्मक साथ ही साथ रहता है तब उसे उभयालंकार कहते हैं।

पउमचरियं में अलंकार

अलंकारों के सम्बन्ध में विभिन्न आचार्यों ने भिन्न-भिन्न मत प्रकट किये हैं। अलंकार अधिकांशतः सादृश्यमूलक होते हैं और इन सादृश्यमूलक अलंकार की आत्मा उपमा है। क्योंकि वह स्वतः सादृश्य है। वास्तव में सादृश्य का नाम ही उपमा है। इसलिए उपमालंकार अनेक अलंकारों का उत्पादक है। भरत से लेकर आधुनिक काल तक के प्रायः सभी आचार्यों ने उपमा की इस महत्ता को स्वीकार किया है। राजशेखर ने तो इसे सम्पूर्ण अलंकारों में शिरोभूषण के समान काव्य की सम्पत्ति एवं कवि वंश की जननी कहा है। उपमा की सर्वप्रथम व्याख्या करते हुए भरत का कथन है कि काव्य-ग्रंथों में सादृश्य के आधार पर गुण-आकृति के आश्रय से जो तुलना की जाती है-वह उपमा कहलाती है। साहित्य दर्पणकार के अनुसार एक वाक्य में दो पदार्थों के वैधर्म्यरहित बाध्य सादृश्य को उपमा कहते हैं। इस प्रकार जयदेव के अनुसार उपमान और उपमेय दोनों में यहां चमत्कृत्य सौंदर्यमूलक सादृश्य कहा जाता है, उपमा है।

उपमा अलंकार

यह अलंकार इस ग्रन्थ में अनेक स्थलों पर देखने को मिलता है। उपमा अलंकार के कुछ अंश नीचे उद्धष्टत हैं-

तं चेव उत्तिमंगं, जं घुम्मइ वण्णणाइसामन्ने।
अन्नं पुण गुणरहियं, नालियरकरंकयं चेव॥

(पउमचरियं, 1/20, पृष्ठ-3)

अर्थात् वही मस्तक-मस्तक है जो श्रामण्य अर्थात् मुनिधर्म का उपदेश सुनकर अहोभाव से धुनता हो; दूसरा तो गर्भरहित नारियल के छिलके के समान गुणरहित है।

इसी तरह और भी स्थल उपमा से इस प्रकार अलंकृत हुआ है जो उपमा और उपमेय से दूध पानी की तरह मिश्रित होकर अनुपम शोभा प्रकट करने वाला बन गया है:-

जा जाणइ समयरसं, सा जीहा सुन्दरा हवइ लोए।
दुव्वयणतिक्खधारा, सेसा छुरिय व्व नवघडिया॥

(पउमचरियं, 1/25, पृष्ठ-3)

अर्थात् जो शास्त्र-रस का आस्वाद लेती है वही जीभ इस जगत् में सुन्दर है; दूसरी तो दुर्वचनरूपी तीक्ष्ण धारवाली नई छुरी के समान ही है।

मूलोपमा अलंकार भी अपने सजीव रूप में नीचे की पंक्तियों में देखने को मिलता है-

दट्ठुं वसन्तमाला, तिहत्थमेत्तट्ठियं गयवरारिं।
पासेसु अज्जणाए, कुरलि व्व नहंगणे भमइ॥
हाहा! हया सि मुद्धे!, पुव्वं दोहमाविरहदुक्खेणं।
बन्धवजणेण चत्ता, पुणरवि सीहेण पडिरुद्धा॥

(पउमचरियं, 17/79-80, पृष्ठ-172)

अर्थात्- अंजना के पास तीन हाथ जितनी दूरी पर स्थित सिंह को देखकर वसन्तमाला कुरली पक्षिणी की भाँति आकाश में घूमने लगी। हे मुग्धे! पहले दुर्भाग्यवश विरह-दुःख से तू मारी गई और बन्धुजनों ने तेरा परित्याग किया। अब पुनः तू सिंह के द्वारा घेरी गई है।

रूपक अलंकार

रूपक अलंकार पउमचरियं में इस प्रकार उद्धृत हैं:-

अहा अञ्जणा कयाई, वसन्तमालाए विरइएँ सयणे।
वरदारयं पसूया, पुव्वदिसा चेव दिवसयरं॥

(पउमचरियं, 17/89, पृष्ठ-172)

अर्थात् इसके पश्चात् कभी वसन्तमाला द्वारा विरचित शयन के ऊपर अंजना ने पूर्व दिशा में उगने वाले सूर्य की भाँति एक उत्तम पुत्र को जन्म दिया।

उत्प्रेक्षा अलंकार

उत्प्रेक्षा अलंकार का उदाहरण इस महाकाव्य में इस प्रकार देखने को मिलता है:-

उच्छरइ तमो गयणे, मइलन्तो दिसिवहे कसिणवण्णो।
सज्जणचरिउज्जोयं, नज्जइ ता दुज्जणसहावो।

(पउमचरियं, 2/100, पृष्ठ-16)

अर्थात् दिक्पथों को अपने कृष्णवर्ण से मलिन करता हुआ अंधकार आकाश में फैल गया। इससे सज्जनों के चरित्र का प्रकाश तथा दुर्जनों का स्वभाव कैसा होता है यह जाना जाता है।

मुद्रालंकार

प्रत्येक उद्देश्य/पर्व के अन्त में महाकवि ने अपना नाम अंकित किया है। इन स्थलों पर मुद्रालंकार का प्रयोग किया गया है। उदाहरणस्वरूप पंक्तियाँ यहां उद्धृत हैं:-

वरकमलनिबद्धा निग्गायालीसमत्ता, महुरसरनिनायाच्चन्तरम्मा पदेसा।
तरुपवणवलग्गा पुप्फरेणुं मुयन्ता, विमलकिरणमन्ताइच्चभासा विसुद्धा॥

(पउमचरियं, 2/119/ पृष्ठ-18)

अर्थात् उस समय वह प्रदेश मत्त भौरों के चले जाने से उत्तम कमलों से छाया हुआ-सा था, मधुर स्वर के निनाद से वह अत्यन्त रम्य प्रतीत होता था, पवन के संसर्ग से वृक्ष पुष्पों की रज विखेर रहे थे और विमल किरणों वाले सूर्य के प्रकाश से वह प्रदेश विशुद्ध प्रतीत होता था।

इनके अलावा इस महाकाव्य में संदेह अलंकार, भ्रांतिमान अलंकार, निदर्शन प्रतिवस्तुपमा, तुल्ययोगिता, शब्दालंकार आदि का प्रयोग देखने को मिलता है।

(ख) वाल्मीकि रामायण में अलंकार

महर्षि वाल्मीकि ने अपनी रामायण के श्लोकों को विभिन्न अलंकारों से विभूषित किया है। उपमा, रूपक, तथा उत्प्रेक्षा अलंकारों का सुन्दर प्रयोग वर्ण्य वस्तु के रूप, गुण और स्वभाव का स्पष्टीकरण बड़ी रुचिता के साथ किया गया है। कालीदासीय

उपमा अपनी सुषमा के लिए आलोचकों के समादर की भावना बनी हुई है। परन्तु वाल्मीकीय उपमा में कुछ अपना निजी वैशिष्ट्य तथा रुचिर चमत्कार है जिसकी तुलना अन्यत्र नहीं मिलती।

वाल्मीकीय उपमा अपने औचित्य, आनुरूप्य तथा रसानुकूल्य से आलोचकों का ध्यान बरबस आकृष्ट करती है। उसकी बड़ी मार्मिक विलक्षणता है-मूर्त की अमूर्त पदार्थों से तुलना। अशोकवाटिका के एकान्त में बैठी हुई दयनीय सीता के चित्रण में वाल्मीकि ने उपमाओं का एक भव्य व्यूह खड़ा कर दिया है जो साहित्य संसार में एकदम अछूती, नवीन और चमत्कारिणी है। शोक के भार से दबी सीता धूमजाल से संतप्त अग्नि की शिखा के समान है। संदिग्ध स्मृति, विहत श्रद्धा, प्रतिहत आशा, विघ्न बाधा से युक्त सिद्धि, कलुषित बुद्धि, नवीन अपवाद के कारण विनष्ट कीर्ति के साथ शोकमग्ना सीता की तुलना करने वाला कवि हमारे हृदय में दैन्य की भावना को तीव्र कर रहा है तथा सीता के दशावैषम्य के उत्कर्ष की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कर रहा है। उदाहरण स्वरूप कवि की ये पंक्तियाँ उद्धृत हैं:-

शोकजालेन महता विततेन न राजतीम्।
संसक्तां धूमजालेन शिखामिव विभावसोः॥

(वा0रा0,भाग-2, 5/15/32, पृष्ठ-58)

अर्थात् वे विस्तृत महान् शोकजाल से आच्छादित होने के कारण विशेष शोभा नहीं पा रही थीं। धूएं के समूह से मिली हुई अग्निशिखा के समान दिखायी देती थीं।

इसी तरह सीता को देखकर हनुमान की बुद्धि संदेह में पड़ जाती है। जिस प्रकार शास्त्र के अनाभ्यास से विद्या नितान्त शिथिल बन जाती है और पग-पग पर संदेह पैदा करती है। उसी तरह कवि ने इन पंक्तियों में उल्लेख किया है:-

तस्य संदिदिहे बुद्धिस्तथा सीतां निरीक्ष्य च।
आम्नायानामयोगेन विद्यां प्रशिथिलामिव॥

(वा0रा0-भाग-2, 5/15/38, पृष्ठ-59)

अर्थात् अभ्यास न करने से शिथिल (विस्मृत) हुई विद्या के समान क्षीण हुई सीता को देख कर हनुमान् जी की बुद्धि संदेह में पड़ गयी।

अलंकारविहीन सुषमा में सीता को देख हनुमान जी को उनकी पहचान में भी कठिनाई हुई। हनुमान जी ने बड़े कष्ट से पहचाना कि यही सीता हैं। जिस प्रकार संस्कार से हीन तथा अर्थान्तर में प्रयुक्त वाणी को सुनकर श्रोता बड़ी कठिनाई से उसके स्वरूप को पहचानता है उसी प्रकार कवि ने निम्नलिखित पंक्तियों में उल्लेख किया है:-

दुःखेन बुबुधे सीतां हनुमाननलंकृताम्।
संस्कारेण यथा हीनां वाचमर्थान्तरं गताम्॥

(वा0रा0-भाग-2, 5/15/39, पृष्ठ-59)

अर्थात् अलंकार तथा स्नान-अनुलेपन आदि अंगसंस्कार से रहित हुई सीता व्याकरणादिजनित संस्कार से शून्य होने के कारण अर्थान्तर को प्राप्त हुई वाणी के समान पहचानी नहीं जा रही थीं। हनुमानजी ने बड़े कष्ट से उन्हें पहचाना।

Scanned with OKEN Scanner

इसी प्रकार इस ग्रन्थ में उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रदर्शन भी बड़ा चमत्कारपूर्ण है। लंका दहन के समय हनुमान अरिष्ट पर्वत पर जब चढ़ते हैं तब वाल्मीकि ने उत्प्रेक्षाओं की झड़ी लगा दी है। एक से एक नवीन चमत्कारी उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग कर कवि ने इस ग्रन्थ को उत्कृष्ट बना दिया है। उदाहरणार्थ-:

तोयौघनिःस्वनैर्मन्द्रैः प्राधीतमिव पर्वतम्।।
प्रगीतमिव विस्पष्टं नानाप्रस्रवणस्वनैः।
देवदारुभिरुद्ध तैरूर्ध्वबाहुमिव स्थितम्।।

(वा0रा0-भाग-2, 5/56/28-29, पृ०-167)

अर्थात् पर्वतीय नदियों की जलराशि के गम्भीर घोष से ऐसा लगता था, मानो वह पर्वत सस्वर वेदपाठ कर रहा हो। अनेकानेक झरनों के कलकल नाद से वह अरिष्टगिरि स्पष्टतया गीत-सा गा रहा था। ऊंचे-ऊंचे देवदारु वृक्षों के कारण मानो हाथ ऊपर उठाये खड़ा था।

कवि ने अलंकारों का यह विन्यास पाठकों के हृदय में केवल कौतुक तथा चमत्कार उत्पन्न करने के लिए नहीं किया है, प्रत्युत यह रसानुकूल है-मूल रस का पर्याप्त रूप से पोषक, संवर्द्धक तथा परिबृंहक है।

इस ग्रंथ में रूपक अलंकार की भी छटा कम सुहावनी नहीं है। तात्पर्य यह है कि रामायण में कला पक्ष का विकास भी बड़ी सुन्दरता के साथ किया गया है। तथ्य यह है कि रामायण में कला पक्ष का विकास भी बड़ी सुन्दरता के साथ किया गया है। तथ्य यह है कि रसमग्न कवि जान-बूझ कर किसी शाब्दिक शोभा या आर्थी छटा को अपने काव्य में रखने का प्रयत्न नहीं करता, प्रत्युत वे आप से आप उपस्थित हो जाते हैं तथा काव्य को चमत्कृत बनाते हैं। रसाविष्ट दशा में स्वतः आविर्भूत हो जाते हैं। यह तथ्य हमारे आलोचकों ने वाल्मीकि की काव्यकला के विश्लेषण से अवगत किया है।

ग्रन्थ के अलंकारों की बगिया से रूपक अलंकार रूपी यह पुष्प उद्धृत है:-

मन्थराप्रभवस्तीव्रः कैकेयीग्राहसंकुलः।
वरदानमयोऽक्षोभ्योऽमज्जयच्छोकसागरः।।

(वा0रा0-खंड-1, 2/77/13, पृष्ठ-396)

अर्थात् हाय! मन्थरा से जिसका प्राकट्य हुआ है, कैकेयीरूपी ग्राह से जो व्याप्त है तथा जो किसी प्रकार भी मिटाया नहीं जा सकता, उस वरदानमय शोकरूपी उग्र समुद्र ने हमसब लोगों को अपने भीतर निमग्न कर दिया है।

इसी तरह रूपक अलंकार का दूसरा पुष्प उद्धृत है:-

विषादनक्राध्युषिते परित्रासोर्मिमालिनि।
किं मां न त्रायसे मग्नां विपुले शोकसागरे।।

(वा0रा0,खंड-1, 3/21/12, पृ०-539)

अर्थात् मैं शोक के उस विशाल समुद्र में डूब गयी हूँ, जहां विषादरूपी मगर निवास करते हैं और त्रास की तरंगमालाएं उठती रहती हैं। तुम उस शोकसागर से मेरा उद्धार क्यों नहीं करते हो?

महर्षि वाल्मीकि ने अपने ग्रंथ में यमक अलंकार का प्रयोग किया है जो बिल्कुल सार्थक प्रतीत होता है।

या भाति लक्ष्मीर्भुवि मन्दरस्था
यथा प्रदोषेषु च सागरस्था।
तथैव तोयेषु च पुष्करस्था
रराज सा चारुनिशाकरस्था।।

(वा0रा0,खंड-2, 5/5/3, पृष्ठ-25)

अर्थात् भूतल पर मन्दराचल में, संध्या के समय महासागर में और जल के भीतर कमलों में जो लक्ष्मी जिस प्रकार सुशोभित होती हैं, वे ही उसी प्रकार मनोहर चन्द्रमा में शोभा पा रही थीं।

इसी प्रकार 13वें और 14वें श्लोकों में यमक अलंकार का बड़ा ही चमत्कारी रूप प्रस्तुत हुआ है:-

ददर्श कान्ताश्च समालभन्त्य-
स्तथापरास्तत्र पुनः स्वपन्त्यः।
सुरूपवक्त्राश्च तथा हसन्त्यः
क्रुद्धाः पराश्चापिविनिःश्वसन्त्यः।।

(वा0रा0,खंड-2, 5/5/13, पृष्ठ-26)

अर्थात् हनुमान जी ने यह भी देखा कि नायिकाएं अपने अंगों में चन्दन आदि का अनुलेपन करती हैं। दूसरी वहीं सोती हैं। तीसरी सुन्दर रूप और मनोहर मुखवाली ललनाएं हंसती हैं तथा अन्य वनिताएं प्रणय-कलह से कुपित हो लंबी सांसें खींच रही हैं।

महागजैश्चापि तथा नदद्भिः
सुपूजितैश्चापि तथा सुसभ्दिः।
रराज वीरैश्व पिलिःश्वसभ्दि-
र्ह्रदा भुजंगैरिव निःश्वसभ्दिः।।

(वा0रा0,भाग-2: 5/5/14, पृष्ठ-26)

अर्थात् चिंग्घाड़ते हुए महान् गजराजों, अत्यन्त सम्मानित श्रेष्ठ सभासदों तथा लंबी सांसें छोड़नेवाले वीरों के कारण वह लंकापुरी फुफकारते हुए सर्पों से युक्त सरोवरों के समान शोभा पा रही थी।

इसी प्रकार सुन्दरकांड के पांचवें और छठे सर्ग में भी यमक अलंकार के नमूने देखने को मिलते हैं:-

वाल्मीकि रामायण में प्रयुक्त कुछ अन्य अलंकारों के नमूने नीचे उद्धृत हैं

उत्प्रेक्षा **रसाकुलंषट्पदसन्निकाशं**
प्रभुज्यते जम्बुफलं प्रकामम्।
अनेकवर्णं पवनावधूतं
भूमौ पतत्याभ्रफलं विपक्वम्।। 19

वृक्ष में जामुन का ज्योंही ललियाना शुरू होता है, बालवृन्द का बम-प्रहार अविराम होता रहता है। आँधी के जोर-झकोरे से ये धरती पर गिरते हैं, छिलके फटने से बैंगनी रस बहता है। डालों में काले जामुन इस तरह शोभते हैं, मानो झुंड-के-झुँड भौरे बेसुध होकर उन शाखाओं के रस पी रहे हैं। कवि की यह उपमा, अलंकार नहीं, बिम्ब-विधान है('निलीयमाना इवषाट्पदौघै:'-30)।

अनुप्रास **वहन्ति वर्षन्ति नदनितस भान्ति**
ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्वसन्ति।
नद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः
पियाविहीनाः शिखिनः प्लवङ्गा॥

उपर्युक्त पंक्तियों में प्रिया-विहीन मोर भी हैं, और आशा लगाये वानर भी डाल पर विराजित हैं। ये वानर 'विहाय निद्रां चिरसंनिरुद्धां' बहुत देर से लगी हुई अपनी नींद को त्याग कर नवीन वृष्टि की जलधार से भींग रहे हैं।

संदर्भ सूची

1. लघु सिद्धान्त कौमुदी, पृष्ठ-2
2. लघु सिद्धान्त कौमुदी, पृष्ठ-1
3. काव्यदर्पण, डॉ0 रामदहिन मिश्र, पृष्ठ- 311
4. ध्वन्यालोक, आचार्य आनन्दवर्धन
5. सोभा अरंकष्टत अलंकष्टता:-निरुक्त-10/1-2
6. काव्यालंकार
7. काव्यालंकार
8. कविप्रिया-5/1
9. काव्यालंकार 2/85
10. काव्यादर्श : 2/1
11. काव्यालंकार सूत्र 3/1/1 2
12. काव्यालंकार सूत्र-1/1
13. काव्यालंकार सूत्र-1/2
14. अलंकार सर्वस्वम्-6, रुद्रट
15. ध्वन्यालोक-3/37
16. ध्वन्यालोक-3
17. ध्वन्यालोक
18. ध्वन्यालोक- 2/1/
19. वक्रोक्ति जीविम्- 1/10
20. काव्य प्रकाश-8/67
21. चन्द्रालोक-1: 8

22. साहित्यदर्पण--10/1
23. कविप्रिया- केशवदास- 1/12
24. काव्य रसायन : देव
25. दूलह
26. भिखारीदास
27. पद्माभरण-2
28. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका (हिन्दी साहित्य कोश, खंड-एक, पृष्ठ-53)
29. पल्लव की भूमिका (हिन्दी साहित्य कोश, खंड-एक, पृष्ठ-53)
30. काव्यादर्श
31. काव्य मीमांसा
32. काव्यालंकार

Scanned with OKEN Scanner

अष्टम अध्याय

(क) साहित्य में रस की विवेचना

वैदिक साहित्य में रस शब्द प्रायः पेय, जल, सार और स्वाद के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। जिस पदार्थ का सारभूत एवं महत्वपूर्ण अर्थ प्रदान करता हुआ उसका रस शब्द से अभिधान किया गया है।

(क) अन्नात्परिश्रुतो रसं ब्रह्मणा।[1]

(ख) ते वा एते रसानां रसाः। वेदा हिरसाः।[2]

(ग) स एष पुरुषोऽन्नरसमयः।[3]

(घ) रसः सारः चिदानन्द-प्रकाशः।[4]

रस के छः भेद माने गये हैं-मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय, तिक्त।[5]

रसात्मकता की दृष्टि से चित्रकला को भी संगीत और काव्य की श्रेणी में रखा जा सकता है। सहृदय व्यक्ति चित्रकार की भावाभिव्यक्ति को रसानुभूति बना लेता है। और इसी साधारणीकरण की प्रकिया द्वारा जिस आनन्द की उपलब्धि करता है वह वस्तुतः साहित्य शास्त्र का रस ही है।

साहित्यशास्त्र में रस का प्रयोग मुख्यतः काव्यास्वाद या काव्यानन्द के लिए हुआ है। आरम्भ में रस का विवेचन नाट्य की दृष्टि से किया गया और वही रस मूल भावों में 'वागंगसत्वोपेत' काव्यार्थों की स्थिति अनिवार्य समझी गई है। यहीं रस काव्य की आत्मा घोषित हुआ है।

रस के व्युत्पति लभ्य अर्थ दो प्रकार के हैं।

(1) रस्यते आस्वाद्यते इति रस :-यह शब्द रस आस्वादे धातु से 'पुंसि संज्ञायां घः प्रायेणा' सूत्र से घ प्रत्यय लगाकर निष्पन्न हुआ है। इस दृष्टि से आस्वाधता इसका विशेष गुण है। आचार्य भरत स्पष्ट शब्दों में कहते हैं:-

रस इति कः पदार्थः उच्यते-आस्वाद्यत्वात्[6]

अभिनवगुप्त ने इस आस्वादन को रसनाव्यापार नहीं मानस व्यापार कहा है क्योंकि वह रस में अविकल रूप से विद्यमान है :- रसनाव्यापार आस्वादनम्। अपितु मानस एव। स चात्राविकलोस्ति।[7]

जिस प्रकार वृक्षों से रसस्रवित होता है या मुंह से रस आ जाता है उसी प्रकार जब रसिक का हृदय किसी आकर्षक वस्तु को देखकर उस ओर स्रवित होता है तभी रसिक को अनुभव होता है कि उसे रस आया।

अग्नि पुराण[8] में काव्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व रस को मानकर उसे उसका प्राण कहा गया है-

वाग्वैदिग्ध्य वाग्वैदिग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्।

काव्य शास्त्र के उत्तरकालीन आलोचना ग्रंथ की प्रामाणिकता में रस की स्थापना परब्रह्म आनन्दानुभूति के रूप में है।

विश्वनाथ ने सत्वोद्रेक को रस का कारण मानते हुए रस को अखण्ड, स्वयं प्रकाश, आनन्द, चिन्मय, वेद्यान्तर-स्पर्श शून्य, ब्रह्मा स्वाद सहोदर तथा सहृदयों द्वारा स्वाकारदभिन्नत्वेन स्वाद्यमान कहा है।

भारतीय सौंदर्य कल्पना की अप्रतिम उपलब्धि के रूप में काव्यचिन्तन की प्राणवत्ता रस की आत्मतत्वता है। काव्य की आत्मा उसका जीवनदायक तत्व रस को सिद्धान्ततः स्वीकृत करने में संस्कृत साहित्य शास्त्र के सभी आचार्यों का योगदान है। यद्यपि विद्वानों ने नाट्य शास्त्र के प्रणेता भरतमुनि को ही साहित्यशास्त्र की प्रथम चर्चा करने का श्रेय दिया है। फिर भी दूसरे आचार्यों ब्रह्मा, द्रुहिण, नन्दिकेश्वर, वासुकि, शिलालिन, कुशाश्व आदि ने भी नाट्यादि के प्रसंग में रस का पूर्व वर्णन किया है। यह भरत के स्थान संदर्भ से प्रकट होता है।

आचार्य भरत की कृति को आधार बिन्दु मानकर ही विश्लेषण करना उपयुक्त है। भरत ने नाट्य को पंचमवेद कहा है। उनकी सामग्री सभी वेदों से ग्रहण की गई है। रस अथर्ववेद से गृहीत है-

नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदांग सम्भवम्
यजुर्वेदादभिनेयाने रसनाथर्वनादपि।[9]

परवर्ती आचार्यों ने भरत के रस विषयकसूत्र को ही रस परिभाषा के रूप में स्वीकार कर लिया था। इन आचार्यों का विवेचन 'संयोग' और 'निष्पत्ति' इन दो शब्दों पर आधारित है। फिर भी उनके दृष्टिकोण में भिन्नता है।

भामह का मत है कि जहांश्रृंगारादि रस स्पष्ट रूप से दिखाये गये हों वहां रसवत् अलंकार होता है।[10]

दंडी ने काव्यगुण की महत्ता को स्वीकार करते हुए रस से उसकी समानता दिखाकर अलंकार का आवरण देते हुए माधुर्य की गोद में छलकने दिया है। उन्होंने वाक् के साथ वस्तु में भी रस की स्थिति स्वीकार की है।[11]

उद्भट ने समाहित अलंकार के वर्णन में भाव, रसाभास एवं भावाभास की शांति का उल्लेख किया है।[12]

रूद्रट ने एक नवीन प्रेयान् रस का निरूपण किया है। इनकी दृष्टि में रस के बिना कोई भी काव्य शास्त्र की तरह नीरस हो जाता है।[13]

अभिनव गुप्त का रस विवेचन शैवाद्वैत में प्रतिपादित आनन्दवाद पर आधृत है।[14]

धनञ्जय ने कहा है कि विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भावों के द्वारा जब स्थायी भाव आस्वाद्य बनता है तो उसे रस कहते हैं।[15]

महिम भट्ट ने रस को काव्य की आत्मा मानकर उसे अनुमेय बताया है।[16]

रामचन्द्र गुणचन्द्र शब्द और अर्थ को काव्य का शरीर और रस को उसका प्राण या आत्मा निर्धारित करते हैं।[17]

Scanned with OKEN Scanner

रस के अवयव

भरतमुनि के निर्मित सूत्र "**विभानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः**" की स्थापना में रस के उपादानों या अवयवों का संकेत मिलता है। मुख्यरूप से रस का एक ही अवयव होता है-स्थायीभाव। यह स्थायीभाव ही विभावादि द्वारा पुष्ट होकर रसरूपता को प्राप्त कर लेता है। इसलिए रसाभिव्यक्ति में साधन साध्य की दृष्टि से चार उपादान हैं (क) स्थायीभाव, (ख) विभाव, (ग) अनुभाव और (घ) संचारीभाव। इस भावरूप साधन से रस रूप साध्य का सर्जन होता है। विभाव को रस का कारण कहा जाता है। रस की अभिव्यक्ति विभाव-अनुभाव तथा संचारी भाव द्वारा व्यक्त स्थायी भाव से होती है।[18]

भारतीय काव्यशास्त्र में रस को काव्य के जीवन तत्व के रूप में स्वीकृत किया गया है। काव्य की आत्मा रस है और रस की आत्मा है स्थायीभाव। रसानुभूति का प्रयोग कर और आभ्यन्तर कारण स्थायीभाव है। इसमें रस की अनुतुलन की मूल शक्ति निहित रहती है। फलतः सभी भावों में यह प्रधान होता है।[19]

भरतमुनि ने स्थायी भाव के आठ भेद प्रस्तुत किया है ये हैं-(क) रति, (ख) हास्य, (ग) शोक, (घ) कोध, (ङ) उत्साह, (च) भय, (छ) जुगुप्सा और (ज) विस्मय।[20]

उपर्युक्त आठ स्थायी भावों के बाद शांत रस को नौवां रस माना गया है। हेमचन्द्र भी शम को ही शांत का स्थायी भाव मानते हैं।[21] कालान्तर में वात्सल्य रस के रूप में विश्वनाथ ने अपत्य स्नेह का वर्णन किया है।[22]

आरम्भ में भामह और दण्डी तक काव्यशास्त्र में आठ ही रसों का सिद्धान्त मान्य रहा है। प्रवृत्तिकाल में सर्वप्रथम नौ रसों और नौ स्थायीभावों की गणना करने वाले आचार्य हैं -उद्भट

शृंगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः।
बीभत्साद्भुतशांताश्च नव नाट्ये रसा स्मृताः॥[23]

रस संख्या निर्धारण के विषय में काव्यशास्त्र की इस नित्य परिवर्तनशील परिष्कृति को देखकर यह कहा जा सकता है कि मानव का शास्त्र होते हुए भी यह कुछ निश्चित नियमों में बंधा हुआ है। अन्य रसों की उद्भावना तो की गई है पर उनके स्थायी भाव भावत्व की कसौटी पर खरे नहीं उतरते इसलिए उनकी रसवत्ता सिद्ध नहीं होती। काव्य प्रयुक्त भाव ही काव्यशास्त्र में भावों का अभिप्राय प्रकट करते हैं-लौकिक भावों से संबद्ध भाव नहीं।[24]

इसलिए काव्यशास्त्र में रसों की संख्या ग्यारह स्वीकार्य होनी चाहिए। पर्याप्त खंडन-मंडन के उपरान्त अस्तित्व में आये हुए रस हैं- 1.शृंगार, 2. हास्य, 3. करुण, 4. वीर, 5. भयानक, 6. रौद्र, 7. बीभत्स, 8. अद्भुत, 9. शांत, 10. वात्सल्य और 11. भक्ति। यहां हम कुछ प्रमुख रसों पर प्रकाश डाल रहे हैं:-

शृंगार रस :-शृंगार रस को आचार्यों ने रसराज की उपाधि प्रदान की है। आचार्य भरतमुनि के अनुसार संसार में जो कुछ भी पवित्र, उज्ज्वल एवं दर्शनीय है- वह शृंगार के भीतर समाविष्ट हो सकता है। लेकिन इस रसराज का मर्यादित निर्वाह विरले ही कवि कर पाते

हैं। अधिकांश तो अश्लील तत्व के गर्त में ही डूबते नजर आते हैं। आगे के अंशों में हम देखेंगे कि आचार्य विमलसूरि और आदि कवि वाल्मीकि-दोनों ने ही शृंगार का बड़ा प्रासंगिक एवं आकर्षक वर्णन प्रस्तुत किया है।

रति की इच्छा के अंकुर को शृंग कहते हैं, इसलिए इसके सूचक हेतु को शृंगार कहते हैं। लौकिक और अलौकिक दो रूपों में यह रहता है। इसका स्थायी-भाव रति अथवा प्रीति है, उसका समुन्नत रूप तो प्रेम और सामान्य रूप स्नेह भी कहा जाता है। यह रति या प्रीति विविध प्रकार की होती है, किन्तु शृंगार का सम्बन्ध विशेष रूप से दाम्पत्य-रति से ही है। नायक और नायिका इसके आलम्बन हैं। कभी तो नायक आश्रय-रूप में रहता है, कभी नायिका आश्रय रूप में रहती है और इसी प्रकार वे एक दूसरे के आलम्बन भी हो जाते हैं। उद्दीपन विभाव इसके विविध है। वेश-भूषा, चेष्टाएं, संकेत, मुस्कान आदि तो व्यक्ति-सम्बन्धी हैं, और चन्द्रिका, वसन्त, सुसमीर, वाटिका आदि प्रकृति-सम्बन्धी है।[25]

शृंगार रस में आलंबनादि के दृष्टि-विशेष, भृकुटि-विलास, कटाक्ष, प्रस्वेद रोमांच और अश्रु आदि अनुभाव हैं। इस रस को पूर्ण रस और रसराज भी माना गया है। इस रस के दो प्रकार हैं-संयोग और वियोग।

हास्य रसः- किसी व्यक्ति या वस्तु की असाधारण विकृति आकृति, विचित्र वेश-भूषा, आचार-व्यवहार आदि को देखकर मन में जो विनोद का भाव उठता है उसे हास्य कहते हैं। यही हास्य फिर विभाव, अनुभाव और संचारी से पुष्ट होकर रसत्व को प्राप्त होता है। इसका स्थायी भाव हास है, आलम्बन इसका विकृत आकृतिवाला व्यक्ति या पदार्थ है। इसके उद्दीपन विभाव में विचित्र बातें और चेष्टाएं आदि आती हैं। इसी के साथ हास्य का सारा सामान जैसे विचित्र वेश-भूषा आदि इसके बाहरी उद्दीपन हैं। इसके आश्रय में हंसी, मुस्कान, सजल-नेत्र, अनुभाव के रूप में रहते हैं।[26]

करुण रस :- किसी प्रिय व्यक्ति या वस्तु अथवा इष्टार्थ के निर्वाण और अनिष्ट की प्राप्ति और इष्ट की प्राप्ति की आशा के अभाव से हृदय में दुख और क्षोभ का आया हुआ भाव ही शोक कहलाता है। यही परिपक्व होकर रसत्व को प्राप्त करता है और करुण रस कहलाता है। महर्षि वाल्मीकि करुण रस के जन्मदाता माने जाते हैं। अभिनव गुप्त ने करुण रस को रामायण काव्य की आत्मा माना है।[27]

करुण का स्थायी-भाव शोक है। आलम्बन, विनष्ट-प्रिय-वस्तु अथवा व्यक्ति होता है। इसके उद्दीपन विभाव में प्रिय वस्तु या व्यक्ति से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुएं और कथाएं होती हैं। इसके अनुभावों में रुदन, उच्छ्वास, दैव अथवा भाग्य की निन्दा, प्रलाप और स्तम्भ आदि आते हैं। उन्माद, चिन्ता, मोह, निर्वेद, स्मृति, ग्लानि, विषाद और जड़तादि इसके संचारी भाव हैं।

वीर रस :- रिपूत्कर्ष, धर्म-क्षय और दैन्य-नाश के कारण कठिन कार्य के करने की तीव्र उत्सुकता का भाव उत्साह कहलाता है, और यही वीर रस का स्थायी भाव है। वीर चार प्रकार के माने गये हैं-युद्ध वीर, दान वीर, दया वीर और धर्म वीर। युद्ध वीर में शत्रु नाश, दान वीर में त्याग, धर्म-वीर में धर्म-स्थापना तथा अधर्म-नाश और दया-वीर में दयनीय

के दुख का नाश मन में उत्साह उत्पन्न करता है। युद्धवीर में शत्रु तो आलम्बन, उसकी ललकार और चेष्टायें तथा मारू बाजे, शत्रु का उत्कर्ष, सेनादिक उद्दीपन, बाहु संचालन, स्वबल-वर्णन इत्यादि अनुभाव होते हैं तथा गर्व, औत्सुक्य, वितर्क आदि संचारीभाव होते हैं।

अद्भुत रस :- किसी विचित्र और अभूतपूर्व असाधारण वस्तु को देखकर हृदय में जो एक प्रकार के अचरज का भाव प्रकट होता है, उसे आश्चर्य कहते हैं। यही इस रस का स्थायी-भाव है। इसमें भी प्रायः आलम्बन का ही वर्णन रहता है, अन्य अनुभावादि नहीं रहते। अलौकिक अथवा असम्भव या असाधारण वस्तु और दृश्य आदि इसके आलम्बन होते हैं। ऐसी वस्तुओं का देखना या सुनना उद्दीपन विभाव. रोमांच, विस्फारित-नेत्र, स्तम्भ आदि अनुभाव, तथा वितर्क, भ्रान्ति आदि इसमें संचारी-भाव होते हैं।

वात्सल्य रस:- इस रस का स्थायी-भाव सुत-स्नेह अथवा पुत्र-प्रीति है और आलम्बन शिशु अथवा बालक होता है। इसके उद्दीपन-विभाव में तोतली बोली, ठुमुक-ठुमुक कर चलना, मचलना इत्यादि तथा बाल-चपलता, बाल-कौतुक और बाल-बुद्धि-विनोद और इसके अनुभावों में हंसना, मुसकाना, पुलकावली, चुमकारना, अंक में लेना इत्यादि तथा पिता-मातादि आश्रय होते हैं। यही वात्सल्य कभी-कभी करुण रस के साथ भी चलता है। हर्ष, मोह, औत्सुक्य, आवेश, आदि इसके संचारी भाव होते हैं।[28]

शान्त रस :- संसार और शरीर की नश्वरता से चित्त में एक विशेष प्रकार की उदासीनता उत्पन्न होती है और भौतिक वस्तुओं से विराग हो जाता है इसी को निर्वेद कहते हैं। आलम्बन आदि के द्वारा यह पुष्ट होकर रस हो जाता है। शान्त-रस सम्बन्धी विश्व-विराग की भावना में ईश्वर के प्रति अनुराग की भी भावना बनी रहती है। इसका स्थायी-भाव यही निर्वेद अथवा अनुरक्ति में विरक्ति का भाव है। आलम्बन इसका ईश्वर, विश्व से मोक्ष, आत्मानन्द, परमार्थ आदि होते हैं। साधु-समागम, तीर्थ, आर्योपदेश, दर्शन शास्त्रादि का अध्ययन इसके उद्दीपन विभाव है। तपोवन, ऋषि-आश्रम अथवा ऐसे ही अन्य स्थानादि भी उद्दीपन हैं। पुलकावली, रोमांच और अश्रु आदि इसके अनुभाव होते हैं। हर्ष, विबोध-मति और धृति संचारी भाव है।[29]

भक्ति रस :- ग्यारहवें रस के रूप में भक्ति ईश्वरानुरक्ति की अभिव्यक्ति को प्रस्थापित करती है। सर्वप्रथम दण्डी ने 'प्रेमालंकार' के विवेचन के क्रम में अनजाने में ही भक्तिरस की उपस्थिति की नींव डाल दी। उदाहरण से समझाते हुए दण्डी ने कृष्ण के प्रति विदुर के तथा शिव के प्रति शतवर्म राजा के प्रीति प्रकाशन वचनों के प्रस्तुतीकरण में भक्ति की स्थापना कर दी है-

भक्तिमात्र समाराध्यः सुप्रीतश्च ततोहरिः

काव्यदर्पण-2/277

भक्तिरस के आलम्बन कृष्ण हैं और आश्रय हरिवल्लभाएं। उद्दीपन हैं-वसंतागम, मेघगर्जन, चांदनी एवं रूपलाव्य तथा स्थायी भाव कृष्ण विषयक रति है।[30]

शोध-प्रबन्ध के इस अध्याय में रस की विवेचना के बाद प्राकृत भाषा के महाकवि आचार्य विमलसूरि के पउमचरियं महाकाव्य और वाल्मीकि रामायण में प्रयुक्त रसों की विवेचना अलग-अलग करने का प्रयास कर रहे हैं।

(ख) पउमचरियं में रस निरूपण

पउमचरियं में शृंगार रसः-

प्रवास से लौटा हुआ पवनंजय अन्जना सुन्दरी को घर में न पाकर चारों ओर उसका अन्वेषण करता हुआ, विषादयुक्त हो वन की ओर चल देता है। वहां उसे विरह के क्षण में अंग-प्रत्यंग की अनुपम सुन्दरता स्मरण हो आती है और वह खग-मृग, लता, वृक्षादि से अपनी प्रियतमा का पता पूछने के बहाने उसके रूप लावण्य का वर्णन कर अतीव विह्वल हो उठता है-

पवणंजओ वि एत्तो, आरुहिउं गयवरं गयणगामी।
परिहिण्डिऊण वसुहं, कुणइ पलावं तओ विमणो॥
सोगायवसंतत्ता, मिणालदलकमलकोमलसरीरा।
हरिणि व्व जूहभट्ठा, कत्तो व गया महं कन्ता॥
गुरुभारखेइयंगी, चलणेहिं दब्भसूइभिन्नेहिं।
गमणं अणुच्छहन्ती, किं खइया दुट्ठसत्तेणं॥[31]

अर्थात् इधर विमनस्क पवनंजय भी गगनगामी उत्तम हाथी के ऊपर आरोहण करके पृथ्वी पर भ्रमण करता हुआ प्रलाप करने लगा कि शोकरूपी आतप से सन्तप्त और मृणाल एवं कमलदल के समान कोमल शरीरवाली मेरी पत्नी यूथ भ्रष्ट हरिणी की भांति कहां गई है? गर्भ के भार से खिन्न अंगवाली और दर्भ की सूई जैसी नोकों से पैर क्षत विक्षत हो जाने से गमन के लिए अनुत्साहित उसे किसी दुष्ट प्राणी ने खा तो नहीं लिया होगा?

पउमचरियं में करुण रसः-

श्वसुर-गृह एवं पिता-गृह दोनों ही आश्रय स्थानों से अपमानित तथा वनवासित अंजना अनाथ की तरह कलेजा पीट-पीट कर रोने लगी। उसकी इस घोर विपत्ति में साथ देने वाली मात्र उसकी प्यारी सखी वसंतमाला थी।

जाए तमन्धयारे, बाला परिदेविऊण आढत्ता।
हाहक्कारमुहरवा, दस वि दिसाओ पलोयन्ती॥
भणइ य वसन्तमाले! पावं अइदारुणं पुराचिण्णं।
जेणेस अयसपडहो, पुहइयले ताडिओ मज्झं॥[32]

अर्थात् रात का अन्धकार फैल जाने पर दसों दिशाओं में नजर घुमाती हुई वह मुंह से हाहाकार ध्वनि करती हुई रोने लगी और कहने लगी कि हे वसन्तमाले! पहले मैंने अतिभयंकर पाप किया है जिससे ऐसा अयश का ढोल मेरे लिए दुनिया में बजाया गया है।

एक अंश का वर्णन और हम यहां उद्धृत कर रहे हैं जहां रावण की मृत्यु के बाद उसके परिजन शोकातुर होते हैं और महिलाओं का क्रन्दन होता है:-

दट्ठूण सुन्दरीओ, भत्तारं रुहिरकद्दमालित्तं
धरणियले पल्हत्थं, सहसा पडियाउ महिवट्ठे॥[33]

अर्थात् पति को रक्त के कीचड़ से लिपटे हुए तथा जमीन पर पड़े हुए देख सुन्दरियां एकदम पृथ्वी पर गिर पड़ीं।

पउमचरियं में वीर रसः-

इस ग्रंथ में वीर रस के संदर्भ कई स्थलों पर देखने को मिलते हैं। एक संदर्भ का उल्लेख यहां पर किया जा रहा है जब रावण ने अपने दूत को बालि के पास भेजा है और दूत अपने स्वामी रावण की वीरता का वर्णन करता है:-

अह रावणेण तइया, वालिनरिन्दस्स पेसिओ दूओ।
गन्तूणं किक्किन्धि, वालिसहं पत्थिओ सहसा॥
काऊण सिरपणामं, दूओ अह भणइ वाणराहिवई।
निसुणेहि मज्झ वयणं, जं भणियं नियसामीणं॥
उत्तमकुलसंभूओ, उत्तमविरिओ सि विणयसंपन्नो।
उत्तमपीईएँ तुमं, भणइ लहुं एहि इहवयणो॥
रिक्खरया-ऽऽइच्चरया, किक्किन्धिमहापुरे नियरज्जे।
ठविया मए सणाहा, जिणिऊण जमं रणमुहम्मि॥
अन्नं पि एव भणियं, कुणह पणामं सिरीएँ जइ कज्जं।
एवं च नियबहिणी, सिरिप्पभं देहि मे सिग्घं॥[34]

अर्थात् उस समय रावण ने बालि राजा के पास अपना दूत भेजा। किष्किन्धि में पहुंचकर वह बाली के पास सहसा उपस्थित हुआ। सिर से प्रणाम करके दूत कहने लगा कि हे वानराधिपति! तुम मेरे वचन, जो कि मेरे स्वामी के कहे हुए हैं, सुनो। तुम उत्तम कुल में पैदा हुए हो, उत्तम शक्ति से युक्त हो तथा विनय से सम्पन्न हो। अतः अत्यन्त प्रेमपूर्वक रावण ने तुमसे कहा है कि तुम जल्दी आओ। युद्ध क्षेत्र में यम को जीतकर मैंने अपने राज्य की किष्किन्धि नगरी में ऋक्षरजा और आदित्यरजा को राज्य पद पर अधिष्ठित किया था। उन्होंने और भी कहा है कि यदि तुम्हें लक्ष्मी से प्रयोजन है तो आकर प्रणाम करो और अपनी श्रीप्रभा नाम की बहन मुझे जल्दी ही दो।

पउमचरियं में हास्य रस

पउमचरियं में कई स्थलों पर कवि विमलसूरि ने अपनी लेखनी के माध्यम से हास्यरस को समाविष्ट किया है। एक संदर्भ हमें तब मिलता है जब सीता के सौंदर्य को सुन नारद सीता के भवन में प्रवेश करते हैं।

अह अन्नया कयाई, पुहइ भमन्तेण नारएण सुया।
रामस्स पवररूवा, जणएण निरूविया सीया॥
ताहे नहंगणेणं, उप्पइउं नारओ गओ मिहिलं।
कन्नालोयणहियओ, सीयाभवणं समल्लीणो॥
दट्ठूण पविसरन्तं, दीहजामउडभासुरं सहसा।
भयविहलवेविरंगी, सीया भवणायरं लीणा॥
अणुमग्गेण रियन्तो, रुद्धो नारीहिं दारवालीहिं।
कलहन्तो ताहि समं, गहिओ सो रायपुरिसेहिं॥

अर्थात् एक दिन पृथ्वी पर घूमते हुए नारद ने सुना कि जनक ने अत्यन्त रूपवती सीता राम को दी है। तब उड़त्रकर नभोमार्ग से नारद मिथिला गया और कन्या को देखने की इच्छा से सीता के भवन में प्रवेश किया। लटकती हुई मोटी जटा के भार से भयंकर मालूम होनेवाले नारद को अचानक देखकर भय से विह्वल और कांपते हुए शरीरवाली सीता महल के भीतर चली गई। पीछे पीछे जाते हुए उसे द्वार की रक्षा करने वाली स्त्रियों ने रोका। उनके साथ कलह करते हुए उसे राजपुरुषों ने पकड़ लिया। इस संदर्भ में वेश के द्वारा नारद के चित्रण में हास्य का उपधान हुआ है।

पउमचरियं में अद्भुत रस

अद्भुत रस की सृष्टि वहाँ होती है जहाँ किसी स्थल या दृश्य के वर्णन में पाठकों को अनहोनी या अजीबपन का एहसास हो। अर्थात् जो सामान्य से हटकर अद्भुत की प्रतीति कराये। यह भी काव्य-शिल्प का एक पक्ष रहा है। अद्भुत रस भी इस काव्य में देखने को मिलता है।

इस काव्य के अन्तर्गत हम अद्भुत रस के प्रसंगों में तीर्थकरों का जन्मकालिक अभिषेक, ऐरावत का अद्भुत पराक्रम एवं आकृति, बाली एवं रावणादि के अलौकिक बल विक्रम को ले सकते हैं:-

अभिषेक वर्णन में अद्भुत रस

दिट्ठो य नगवरिन्दो, फलहसिलाविविहरयणपब्भारो।
सकलियलयाविलोलिय-पलम्बलम्बन्तवणमालो॥
सिहरकरनिवहनिग्गय-विविहमहामणिमऊहपज्जलिओ।
दलरुइरविमलकोमल-पवणुद्धुयपल्लवकरग्गो॥[36]

अर्थात्- उन्होंने पर्वतों में श्रेष्ठ मन्दराचल को देखा। वह स्फटिक की शिलाओं तथा अनेक प्रकार के रत्नों का समृद्ध सा लगता था। सुन्दर लताओं के हिलने से चंचल वनमाला उसमें फैली हुई थीं। शिखर पर छाए हुए बरफ के समूह में से बाहर निकली हुई अनेक प्रकार की बड़ी-बड़ी मणियों की किरणों से वह देदीप्यमान हो रहा था। उसमें कमलदल के साथ संसर्ग में आने के कारण रुचिर, निर्मल एवं मृदु ऐसे पवन के द्वारा पल्लवों के अग्रभाग प्रकम्पित हो रहे थे।

वानरराज बाली की अद्भुत बलविभूति की झलक के वर्णन में कवि ने अद्भुत प्रयोग किया है। यथा-

परमावहीएँ भगवं, वाली नाऊण गिरिवरुद्धरणं।
अणुकम्पं पडिवन्नो, भरहकयाणं जिणहराणं॥
एयाण रक्खणट्ठं, करेमि न य जीवियव्वयनिमित्तं।
मोत्तूण राग-दोसं, पवयणवच्छल्लभावेण॥
एव मुणिऊण तेणं, चलणगुट्ठेण पीलियं सिहरं।
जह दहमुहो निविट्ठो, गुरुभरभारोणयसरीरो॥

अर्थात् परमावधिज्ञान से पर्वत का ऊपर उठाना जानकर भरत चक्रवर्ती कृत जिनमन्दिरों की रक्षा के लिये भगवान् बाली को दया आई। राग द्वेष का त्याग करके

जिनोपदेश पर के वात्सल्यभाव के कारण, न कि अपने जीवन के हेतु, मैं इनकी रक्षा करता हूँ ऐसा सोचकर उसने अपने पैर के अंगूठे से शिखर को ऐसा दबाया कि अत्यन्त भार के कारण झुके हुए शरीरवाला वह दशमुख बैठ गया।

पउमचरियं में वात्सल्य रस

बच्चे के जन्म से लेकर बालपन तक की कीड़ाओं अथवा घटनाओं में जो रस निरूपण होता है उसे वात्सल्य कहते हैं। वात्सल्य रस का वर्णन प्रायः सभी कवियों ने अपने काव्य में किया है।

महाकवि विमलसूरि का वात्सल्य रस हमें उस स्थल पर देखने को मिलता है जब रावण का जन्म हुआ है। पुत्र जन्म पर हर्षोल्लास मनाया गया। कवि ने अपनी लेखनी में व्यक्त किया है-

भूएहि दुन्दुहीओ, पहयाओ विविहतूरमीसाओ।
पिउणा कओ महन्तो, विहिणा जम्मूसवो रम्मो।।
सूयाहरम्मि तइया, सयणिज्जाओ महिम्मि पल्हत्थो।
गेण्हइ करेण हारं, बालो पसरन्तकिरणोहं।।
जो सो रक्खसवइणा, दिन्नो च्चिय मेहवाहणस्स पुरा।
एयन्तरम्मि नद्धो, न य केणइ खेयरिन्देणं।।[37]

अर्थात् पिता ने सुन्दर और महान् जन्मोत्सव विधि पूर्वक मनाया। तब सूतिकागृह में पृथ्वी पर बिछौने बिछाये गये। उस बालक ने किरणों का समूह फैलाने वाला हार, जिसे राक्षसपति ने पूर्वकाल में मेघवाहन को दिया था उसे हाथ से पकड़ा। उस हार को अबतक किसी भी विद्याधर राजा ने धारण नहीं किया था।

हनुपुर ले जाने के क्रम में बालक हनुमान के शिला पर गिरने से शिला चूर-चूर हो गया। लेकिन माँ का वात्सल्य करुणा में डूब गया। वह रो पड़ी। वह कहती है-

दट्ठूण सुयं पडियं, रोयन्ती भणइ अंजणा कलुणं।
दाऊण निही मज्झं, अच्छीणि पुणो अवहियाणि।।[38]

अर्थात पुत्र नीचे गिरा है ऐसा देखकर अंजना करुण स्वर में रोकर कहने लगी कि मुझे खजाना देकर फिर आंखें छीन ली हैं।

आगे हम देखते हैं कि भामण्डल का हरण कर जब उसे उद्यान में छोड़ दिया जाता है तब चन्द्रगति उसे उठा कर अपनी पत्नी अंशुमती को प्रदान करता है और बताता है कि तुमने इस बालक को जन्म दिया है। अंशुमती का वात्सल्य उस बालक के प्रति उत्पन्न होता है। अनजाने में सीता से विवाह करने की हठ धारण करने पर चन्द्रगति वात्सल्य में पड़कर सीता का विवाह भामण्डल से करने का दवाब जनक पर डालता है।

म्लेच्छ से युद्ध करने के लिए राम को जाने से दशरथ रोकते हैं। उस समय वे वात्सल्य विभोर हो कहते हैं-

सोऊण वयणमेयं, हरिसियहियओ नराहिवो भणइ।
बालो सि तुमं पुत्त! कह मिच्छबलं रणे जिणसि।।[39]

अर्थात् राजा ने कहा कि हे पुत्र! अभी तुम बच्चे हो। म्लेच्छ के सैन्य को युद्ध में कैसे जीतोगे?

पउमचरियं में शांत रस

विमलसूरि कृत पउमचरियं ग्रंथ में शांत रस की प्रचुरता देखने को मिलती है। शांत रस में भौतिक वस्तुओं से विराग उत्पन्न बताया गया है। इस ग्रंथ में लगभग सभी पात्र वैराग्य धारण कर दीक्षित होते हैं और मोक्ष प्राप्ति उनके उद्देश्य होते हैं। राम, सीता, बालि, दशरथ, भरत आदि सभी पात्र भौतिक सुख को त्याग कर दीक्षित होते हैं। एक उदाहरण:-

तो दसरहो वि राया, पुत्तविओए अईवसंविग्गो।
ठावेइ तक्खणं चिय, विसए रज्जाहिवंभरहं।।
संवेगजणियकरणो, भडाण बावत्तरीएँ समसहिओ।
दिक्खं गओ नरिन्दो, पासे च्चिय भूयसरणस्स।।

अर्थात् तब दशरथ राजा भी पुत्र के वियोग के कारण अत्यन्त विरक्त हो गये। उन्होंने शीघ्र ही राज्याधिप भरत को राजगद्दी पर बिठाया। अन्तःकरण में जिसे वैराग्य उत्पन्न हुआ है ऐसे राजा ने बहत्तर सुभटों के साथ भत्तशरण मुनि के पास दीक्षा ली।

ग्रंथ के प्रारम्भ में ही कहा गया है-'मानव जीवन असार है, बिजली की भांति जीवन क्षणिक है। यह देह भी अनेक प्रकार के रोग, शोक तथा कृमि का भाजनरूप होता है। (3/124, पृ0-27)

पउमचरियं में भक्ति रस

जैन धर्म के प्रति लोगों की आस्था सुदृढ़ करना इस ग्रंथ की रचना का सम्भवतः मूल कारण प्रतीत होता है। ग्रंथ के अधिकांश पात्रों का जैन धर्म में दीक्षित होना यही प्रमाणित करता है कि इन पात्रों की भक्ति जैन धर्म के प्रति रही है।

जं जं उवणेइ जणो, तं तं नेच्छइ जिणो विगयमोहो।
लम्बन्तजडाभारो, नरवइभवणं समणुपत्तो।।[40]

अर्थात् जो मोहरहित हैं तथा जिनकी जटाओं का भार नीचे लटक रहा है ऐसे जिनेश्वर भगवान् के सम्मुख जो कुछ लाया जाता था उसकी वे स्पृहा नहीं रखते थे। इस प्रकार विहार करते हुए वे राजा के प्रासाद के पास पहुंचे।

(ग) वाल्मीकि रामायण में रस निरूपण

रस वाल्मीकि रामायण का उत्पाद्य और उत्पादक दोनों हैं। राम और सीता की तरह दोनों एक दूसरे के छोर से खुलते हैं और फिर एक-दूसरे के ही छोर में घुल भी जाते हैं। रस और रामायण इसी संनिद्धि के प्रतीक हैं।[41]

वाल्मीकि रामायण में श्रृंगार रस

वाल्मीकि रामायण में बहुत से श्रृंगार-परक मनोरंजक स्थल हैं। श्रृंगार की सम्पूर्ण चेतना के साथ व्यक्ति का मानस एकतलीय नहीं रहता। विप्रलम्भ-श्रृंगार की एक विशिष्ट स्थिति है जो अभीष्ट नायक-नायिका के नहीं मिलने की स्थिति में उदित होती है। फिर

Scanned with OKEN Scanner

मधुर व्यथा फैलाती हुई अनन्त आन्तर भावों को उपजा कर रति या प्रेम की आत्मा के दर्शन कराती है। उस काल में प्रेम क्षीण नहीं होता; अपितु उत्तरोत्तर बढ़ता चलता है। विप्रलम्भशृंगार की जितनी भी अभावीकृत मनःस्थितियाँ हो सकती हैं वह सब वाल्मीकि-रामायण में श्री राम और सीता के जीवन के घटना-क्रमों में अनुफलित हो जाती है।

श्रीराम की वियोगी चेतना पर श्री जानकीजी की अनुपस्थिति का प्रभाव पीड़ा के गहरे आवर्तों में पव्यािप्त है। स्मृति में आबद्ध श्रीराम सीता के अंगों की याद करते हुए आश्रम के लता-वृक्षों से सीता का पता विह्वलता से पूछ रहे हैं-

स्निग्धपल्ल्वसंकाशां पीतकौशेयवासिनीम्।
शंसस्व यदि सा दृष्टा बिल्व बिल्वोपमस्तनी॥

सीता हरण के पश्चात् विरह की अवस्था में राम की आंखों के सामने अपनी प्राण प्रिया की मनोहारी आकृति पुनः पुनः नाच उठती है। विरही पति राम के शब्दों में पत्नी की सुन्दरता का वर्णन आदिकवि वाल्मीकि ने इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप में प्रस्तुत किया है-

अस्ति कच्चित्त्वयादृष्टा साकदम्बप्रिया प्रिया।
कदम्ब यदि जानीषे शंस सीतां शुभाननाम्॥
स्निग्धपल्लवसंकाशां पीतकौशेयवासिनीम्।
शंसस्व यदि सा दृष्टा बिल्व बिल्वोपमस्तनी॥[42]

अर्थात् कदम्ब! मेरी प्रिया सीता तुम्हारे पुष्प से बहुत प्रेम करती थी, क्या वह यहां है? क्या तुमने उसे देखा है? यदि जानते हो तो उस शुभानना सीता का पता बताओ। उसके अंग सुस्निग्ध पल्लवों के समान कोमल हैं तथा शरीर पर पीले रंग की रेशमी साड़ी शोभा पाती है। बिल्व! मेरी प्रिया के स्तन तुम्हारे ही समान हैं। यदि तुमने उसे देखा हो तो बताओ।

वाल्मीकि रामायण में करुण रस

वाल्मीकि रामायण की कथा का प्रारम्भ ही शोक से हुआ है। हृदय की पीड़ा से उद्वेलित उनके शब्द स्वतः श्लोक के रूप में प्रस्फुटित हो गये-

मा निषाद प्रतिष्ठांत्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥[43]

अर्थात् निषाद! तुझे नित्य निरन्तर-कभी भी शान्ति न मिले; क्योंकि तूने इस क्रौंच के जोड़े में से एक की, जो काम से मोहित हो रहा था, बिना किसी अपराध के ही हत्या कर डाली।

महर्षि ने स्वयं भी अपनी कविताओं का कारण शोक की तीव्रानुभूति स्वीकार किया है। शोक जिससे करुण रस बनता है-

शोकर्तस्य प्रवृतो मे श्लोको भवतु नान्यथा।
ततः प्राप्तमृर्षि ज्ञात्वा तानि सत्त्वानि वै ययुः।
प्रविष्टे राजनि यथा सर्वे सामात्यकं बलम्॥

वाल्मीकि रामायण में श्रीराम के व्यक्तित्व का प्रणयोत्कर्ष विलाप की व्याकुलता से अनुप्राणित होता है। जैसे-जैसे घड़ियां बीतती हैं, वैसे-वैसे राम की व्यथा तीव्रता से बढ़ती जाती है। अन्ततः असह्य वेदना से दशरथनन्दन रोने ही लग जाते हैं। वृक्षों और पशु-पक्षियों से सीता का पता पूछते हुए श्रीराम का रुदन एक मानवीय करुणा के धरातल पर व्यक्त हुआ है।

अथवार्जुन शंस त्वं प्रियां तामर्जुनप्रियाम्।
जनकस्य सुता तन्वी यदि जीवति वा न वा॥
ककुभः ककुभोरुतांव्यक्तं जानाति मैथिलीम्।
लतापल्लवपुष्पाढयो भाति ह्येष वनस्पतिः॥
भ्रमरैरुपगीतश्च यथा द्रुमवरो ह्यसि।
एष व्यक्तं विज्ञानाति तिलकस्तिलकप्रियाम्॥
अशोक शोकापनुद शोकोपहतचेतनम्।
त्वन्नामानं कुरु क्षिप्रं प्रियासंदर्शनेन माम्॥[44]

अर्थात् अर्जुन! तुम्हारे फूलों पर मेरी प्रिया का विशेष अनुराग था, अतः तुम्हीं उसका कुछ समाचार बताओ। कृशांगी जनककिशोरी जीवित है या नहीं। यह ककुभ अपने ही समान ऊरुवाली मिथिलेशकुमारी को अवश्य जानता होगा; क्योंकि यह वनस्पति लता, पल्लव तथा फूलों से सम्पन्न हो बड़ी शोभा पा रहा है। ककुभ! तुम सब वृक्षों में श्रेष्ठ हो, क्योंकि ये भ्रमर तुम्हारे समीप आकर अपने झंकारों द्वारा तुम्हारा यशोगान करते हैं। (तुम्ही सीता का पता बताओ, अहो! यह भी कोई उत्तर नहीं दे रहा है)। यह तिलक वृक्ष अवश्य सीता के विषय में जानता होगा; क्योंकि मेरी प्रिया सीता को भी तिलक से प्रेम था। अशोक ! तुम शोक दूर करने वाले हो। इधर मैं शोक से अपनी चेतना खो बैठा हूँ। मुझे मेरी प्रियतमा का दर्शन कराकर शीघ्र ही अपने जैसे नामवाला बना दो- मुझे अशोक (शोकहीन) कर दो।

रावण की मृत्यु के पश्चात् लंका महल की नारियां धरती पर गिरती हैं

आर्यपुत्रेति वादिन्यो हा नाथेति च सर्वशः।
परिपेतुः कबन्धाकां महीं शोणितकर्दमाम्॥
ता बाष्पपरिपूर्णाक्ष्यो भर्तृशोकपराजिताः।
करिण्य इव नर्दन्त्यः करेण्वो हतयूथपाः॥[45]

अर्थात् हा आर्यपुत्र! हा नाथ! की पुकार मचाती हुई वे सब की सब उस रणभूमि में जहां बिना मस्तक के लाशें बिछी हुई थीं तथा रक्त की कीच जम गयी थी, सब ओर गिरती-पड़ती भटकने लगीं। उनके नेत्रों से आंसुओं की धारा बह रही थी। वे पति के शोक से बेसुध हो यूथपति के मारे जाने पर हथिनियों की तरह करुण-क्रन्दन कर रही थीं।

वाल्मीकि रामायण में वीर रस

साहित्य की रस प्रज्ञा के आचार्यों ने वीर रस का व्यक्तित्व व्यावहारिक विशिष्टता के रूप में स्वीकार किया है। इस रस का सबसे बड़ा तल सामाजिक संस्पर्श होता है।

Scanned with OKEN Scanner

प्रकारान्तर से वीर रस जितना लोकाभिभूत होता है उतना ही लोक व्यंजक भी। वीर रस का स्थायीभाव उत्साह होता है। महर्षि वाल्मीकि ने रामायण के अधिकांश भाग को युद्ध की घटनाओं से सन्नद्ध किया है। कवि ने इस रस की अभिव्यंजना केवल उत्तम प्रकृतिवाले वीर में ही नहीं अपितु विभिन्न प्रकृति वाले पात्रों में भी की है।

राम के बाल्यकाल का शौर्य ताड़का सुबाहु वध में देखने को मिलता है-

इत्युक्तः स तु तां यक्षीमश्मवृष्ट्याभिवर्षिणीम्।।
दर्शयञ्शब्दवेधित्वं तां रुरोध स सायकैः।
सा रुद्धा बाणजालेन मायाबलसमन्विता।।
अभिदुद्राव काकुत्स्थं लक्ष्मणं च विनेदुषी।[46]

अर्थात् विश्वामित्र जी के ऐसा कहने पर श्रीराम ने शब्दवेधी बाण चलाने की शक्ति का परिचय देते हुए बाण मारकर प्रस्तरों की वर्षा करने वाली उस यक्षिणी को सब ओर से अवरुद्ध कर दिया। उनके बाण-समूह से घिर जाने पर मायाबल से युक्त वह यक्षिणी जोर-जोर से गर्जना करती हुई श्रीराम और लक्ष्मण के ऊपर टूट पड़ी।

चौदह हजार राक्षसों के मारने में श्रीराम का रणचातुर्य देखने को मिलता है

स तैः प्रहरणैर्घोरैर्भिन्नगात्रो न विव्यथे।।
रामः प्रदीप्तैर्बहुभिर्वज्रैरिव महाचलः।
स विद्धः क्षतजादिग्धः सर्वगात्रेशु राघवः।।
बभूव रामः संध्याभ्रैर्दिवाकर इवावृतः।[47]

अर्थात् उन राक्षसों के घोर अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार से यद्यपि श्रीराम का शरीर क्षत-विक्षत हो गया था तो भी वे व्यथित या विचलित नहीं हुए, जैसे बहुसंख्यक दीप्तिमान् वज्रों के आघात सहकर भी महान् पर्वत अडिग बना रहता है। श्रीरघुनाथ जी के सारे अंगों में अस्त्र-शस्त्रों के आघात से घाव हो गया था। वे लहू-लुहान हो रहे थे, अतः उस समय संध्याकाल के बादलों से घिरे हुए सूर्यदेव के समान शोभा पा रहे थे।

युद्धकांड में श्रीराम के बाणों का पराकम दर्शनीय है। रावण की अशिष्टता पर शर-संधान करते हुए-

ब्राहोणाग्रेण संयोज्य ब्रह्मदण्डनिभं शरम्।
संयोज्य धनुषि श्रेष्ठे विचकर्ष महाबलः।।
तस्मिन् विकृष्टे सहसा राघवेण शरासने।
रोदसी सम्फालेव पर्वताश्च चकम्पिरे।।[48]

अर्थात् यो कहकर महाबली श्रीराम ने एक ब्रह्मदण्ड के समान भयंकर बाण को ब्रह्मास्त्र से अभिमन्त्रित करके अपने श्रेष्ठ धनुष पर चढ़ाकर खींचा। श्रीरघुनाथजी के द्वारा सहसा उस धनुष के खींचे जाते ही पृथ्वी और आकाश मानों फटने लगे और पर्वत डगमगा उठे।

राम का बल विक्रम इन्द्र और विष्णु के समान अतुलनीय है। शौर्य में वे रुद्र से भी भयंकर हैं।

इसी तरह वीर रस का संदर्भ हमें वाल्मीकि रामायण में कई स्थलों पर देखने को

मिलता है। लक्ष्मण के शौर्य का प्रामाणिक उत्कर्ष इन्द्रजित् के निहन्यमान होने के स्थल पर प्रकट होता है। इन्द्रजित् के साथ पवनपुत्र का युद्ध, किष्किन्धा का स्वामी बालि का शौर्य भी अद्वितीय है। कुम्भकरण अकेले वानरों और श्रीराम से युद्ध करता हुआ राम के वज्रोपम बाणों को शिथिल कर देता था।

वाल्मीकि रामायण में अद्भुत रस

इसका स्थायीभाव विस्मय है। विस्मय हृदय की उस विशिष्ट दशा से उद्भूत है जब व्यक्ति अचिन्तित या आकल्पित अकस्मिकता के साथ जुड़ जाता है। अद्भुत अघटनीय घटनाओं और लोकोत्तरता पर आधारित होता है और रस को लोकोतर समझा गया है।

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत हम अद्भुत रस के प्रसंगों में सीता की अग्नि-परीक्षा, हनुमान द्वारा औषध पर्वत को उखाड़ लेना, रावण के सिरों का कटना और फिर से उत्पन्न हो जाना, सीता द्वारा स्वर्ण मृग देखना आदि को ले सकते हैं। स्वर्ण मृग को देख सीता कहती हैं:-

अहो रूपमहो लक्ष्मीः स्वरसम्पञ्च शोभना।
मृगोऽद्भुतो विचित्रांगो हृदयं हरतीव मे।।[49]

अर्थात् इसका रूप अद्भुत है। इसकी शोभा अवर्णनीय है। इसकी स्वरसम्पत्ति (बोली) बड़ी सुन्दर है। विचित्र अंगों से सुशोभित यह अद्भुत मृग मेरे मन को मोहे लेता है।

हनुमान द्वारा औषध पर्वत को उखाड़ लेना बड़ा आकर्षक और अद्भुत प्रतीत होता है।

इति संसचिन्त्य हनुमान् गत्वा क्षिप्रं महाबलः।
आसाद्य पर्वतश्रेष्ठं त्रिः प्रकम्प्य गिरेः शिरः।।
फुल्लनानातरुगणं समुत्पाट्य महाबलः।
गृहीत्वा हरिशार्दूलो हस्ताभ्यां समतोलयत्।।
स नीलमिव जीमूत तोयपूर्ण नभस्तलात्।
उत्पपात गृहीत्वा तु हनूमाञ्शिखरं गिरेः।। [50]

अर्थात् ऐसा सोचकर महाबली हनुमान् तुरन्त उस श्रेष्ठ पर्वत के पास जा पहुंचे और उसके शिखर को तीन बार हिलाकर उसे उखाड़ लिया। उसके ऊपर नाना प्रकार के वृक्ष खिले हुए थे। वानरश्रेष्ठ महाबली हनुमान् ने उसे दोनों हाथों पर उठाकर तौला। जल से भरे हुए नीले मेघ के समान उस पर्वत शिखर को लेकर हनुमान्जी ऊपर को उछले।

एक प्रसंग पर और दृष्टि डालना उचित होगा जब सीता अग्निकुंड में प्रवेश करती हैं:-

एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं पितामहसमीरितम्।
अंगेनादाय वैदेहीमुत्पपात विभावसुः।।[51]

अर्थात् ब्रह्माजी के कहे हुए इन शुभ वचनों को सुनकर मूर्तिमान् अग्निदेव विदेहनन्दिनी सीता को (पिता की भांति) गोद में लिये चिता से ऊपर को उठे।

Scanned with OKEN Scanner

वाल्मीकि रामायण में हास्य रस

हास्य सुखात्मक अनुभूतियों की सबसे अनिवार्य क्रिया है। यह प्रकृति का उत्तम वरदान है। सबसे बड़ी विशिष्टता इस हास्य की मात्र मानवान्तरिकता है। भरतमुनि का कथन है कि हास्य शृंगार से उत्पन्न होता है।

महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में विशुद्ध और मर्यादित हास्य का प्रयोग अत्यन्त सामयिक प्रसंगों के साथ किया है। मंथरा के कंधे पर अतिरिक्त मांस पिंड का जमाव अपनी विद्रूपता से हास्य का उद्भावक होता है।

बाजार अगर रूप का लगता होता उस समय तो कैकेयी जरूर ही अपनी प्रिय दासी मंथरा के रूपाकर्षण की ऊंची बोली लगवा लेती उस समय के राजाओं से।

कुम्भकरण का वैचित्र्य ही हास्य का कारण है। उसे नींद से जगाने की एक अलग ही प्रणाली है:-

तं शैलशृंगैर्मुसलैर्गदामिभ-
र्वक्षःस्थले मुद्ग रमुष्टिभिश्च।
सुखप्रसुप्तं भुवि कुम्भकर्ण
रक्षांस्युदग्राणि तदा निजघ्नुः॥[52]

अर्थात् कुम्भकर्ण भूतल पर ही सुख से सो रहा था। उसी अवस्था में उन प्रचण्ड राक्षसों ने उस समय उसकी छाती पर पर्वतशिखरों, मुसलों, गदाओं, मुद्गरों और मुक्कों से मारना आरम्भ किया।

वाल्मीकि रामायण में वात्सल्य रस

वाल्मीकि रामायण में वात्सल्य रस अपनी उत्कृष्ट तरलता से व्यंजित है। महाराज दशरथ वात्सल्य के आदि स्रोत हैं। पुत्र के सम्पूर्ण यथार्थ को दशरथ ने भाव और बुद्धि दोनों तलपर जीकर और मरकर भी जीवन्त कर दिया है। कैकेयी के हठ का प्रतिकार करते हुए दशरथ कहते हैं-

अपुत्रेण मया पुत्रः श्रमेण महता महान्।
रामो लब्धो महातेजाः स कथं त्यज्यते मया॥[53]

अर्थात् मैं पहले पुत्रहीन था, फिर महान् परिश्रम करके मैंने जिन महातेजस्वी महापुरुष श्रीराम को पुत्ररूप में प्राप्त किया है, उनका मेरे द्वारा त्याग कैसे किया जा सकता है?

शिशु के प्रति स्नेह व्यक्त में शैशवावस्था से ही अभिप्रकट होता है। लेकिन चौथेपन में आकर वात्सल्य परिपक्व हो जाता है। महाराज की यही उम्र वात्सल्य की सारी तीव्रताओं को समेटे हुए है। राम के प्रति दशरथ की वात्सल्य प्रीति है। जैसे गाय बछड़े के लिए रंभाने लगती है- दशरथ के जीवन की अन्तिम अभिलाषा अपने पुत्र को अपने तरह राजा बना हुआ देखने को थी। उन्हें पुत्र दर्शन से वैसा ही सुख प्रतीत होता है जैसे विभूषित व्यक्ति को दर्पण में अपना मुख देखकर

अलंकृतमिवात्मानमादर्शतलसंस्थितम् [54]

वाल्मीकि रामायण में शांत रस

इस ग्रंथ में शांत रस के प्रसंगों में श्रीराम-भरत का मिलन चित्रकूट के पवित्र परिवेश में आच्छादित है। भरत के क्षोभ और वितृष्णा को राम ने अपनी मूलभूत जीवन दृष्टि की तटस्थ स्थापनाओं से अध्यात्म की ऊंचाइयों पर प्रतिष्ठित कर दिया है। जीवन में नश्वरता और जीव की विवशता को रेखांकित करते हुए श्रीराम कहते हैं:-

नात्मनः कामकारो हि पुरुषोऽयमनीश्वरः।
इतश्चेतरतश्चैनं कृतान्तः परिकर्षति॥[55]

अर्थात् भाई! यह जीव ईश्वर के समान स्वतन्त्र नहीं है, अतः कोई यहां अपनी इच्छा के अनुसार कुछ नहीं कर सकता। काल इस पुरुष को इधर-उधर खींचता रहता है।

जीवन और मृत्यु की व्याख्या करते हुए राम कहते हैं:-

यथा फलानां पक्कानां नान्यत्र पतनाद् भयम्।
एवं नरस्य जानस्य नान्यत्र मरणाद् भयम्॥
सहैव मृत्युर्व्रजति सह मृत्युर्निषीदति।
गत्वा सुदीर्घमध्वानं सह मृत्युर्निवर्तते॥[56]

अर्थात् जैसे पके हुए फलों को पतन के सिवा और किसी से भय नहीं है, उसी प्रकार उत्पन्न हुए मनुष्य को मृत्यु के सिवा और किसी से भय नहीं है। मृत्यु साथ चलती है, साथ ही बैठती है और बहुत बड़े मार्ग की यात्रा में भी साथ ही जाकर वह मनुष्य के साथ ही लौटती है।

वाल्मीकि रामायण में भक्ति रस

इस महाकाव्य में सभी रसों का सफल संयोजन है। लेकिन यह भक्ति रस सभी रसों के भाव सौंदर्य पर तरंगित है। चरित्रों की स्वाभाविकता और कथानक की यथार्थता के संपुटन के अतिरिक्त किसी न किसी रूप में श्रीराम का मानवेतर स्वरूप भी उद्घाटित हुआ है। मानवीय संवेदनाओं और क्षमताओं के परे दैवी अनुभूतियां और अनुकम्पाओं की विवृति लोकोत्तर चेतना को स्फूर्जित करती है। जिसमें श्रीराम का परमात्मा स्वरूप अभिलक्षित हो जाता है। इस चेतना के व्यापक हो जाने से राम कथा के सभी पात्र श्रीराम के ही अन्तर्विष्ट हो जाता हैं। उनका ब्रह्म सिद्ध होते ही भक्ति अपने आप ऊर्जस्विनी हो जाती है।[57]

श्रीराम के वन गमन प्रयाण में अपनी सहभागिता और समर्पण निश्चित करती हुई विदेहनन्दिनी अपने को श्रीराम की भक्त बताती हैं:-

भक्तां पतिव्रतां दीनां मां समां सुखदुःखयोः।
नेतुमर्हसि काकुत्स्थ समानसुखदुःखिनीम्॥ [58]

अपने अनन्य भाव की अनुरक्ति केवल पत्नी के रूप में ही नहीं भक्त के रूप में भी जानकी व्यक्त करती हैं:-

अनन्यभावामनुरक्तचेतसं
त्वया वियुक्तां मरणाय निश्चिताम्।

Scanned with OKEN Scanner

नयस्व मां साधु कुरुष्व याचनां
नातो मयाते गुरुता भविष्यति॥[59]

संदर्भ सूची

1. यजुर्वेद- 19/75
2. छा0 उ0-1/12/3
3. तै0 उ0-1/1/2
4. मै0 उ0
5. त0 सं0
6. ना0 शा0-6/31
7. अभि0 भा0 (नाट्य शास्त्र अभिनव भारतीय सहित)
8. अग्नि पुराण-337/9
9. साहित्य दर्पण-3/193
10. ना0शा0 6/62
11. काव्यालं- 3/6
12. काव्यालंकार (उद्भट)-1/51
13. काव्यालंकार (रूद्रट)
14. वक्रोक्तिजीवित (कुन्तक)- 4/11
15. ध्वन्या0-1/4
16. दशरूपक-4/1
17. अग्नि पुराण का काव्यशास्त्रीय भाग-339/12
18. ना0शा0-6
19. ना0शा0-7/3
20. साहित्य दर्पण- 3/25/254
21. सा0द0- 3/152
22. सा0द0 -3/248
23. सा0द0-3/25/254
24. श्रृंगार प्रकाश-11/441
25. रस-छंदालंकार, पृ.22
26. रस-छंदालंकार, पृ.25
27. वाल्मीकि रामायण, रसानुशीलन, पृ.49-50
28. रस-छंदालंकार, पृ.36
29. रस-छंदालंकार, पृ.34-35
30. वाल्मीकि रामायण, रसानुशीलन, पृ.88
31. पउमचरियं, उद्देश्य-18, गाथा-16-18, पृ.176
32. पउमचरियं, उद्देश्य-17, गाथा-10-11, पृ. 167

33. पउमचरियं, पर्व- 74, गाथा-7, पृ.424
34. पउमचरियं, उद्देश्य-9, गाथा-24-28, पृ.106-107
35. पउमचरियं, उद्देश्य-9, गाथा-74-76, पृ.110
36. पउमचरियं, उद्देश्य-3, गाथा-79-80, पृ.24
37. पउमचरियं, उद्देश्य-7, गाथा-90-92, पृ.79
38. पउमचरियं, उद्देश्य-17/115, पृ.174
39. पउमचरियं, उद्देश्य-27/18, पृ.225
40. पउमचरियं, 4/8, पृ.31
41. वाल्मीकि रामायण, रसानुशीलन, पृ.7
42. वा0रा0 3/60/12-13, पृ.631
43. पउमचरियं, 4/8, पृ.31
44. वा0रा0 1/2/15, पृ.31
45. वा0रा0 4/60/14-17, पृ.631-632
46. वा0रा0 6/110/4-5, पृ.539-540
47. वा0रा0 1/26/23-24, पृ.85
48. वा0रा0 3/25/13-14, पृ.547-548
49. वा0रा0 6/22/5-6, पृ.254-255
50. वा0रा0 3/43/15, पृ.588
51. वा0रा0 6/101/37-39, पृ.516
52. वा0रा0 2/13/8, पृ.222
53. वा0रा0-2/3/37, पृ.191
54. वा0रा0, 2/105/15, पृ.458
55. वा0रा0, 2/105/17,22- पृ. 459
56. वाल्मीकि रामायण: रसानुशीलन, पृ.90
57. वा0रा0 2/29/20, पृ.270
58. वा0रा0, 2/27/23, पृ.267
59. वा0रा0 6/118/1, पृ.563

Scanned with OKEN Scanner

नवम अध्याय

उपसंहार

भारत तथा निकटवर्ती देशों के साहित्य में रामकथा की अद्वितीय व्यापकता एशिया के सांस्कृतिक इतिहास का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। संभवतः संस्कृति के इतिहास में राम ही एकमात्र ऐसे व्यक्ति रहे हैं जिनका उल्लेख हर भाषा के साहित्य में किसी न किसी रूप में हुआ है। न केवल भारतीय भाषाओं में और भारतीय साहित्य में ही उनके नाम का उल्लेख हुआ है, बल्कि संसार की अन्य भाषाओं में और साहित्य में भी किसी न किसी रूप में उनकी चर्चा आई है।

ऋग्वेद् में (10,93,14) राम का एक बार उल्लेख आया है। उनका नाम अन्य प्रतापी यजमानों के साथ प्रयुक्त होने के कारण प्रतीत होता है कि वह कोई राजा हुआ होगा।

एतरेय ब्राह्मण (7, 27-34) में राम मार्गवेय और जनमेजय के विषय में एक कथा मिलती है। लेकिन रामायण की कथा से इसका कोई सम्बन्ध नितान्त असंभव है।

इस तरह हम पातें हैं कि वैदिक साहित्य में रामायण के कुछ पात्रों का उल्लेख अवश्य हुआ है। लेकिन उन पात्रों के आपस में कोई सम्बन्ध की सूचना नहीं मिलती। रामायण की कथावस्तु का भी कहीं निर्देश नहीं मिलता।

प्रसिद्ध पुस्तक 'दि कलेक्टेड एसेज ऑफ ए0के0 रामनुजन' से ज्ञात होता है कि "जितनी रामायण उतने राम। असमिया, बाली, बंगाली, कम्बोडियाई, चीनी, गुजराती, जावानी, कन्नड़, कश्मीरी, खोतानी, लाओटियायी, मलेशियायी, मराठी, उड़िया, प्राकृत, संस्कृत, संथाली, सिंहली, तमिल, तेलुगु, थाई, तिब्बती आदि भाषाओं में रामकथा का उल्लेख किया गया गया है। केवल संस्कृत में ही विभिन्न विधाओं से संबन्धित पच्चीस से अधिक कहानियाँ हैं। यदि शास्त्रीय और लोक परम्पराओं में नाटकों, नृत्य-नाटिकाओं और अन्य प्रदर्शनों को जोड़ दें तो रामायणों की संख्या और बढ़ जाती है।"[1]

लगभग सभी रचनाकारों ने वाल्मीकि रामायण को प्राचीनतम ग्रंथ की संज्ञा दी है। कवि वाल्मीकि के निकट राम अवतार नहीं थे-मनुष्य थे। कवि यदि अपनी रचना में राम को देव-चरित्र के रूप में लिखते तब शायद वह उतने लोकप्रिय नहीं होते जितने उनके नर चरित्र में हुए हैं। तुलसीदास की रचना कई सौ वर्ष बाद की है। कहीं-कहीं कथा में भिन्नता भी आई है। तुलसीदास ने रामचरितमानस की रचना इस उद्देश्य से की है कि हिन्दू संस्कृति को अंधकार से प्रकाश में लाया जाय। आज भी रामचरितमानस का पठन-पाठन हर घर में होता है।

प्रारम्भ में रामकथा मौखिक थी। मौखिक कथा में यह निश्चित कर पाना दुष्कर है कि सुनने वाला दूसरा व्यक्ति तीसरे स्थान पर अक्षरशः सुनी गई कथा को दुहराये ही। रामकथा के विस्तार में स्थानीय सामाजिक, सांस्कृतिक घटनाओं का कथा पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। मूल रामकथा में भिन्नता का यह एक प्रमुख कारण है।

"एक लोक कहावत के अनुसार हनुमान ने महायुद्ध के बाद एक पहाड़ की चोटी पर मूल रामायण लिखी और पाण्डुलिपि को छितरा दिया, वह आज की रामायण से कई गुना विशाल थी। कहा जाता है कि वाल्मीकि ने उसका केवल एक हिस्सा ग्रहण किया है। इस अर्थ में कोई ग्रंथ मूल नहीं है, फिर भी कोई कथा केवल पुनर्कथा नहीं है-और इस कहानी का कोई अन्त नहीं है।"[2]

इस अध्याय में हम जैन रामायण 'पउमचरियं' और वाल्मीकि रामायण के कालिक आयाम पर चर्चा करेंगे। महाराष्ट्री प्राकृत में विमलसूरि कृत पउमचरियं जैन साहित्य का प्रथम रामकथा आधारित महाकाव्य ग्रंथ है। इसके बाद रामकथा से प्रभावित होकर और भी कितनी पुस्तकें जैन धर्मावलम्बी पाठकों के समक्ष आई। क्रमानुसार उनपर संक्षिप्त दृष्टि डाली जाये।

कालिक आयाम में पउमचरियं

विमलसूरिकृत 'पउमचरियं' महाकाव्य जैन सम्प्रदाय का प्रथम महाकाव्य है जो महाराष्ट्री प्राकृत में है। इसकी रचना का समय अनेक तर्कों के पश्चात् 300-400 ई0 निर्धारित है। बाद का जैन साहित्य यह प्रमाणित करता है कि यह महज संयोग नहीं अपितु जैनों के रामकथा प्रेम का परिणाम है कि पउमचरियं (विमलसूरिकृत) से लेकर पउमचरिउ (स्वयम्भूदेव-700-800ई) और 1100-1200 ई0 तक रचित हेमचन्द्रकृत 'जैन रामयण' तक मिलते हैं।

जैन साहित्य के पउमचरियं के पश्चात् बौद्ध साहित्य में रचित दशरथकथानम्, (300-400 ई0) के साथ तिब्बती रामायण, खोतानी रामायण, जावा में रामायण ककविन, सिंहली रामकथा, कम्बोडिया में रामकेर्ति, स्याम में रामकियेन, फारसी में रामायण मसीही (1600-1700ई0) आदि देखने को मिलते हैं।

दशरथकथानम्

472 ई0 में चीनी भाषा में अनूदित त्रिपिटक के अन्तर्गत एक कथा का वर्णन मिलता है -'दशरथकनानम्'। इस कथा में सीता अथवा किसी राजकुमारी का उल्लेख नहीं मिलता है।

दशरथकथानम् में वर्णन है कि जम्बूद्वीप में राजा दशरथ नामक एक राजा थे। उसकी प्रधान महिषी के राम नामक पुत्र हुआ। दूसरी रानी के गर्भ से रामण (लोमन-लक्ष्मण) नामक पुत्र हुआ। तीसरी रानी के पुत्र का नाम भरत था और चौथी रानी से उत्पन्न पुत्र का नाम शत्रुघ्न था। राम में नारायणीय शक्ति विद्यमान थी।

तीसरी रानी के प्रति राजा दशरथ को अत्यधिक प्रेम था। एक बार उन्होंने प्रसन्न होकर अपनी तीसरी रानी से कहा-"तुम्हारी किसी भी इच्छा की पूर्ति के लिए मैं अपना

सम्पूर्ण धन और कोष देने में संकोच नहीं करूँगा।'' रानी ने कहा मुझे अभी कोई आवश्यकता नहीं। राजा बीमार हुए। उन्होंने राम का राज्याभिषेक कराया। तीसरी रानी को यह अच्छा नहीं लगा। उसने राजा के समक्ष अपनी इच्छा प्रकट की। राम गद्दी से उतार दिये जायें और मेरे पुत्र भरत का राज्याभिषेक हो। राजा दशरथ दुखी हुआ। राजधर्म के कारण वह अपने वचन से विमुख नहीं हो सकता था। रामण (लक्ष्मण) ने इसका प्रतिरोध करना चाहा। लेकिन राम ने उसे शांत किया।

दशरथ ने अपने दोनों पुत्रों को वनवास दे दिया और बारह वर्ष बाद लौटने की आज्ञा दी। भरत उस समय विदेश में थे। पिता की मृत्यु के बाद भरत लौटे। वस्तुस्थिति जानकर उसे अपनी माता के कार्यों से घृणा हो गई। वे अपनी सेना के साथ उस पर्वत पर गये जहाँ राम निवास करते थे। राम से उन्होंने राज्य ग्रहण करने का अनुरोध किया। लेकिन राम ने कहा-''पिता की आज्ञा से मैं वनवास आया हूँ। उनकी आज्ञा का उल्लंघन कर मैं आज्ञाकारी पुत्र नहीं बन सकता।'' लाचारवश भरत, राम के चमड़े की खड़ाऊँ लेकर अयोध्या लौटे। खड़ाऊँ को ही राज सिंहासन पर आसीन किया। सुबह-शाम वे उसकी पूजा करते थे और उनसे आज्ञा लेकर ही शासन करते थे।

वनवास समाप्त होने पर राम अपने देश अयोध्या लौट आये। राम का पुनः राज्याभिषेक हुआ। सबलोग अपने-अपने धर्म का पालन करने लगे। हर जगह शांति और समृद्धि थी।

कालान्तर में बौद्धों के बीच रामकथा की लोकप्रियता में कमी आई। इसी कारण अवदान शतक (दूसरी शती ई0), दिव्यावदान (चीनी अनुवाद 265 ई0), आर्यशूर की जातकमाला, कल्पद्रुम-अवदान, रत्नावदानमाला, द्वाविंशति अवदान आदि में रामकथा का अभाव है। 'लंकावतार सूत्र' के प्रथम अध्याय में लंकापति रावण और महात्मा बुद्ध का धर्म विषय में वार्तालाप देखने को मिलता है, लेकिन इसमें रामकथा का निर्देश नहीं मिलता। खोतानी रामायण तथा स्याम के राम जातक और ब्रह्मचक में बुद्ध अपने पूर्व जन्म में राम थे, ऐसा कहा जाता है। वैसे ये रचनाएं बौद्ध साहित्य के अंग नहीं हैं।

वसुदेवहिण्डी

संघदास रचित वसुदेवहिण्डी (गद्य) में संक्षिप्त रामकथा का वर्णन मिलता है। इसकी कथा जैन रामकथा से प्रभावित होते हुए भी थोड़े परिवर्तन के साथ वाल्मीकि रामकथा पर आधारित है। वसुदेवहिण्डी की रामकथा में सर्वप्रथम सीता का जन्म लंका में दर्शाया गया है।

इसकी कथा रावण की अत्यन्त संक्षिप्त कथा से प्रारम्भ होती है। रावण की वंशावली, लंका में प्रवास, मंदोदरी से विवाह। फिर दशरथ तथा उसकी संतति का उल्लेख है। कौशल्या के पुत्र राम, सुमित्रा के लक्ष्मण तथा कैकेयी के पुत्र भरत और शत्रुघ्न हैं। इसके बाद मन्दोदरी तथा रावण की पुत्री सीता की जन्मकथा का वर्णन किया गया है। परित्यक्ता बालिका जनक की दत्तकपुत्री बन जाती है। सीता स्वयंवर में किसी धनुष की चर्चा नहीं है। बहुत राजाओं के बीच सीता राम को अपना वर चुनती है। अन्य भाइयों के विवाह के संकेत भी हैं।

राम के बारह वर्ष के निष्कासन में मंथरा तथा कैकेयी के दो वरों का उल्लेख किया गया है। भरत दशरथ के निधन के बाद अयोध्या आते हैं और फिर राम के पास जाते हैं। उसी अवसर पर कैकेयी पश्चाताप कर, राम से राज्य स्वीकार करने का निवेदन करती है। शेष कथाएं वाल्मीकि की रामकथा के अनुरूप ही वर्णित है।

जैन रामकथा का प्रभाव इस रामकथा में देखने को मिलता है और रावण का वध लक्ष्मण के हाथों होता है। उसी अवसर पर देवताओं द्वारा आठवें वासुदेव की घोषणा की जाती है।

संघदास ने भी विमलसूरि के अनुसार, वानरों और राक्षसों को विद्याधर की पदवी दी है। भरत और शत्रुघ्न को सहोदर भाई माना गया है। इस कथा में कैकेयी के पश्चाताप का उल्लेख है। सीता जन्म के नवीन रूप के अतिरिक्त दो स्थलों पर संघदास का वृत्तान्त मौलिक प्रतीत होता है। पहला स्थल वह है जब सुग्रीव के निमंत्रण स्वीकार कर भरत की सेना युद्ध में भाग लेती है। दूसरा स्थल वह है जब कैकेयी दो वरों के लिए दो भिन्न अवसरों की कल्पना की है।

रावणवह अर्थात् सेतुबन्ध (550-600 ई0)

महाराष्ट्री प्राकृत में लिखित रावणवह अर्थात् सेतुबन्ध काव्य के अन्तर्गत भी रामचरित का वर्णन किया गया है। इस काव्य के अन्तर्गत पन्द्रह सर्गों में वाल्मीकिकृत युद्धकांड की कथावस्तु का अलंकृत शैली में वर्णन मिलता है। कथानक में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया गया है। समुद्र-बन्धन के वर्णन में मछलियों के द्वारा सेतु को नष्ट करने का उल्लेख है। आगे चलकर इस घटना के विषय में अनेक कथाओं की कल्पना कर ली गयी है।

रावणवह की एक अन्य विशेषता यह भी है कि 'कामिनीकेलि' नामक दसवें सर्ग में राक्षसियों का संभोग वर्णन मिलता है। सम्भवतः इसका मूल स्रोत 'पउमचरियं' महाकाव्य है। बाद में इस वर्णन का अनुकरण भट्टिकाव्य, जानकी हरण, अभिनन्दन कृत रामचरित, कम्बनकृत तमिल रामायण, रामलिंगामृत तथा जावा के प्राचीनतम रामायण आदि में भी किया गया है।

'रावणवह' का रचनाकाल छठी शताब्दी ई0 माना जाता है। डॉ0 सुशील कुमार डे उस रचना को पाँचवी शताब्दी ई0 का मानते हैं। इसके रचयिता के सम्बन्ध में एक भ्रामक धारणा प्रचलित है कि इसे कालिदास ने लिखा था। प्रवरसेन प्रायः कश्मीर के राजा माने जाते हैं सम्भव है कि यह रचना राजा प्रवरसेन अथवा उनके दरबार के किसी कवि द्वारा हुई हो। यद्यपि यह असंभव नहीं कहा जा सकता है कि वाकाटक वंश के प्रवरसेन द्वितीय (शासनकाल 5वीं शताब्दी का मध्य) सेतुबन्ध के रचयिता हैं।

पद्मचरित

रविषेणाचार्य ने विमलसूरि कृत पउमचरियं का संस्कृत रूपान्तरण 660 ई0 में किया है जो 'पद्मचरित' के नाम से प्रसिद्ध है। रामकथा की लोकप्रियता ही रही है कि हिन्दी खड़ी बोली में इस पद्मचरित का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस ग्रंथ का अनुवाद सन् 1761 ई0 में दौलतराम ने किया है।[3]

Scanned with OKEN Scanner

'पद्मचरित' के अनुवाद में रविषेण की कोई विशेष मौलिकता नहीं मिलती। समस्त रचना 'पउमचरियं' का पल्लवित छायानुवाद प्रतीत होती है। दोनों ग्रंथों की कथाओं में कोई परिवर्तन नहीं मिलता। इस ग्रंथ में दशरथ की वंशावली भिन्न देखने को मिलती है। अनरण्य के दो पुत्र माने जाते हैं-अनन्तरथ और दशरथ। अनन्तरथ अपने पिता अनरण्य के साथ दीक्षित होते हैं और दशरथ को राज्याधिकार मिलता है।

इस ग्रंथ के 28वें पर्व में दर्शाया गया है कि सीता विवाह के समय राम, वज्रावर्त्त को चढ़ाते हैं और लक्ष्मण 'सागरावर्त्त' को।

पद्चरित में यह भी देखने को मिलता है कि शूर्पणखा के प्रति लक्ष्मण अनुरक्त होते हैं। किसी बहाने वह राम को छोड़कर शूर्पणखा की खोज करते है और असफल होते हैं। पद्मचरित में लक्ष्मण के विरह का उल्लेख ऐसे किया गया है-पुनरालोकनाकांक्षो विरहादाकुलोऽभवत।। अटवीं पादपद्माभ्यां बभ्रामानवेषणातुरः। उदारमाधव में लक्ष्मण शूर्पणखा से कहते हैं कि यदि सचमुच तुम मुझे चाहती हो, तो चौदह वर्ष के बाद अयोध्या आओ। मैं स्वजनों से आज्ञा लेकर तुमसे विवाह करूँगा।

रविषेण के पद्मचरित के 96 वें पर्व में सीता को ग्रहण करने के दुष्परिणाम के वर्णन में परिवर्तन किया गया है। समस्त प्रजा मर्यादा-रहित बताई जाती है। स्त्रियों का हरण हुआ करता है और बाद में वे पुनः अपने अपने घर लौटकर स्वीकृत की जाती हैं।

प्रजाधुनाखिला जाता मर्यादारहितात्मिकता।।40।।
स्वभावादेव लोकाऽयं महाकुटिल मानसः।
प्रकटं प्राप्य दृष्टान्त न किंचितस्य दुष्करम्।।42।।

रविषेण ने अपने ग्रंथ (पर्व-102) में उल्लेख किया कि हनुमान राम के पुत्रों का पक्ष लेकर राम के विरूद्ध लड़ते हैं। कुश-लव यद्ध) का यह रूप केवल जैन साहित्य में ही मिलता है।

चउपन्नमहापुरिसचरिय

नवमी शताब्दी में शीलाचार्य कृत 'चउपन्नमहापुरिसचरिय' ग्रंथ के अन्तर्गत 'रामलक्खणचरियम्' की कथा आई है। यह कथा विमलसूरि की परम्परा के अनुसार होते हुए भी वाल्मीकि रामायण की कथा से ज्यादा प्रभावित है।

कहावली

भद्रेश्वर कृत 'कहावली' 11वीं शताब्दी की रचना है जिसमें 'रामायणम्' अंश उधृत है। इस ग्रंथ में सीता द्वारा रावण के चित्र अंकित करने के कारण सीता का त्याग बताया गया है। भद्रेश्वर ने वर्णन किया है कि सीता के गर्भवती होने के पश्चात् राम की अन्य पत्नियों को ईर्ष्या होती है। उनके अनुरोध पर सीता रावण के चरणों का चित्र अंकित करती है। अन्य पत्नियों ने राम के पास पहुँचकर सीता पर अभियोग लगाया कि वह रावण की स्मृति अब तक बनाये है। प्रमाण स्वरूप उनलोगों ने सीता द्वारा बनाये गये रावण के चरण पर राम का ध्यान आकृष्ट किया। राम तो अन्य पत्नियों की बातों पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया लेकिन पत्नियों ने दासियों के बीच यह खबर फैला दी। गुप्त वेश में नगर भ्रमण करते हुए राम ने महसूस किया कि सीता की अपवित्रता की चर्चा पूरे नगर में फैली है। राम ने सीता त्याग का निर्णय लिया। लक्ष्मण द्वारा सीता की अपवित्रता का विरोध करने के बाद भी कृतान्तवदन ने तीर्थयात्रा के बहाने सीता को वन में छोड़ दिया। राम ने लक्ष्मण एवं अन्य विद्याधरों को लेकर सीता की खोज करने का प्रयास किया। सीता के नहीं मिल पाने के कारण राम लक्ष्मण ने महसूस किया कि सीता अवश्य ही किसी हिंसक पशु की शिकार हो गयी है।

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित

हेमचन्द्र कृत 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित' 12वीं शती ई0 की रचना है जिसके अन्तर्गत जैन रामायण कथा आई है।

अनेक रामकथाओं में सेतु निर्माण का उल्लेख नहीं मिलता। विमलसूरिकृत 'पउमचरियं' में समुद्र नामक राजा नल द्वारा पराजित किया जाता है। हेमचन्द्रकृत जैन रामायण में राम-लक्ष्मण सेना सहित आकाशमार्ग से लंका के पास पहुँचते हैं और नल-नील द्वारा समुद्र तथा सेतु नामक राजाओं को पराजित किया जाता है (सर्ग-7)।

हेमचन्द्र के जैन रामायण में भी सीता परित्याग की कथा का वर्णन किया गया है। सीता के गर्भवती होने पर राम की तीन अन्य पत्नियां उनसे ईर्ष्या करती हैं। तीनों के अनुरोध पर सीता कहती हैं कि मैंने रावण को तो देखा ही नहीं, और वह रावण के चरणों का चित्र बनाती हैं। लोगों के बीच यह खबर फैल गयी। राम ने गुप्त वेश धारण कर नागरिकों से अपने कानों इस खबर को सुना। फलस्वरूप उन्होंने सीता को वन में छोड़ने का आदेश दिया।

हेमचन्द्र ने जैन रामायण में राम के दो पुत्रों लवण अंकुश के स्थान पर अनंगलवण तथा मदनांकुश रखा है।

सीतारावणकथानकम्

हेमचन्द्रकृत सीता-रावण कथानम् में कैकेयी अपने एक दूसरे वर के बल पर दशरथ से राम-लक्ष्मण-सीता के लिए चौदह वर्ष तक के लिए वनवास मांगती है। हेमचन्द्र की इस रामकथा में उत्तरचरित का अभाव है।

पउमचरिउ

जैन साहित्य के अपभ्रंश कवियों में स्वयम्भूदेव का नाम श्रद्धा से लिया जाता है। रामकथा पर आधारित इनकी रचना 'पउमचरिउ' जैन मतावलम्बियों को उतना ही मान्य है जितना विमलसूरिकृत पउमचरियं को। सातवीं-आठवीं शताब्दी की अमर रचना पउमचरिउ में कवि ने राम-लक्ष्मण को सोलह वर्ष तक वनवास दिखलाया है। इस ग्रंथ में कुल नब्बे संधियाँ हैं और पूरी कथा पाँच कांडों में है-विद्याधर कांड, अयोध्या कांड, सुन्दर कांड, युद्ध कांड और उत्तर कांड।

कवि ने अपने ग्रंथ में वानर और राक्षस को विद्याधर कहा है जो कला और संस्कृति में किसी तरह हीन नहीं थे। राम कथा अयोध्या कांड से प्रारम्भ होती है। कवि ने कथा विस्तार में जैन दृष्टिकोण अपनाते हुए आचार्य रविषेण का अनुकरण किया है। पउमचरिउ लेकिन कई स्थलों पर स्वयम्भूदेव ने मौलिक घटनाओं को भी प्रस्तुत किया है। पउमचरिउ

Scanned with OKEN Scanner

के अनुसार त्रिजटा ने स्वप्न में हनुमान का आगमन और लंका दहन आदि के दृश्यों को देखा था।

विभीषण के उत्तरचरित के विषय में मन्दोदरी से उसका विवाह परवर्ती रामकथाओं का सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कहा जा सकता है। साहित्य में इसका प्राचीनतम उल्लेख स्वयम्भूदेव कृत पउमचरिउ में मिलता है।

इनके अलावा और भी रामकथा सम्बन्धी ग्रंथ जैन धर्म एवं बौद्ध धर्म में लिखे गये हैं। उनमें लोकप्रिय रहे हैं-रामलक्खणचरियं (800-900ई0), पुष्पदंतकृत महापुराण, चामुण्डरायकृत त्रिषष्टिशलाका महापुरुष पुराण। इन दोनों की रचनाएं 900-1000 ई0 में हुई हैं। हेमचन्द्र की दो रचनाएं जैन रामायण और योगशास्त्र 1100 से 1200 ई0 के बीच की रही है। पद्मदेवविजयगणि कृत रामचरित, सोमसेन कृत रामचरित, पुण्याश्रवकथाकोष, रामदेव पुराण (1400-1500ई0), बलभद्र पुराण (1400-1500ई), पुण्यचन्द्रोदय पुराण (1500-1600ई), रामविजय चरित, कुमुदेन्दु कृत रामायण आदि।

दसवीं शताब्दी ई0 के हरिषेणकृत कथाकोष में रामायणकथानकम् (नं084) तथा सीताकथानकम (नं0 89) पाया जाता है। इस अन्तिम रचना में विमलसूरि के अनुसार सीता की अग्नि परीक्षा वर्णित है। रामचन्द्र मुमुक्षुकृत पुण्याश्रवकथाकोष में लव-कुश की कथा भी विमलसूरि की परम्परा के अनुसार ही वर्णित है। धनेश्वरकृत शत्रुंजय माहात्म्य के नवें सर्ग में रामकथा विमलसूरि के अनुसार है, किन्तु कैकेयी, राम और लक्ष्मण दोनों के वनवास का वर मांगती है।

जैन कवि हस्तिमल्ल ने 1290ई0 के लगभग मैथिली कल्याण नाटक की रचना की है।[4] इस श्रृंगारात्मक नाटक के प्रथम चार अंकों में राम और सीता के पूर्वानुराग का वर्णन किया गया है। अंजनापवनंजय नाटक सात अंकों का नाटक है[5] जो विमलसूरि की रामकथा पर आधारित है। इसके सात अंकों अंजना-पवनंजय के चरित्र का वर्णन है जिसमें अंजना के स्वयंवर की तैयारी, स्वयंवर, युद्ध के लिए पवनंजय का प्रस्थान, रात्रि में पवनंजय अंजना का मिलन, फिर युद्ध के लिए प्रस्थान, गर्भवती अंजना का मायके भेजा जाना, पवनंजय द्वारा अंजना की खोज, गंधर्वराज मणिचूड़ द्वारा अंजना को अपने राज्य में शरण देना, हनुमान का जन्म, पवनंजय का यौवराज्याभिषेक का वर्णन है।

राजस्थानी में एक विस्तृत जैनी राम साहित्य मिलता है। समय सुन्दर की सीताराम चौपाई[6] विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जैनेतर रचनाओं में लक्ष्मणायन 16 वीं शताब्दी ई0 का है। नरहरिदास के अवतारचरित का रामावतार विषयक अंश रामचरित मानस और रामचन्द्रिका पर आधारित है।

इन रचनाओं के अतिरिक्त जिनरत्नकोष में धर्मकीर्ति, चन्द्रकीर्ति, चन्द्रसागर, श्रीचन्द्र, पद्मनाभ आदि द्वारा रचित विभिन्न पद्मपुराण अथवा रामचरित्र नामक ग्रंथों का उल्लेख है।

कालिक आयाम में वाल्मीकि रामायण

प्राचीनतम परम्परा वाल्मीकि को आदिकवि मानती है। युद्धकांड की फलश्रुति में लिखा है-

आदिकाव्यमिदं चार्षपुरा वाल्मीकिना कृतम्।।105।। सर्ग-128

कालिदास ने भी वाल्मीकि को आदिकवि की उपाधि प्रदान की है-कावेरादस्य शासनात्' (रघुवंश, 15,41ऋ)।

डॉ0 कामिल बुल्के ने अपनी पुस्तक 'रामकथा की उत्पत्ति' के पृष्ठ 107 में उल्लेख किया है कि आदि रामायण में न तो उत्तरकांड था, न बालकांड। अवतारवाद की भी उसमें चर्चा नहीं आई है। कई विद्वानों का मत है कि राम, रावण और हनुमान के विषय में पहले स्वतन्त्र आख्यान प्रचलित थे और इनके संयोग से रामायण की उत्पत्ति हुई है।

आदि रामायण की तरह ही प्रचलित वाल्मीकि रामायण में पाँच कांड आये हैं इनमें बहुत से प्रक्षेप तथा विरोधी बातें पायी जाती हैं। प्रक्षेप जोड़ने की प्रवृत्ति प्रारम्भ से ही विद्यमान थी, यह रामायण के भिन्न-भिन्न कांडों की तुलना से स्पष्ट है और शताब्दियों तक बनी रही है।

राय कृष्णदास[7] ने रामायण के प्रक्षेपों का अध्ययन करने के बाद रामायण के विकास के तीन सोपान निर्धारित किये हैं-(1) 3000 श्लोकों वाला आदि रामायण अर्थात् वाल्मीकि रचित रामायण का सर्वप्रथम रूप। (2) 6000 श्लोकों वाला आर्ष रामायण, जिसमें बालकांड तथा उत्तरकांड की कथाएं नहीं थीं। (3) काव्य रामायण अर्थात् रामायण का विद्यमान 24000 श्लोकों वाला संस्करण। यद्यपि यह वर्गीकरण रामायण के क्रमिक विकास पर आधारित है। फिर भी वाल्मीकि द्वारा रचित काव्य की श्लोक संख्या निर्धारित करना असम्भव सा प्रतीत होता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह संख्या अपेक्षाकृत कम ही रही होगी।

संस्कृत, हिन्दी अथवा अन्य भाषाओं के साथ विदेशी भाषाओं में रचित रामकथा पर आधारित पुस्तकों का आधार वाल्मीकि रामायण की कथा ही रही है। यह दूसरी बात है कि सभी कवियों, लेखकों एवं रचनाकारों ने रामकथा का निरूपण अपनी-अपनी दृष्टि से किया हो, लेकिन मूलकथा वाल्मीकि रामायण के अनुरूप ही चित्रित है।

इस अध्याय में शोध के विषय के अनुसार "विमलसूरिकृत पउमचरियं और वाल्मीकि रामायण का तुलनात्मक अध्ययन" पर ही केन्द्रित रहना है इसलिए अधिक विस्तार में जाना उचित नहीं है। इस अध्याय के प्रारम्भ में कालिक आयाम में पउमचरियं का विवरण संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। अब कालिक आयाम में वाल्मीकि रामायण का उल्लेख करना आवश्यक है।

तीन सौ ई0पू0 की रचना वाल्मीकि रामायण में मुख्यतः पाँच कांडों का वर्णन है। उसमें बालकांड और उत्तरकांड नहीं है। 100 ई0 पूर्व से रामायण में बालकांड और उत्तरकांड का प्रसंग देखने को मिलता है।

तीन लब्ध प्रतिष्ठित कवियों द्वारा असमी राम-साहित्य में रामायण की चर्चा होती है। पाँच कांडों (अयोध्या से युद्ध कांड तक) के रचनाकार तो माधवकंदली माने जाते हैं। शंकरदेव ने इसके उत्तरकांड की रचना की है और शंकरदेव के शिष्य माधवदेव ने आदिकांड लिखा है।[8]

रामोपाख्यान (100 ई)

महाभारत में 'रामोपाख्यान' का वर्णन तब किया गया है जब द्रोपदी हरण के पश्चात् उसे पुनः प्राप्त किया जाता है तब युधिष्ठिर अपने दुर्भाग्य पर शोक करते हैं। युधिष्ठिर को धैर्य धारण करने के लिए मार्कण्डेय 'राम' का उदाहरण देते हैं। युधिष्ठिर द्वारा रामचरित सुनने की इच्छा प्रकट करने पर मार्कण्डेय रामोपाख्यान सुनाते हैं। पूना के प्रामाणिक संस्करण में रामचरित का विस्तार 704 श्लोकों में पाया गया है जिसमें पूरे 200 श्लोक युद्ध के वर्णन के लिए प्रयुक्त हुए हैं।[9]

डॉ0 वेबर वाल्मीकिकृत रामायण से रामोपाख्यान का क्या सम्बन्ध हो सकता है-इस सम्बन्ध में चार संभावनाएं प्रस्तुत करते हैं:-

(क) रामोपाख्यान रामायण का आधार है।

(ख) रामोपाख्यान एक ऐसे रामायण पर निर्भर है जो प्रचलित रामायण का पूर्व रूप है।

(ग) रामोपाख्यान वाल्मीकि रामायण का स्वतंत्र संक्षिप्त रूप है।

(घ) रामोपाख्यान तथा रामायण दोनों किसी एक सामान्य मूलस्रोत के स्वतन्त्र विकास माने जा सकते हैं।[10]

ई0 हाप्किन्स तथा ए0 लुडविग का मत है कि रामोपाख्यान, रामकथा का एक स्वतंन्त्र रूप है, जो रामायण को छोड़कर किसी अन्य प्राचीन रामचरित पर निर्भर है।[11]

रामोपाख्यान तथा रामायण में जो अन्तर पाये जाते हैं, वे यह सिद्ध करते हैं कि रामोपाख्यान, रामायण का संक्षिप्त रूप नहीं हो सकता।

डॉ0 याकोबी का मत है कि रामोपाख्यान के रचयिता ने रामायण की किसी हस्तलिपि का सहारा नहीं लिया है। अपने प्रदेश में प्रचलित रामायण उसे कंठस्थ रहा होगा। इसी कथा का संक्षिप्त वर्णन करने में छोटे-मोटे अंतर आ गये होंगे। डॉ0 याकोबी का मत है कि रामोपाख्यान वाल्मीकि कृत रामायण के किसी प्राचीन रूप का स्वतन्त्र संक्षेप मात्र है। अधिकांश विशेषज्ञ डॉ0 याकोबी के इस मत से सहमत हैं।[12]

रामोपाख्यान के प्रारम्भ में रावणचरित की कुछ सामग्री अवश्य मिलती है, लेकिन वह आदि रामायण की तरह रामाभिषेक तथा राम राज्य की स्तुति पर समाप्त होती है। आदि रामायण तथा रामोपाख्यान के कारण एक काव्य परम्परा चल पड़ी और शताब्दियों तक चलती रही जिसके अनुसार रामचरित का वर्णन उनके अभिषेक पर समाप्त किया जाता है।

प्रचलित उत्तरकांड (200-300ई0)

भारत की प्रादेशिक आर्य भाषाओं का प्राचीनतम राम साहित्य असमिया, बंगला और उड़िया में सुरक्षित है। असमिया राम-साहित्य का मुख्य ग्रंथ है-माधवकंदली रामायण। बंगला में कृत्तिवास रामायण लोकप्रिय है और उड़िया में बलराम दास का रामायण लोकप्रिय है। इन तीनों भाषाओं के राम-साहित्य वाल्मीकि के गौडीय पाठ पर आधारित हैं। लेकिन कुछ ऐसे वृत्तान्त जुड़े हैं जो वाल्मीकि रामायण में एवं अन्यत्र दुर्लभ हैं।

असमिया राम-साहित्य में लोकप्रिय 'माधवकंदली रामायण' के तीन रचनाकार हैं। अयोध्याकांड से युद्धकांड तक की रचना माधवकंदली की मानी जाती है। शंकरदेव ने इसके उत्तरकांड की रचना की है। शंकरदेव ने अपने उत्तरकांड में सीता वनवास से लेकर राम के स्वर्गारोहण तक की वाल्मीकीय कथा किसी उल्लेखनीय परिवर्तन के बिना प्रस्तुत की है। सर्ग 14 में अगस्त्य रावण चरित का किंचित् वर्णन करते हैं किन्तु वाल्मीकीय उत्तरकांड के प्रारम्भ का विस्तृत रावण चरित छोड़ दिया गया है। शंकरदेव ने इसका स्पष्ट उल्लेख किया है कि भक्ति मार्ग का प्रचार मेरा उद्देश्य है।

इसी प्रकार 14वीं शताब्दी ई0 में हरिहर विप्र कृत लवकुशर युद्ध, सोलहवीं शताब्दी ई0 में दुर्गावरकृत गीति रामायण, अनन्तकंदली कृत जीवस्तुति-रामायण, महीरावण वध, पातालखंड रामायण, सीतार पाताल प्रवेश (नाटक) असमिया राम साहित्य के उल्लेखनीय ग्रंथ रहे हैं। शंकरदेव कृत उत्तरकांड और रामविजय नाटक, माधवदेव कृत बालकांड तथा रामभावना नाटक, अनन्त ठाकुर आता का श्रीराम कीर्तन असमिया राम-साहित्य के उल्लेखनीय नाटक रहे हैं।

रघुवंश (400 ई0 के लगभग)

कालिदास कृत रघुवंश महाकाव्य में रामकथा का वर्णन आया है। इस ग्रंथ के नवें सर्ग में दशरथ राज्य के वर्णन के अन्तर्गत श्लोक 73-82 में मुनि-पुत्र वध का उल्लेख मिलता है। सर्ग 10 से 15 तक समस्त रामचरित का छह सर्गों में वर्णन किया गया है। कथानक वाल्मीकि कृति रामायण पर निर्भर है। सीता त्याग, लवण वध, कुश-लव जन्म, शम्बूक वध, लक्ष्मण मरण तथा स्वर्गारोहण के उल्लेख से स्पष्ट है कि कालिदास प्रचलित उत्तरकांड की कथावस्तु से परिचित थे। सर्ग 14-15 देखने से इसकी स्पष्ट जानकारी मिलती है।

इस काव्य में अयोनिजा सीता के अलौकिक जन्म की कथा तो मिलती है लेकिन कहीं भी सीता के लक्ष्मी अवतार होने की ओर निर्देश नहीं किया गया है। वाल्मीकि काकजयंता का वृत्तान्त भरत के चित्रकूट से चले जाने के बाद दिया जाता है। वाल्मीकि रामायण में इसका उल्लेख भरत के आने के पहले किया गया है। अहल्या के विषय में कहा गया है कि वह वास्तव में शिला बन गई थी। वाल्मीकि के अनुसार रावण ने ब्रह्मा को अपने सिर को समर्पित कर दिया था। कालिदास के अनुसार उसने सिर का समर्पण शिव को किया है। शेष कथा वाल्मीकि से भिन्न नहीं है।

रामचरित से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण नाटक

रामकथा को लेकर नाटकों के अभिनय की प्रथा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। महाकाव्यों की अपेक्षा रामकथा सम्बन्धी नाटकों में कथानक की दृष्टिकोण से अधिक परिवर्तन किया गया है तथा अनेक नये पात्रों की सृष्टि भी की गयी है, जिससे रामायण की आधिकारिक कथावस्तु (वनवास, सीता हरण, रावणवध) को अपेक्षाकृत कम स्थान मिल सका है। सम्भवतः इन परिवर्तनों को ध्यान में रखकर आनन्दवर्द्धन अपने ध्वन्यालोक में कहते हैं कि रामायण जैसी सिद्धरस कथाओं में स्वेच्छा से रस विरोधी परिवर्तन नहीं करना चाहिए।

ऐतिहासिक-पौराणिक नाटककार डॉ0 चतुर्भुज ने अपनी पुस्तक में उल्लेख किया है- "नाटक कोई इतिहास-पुराण नहीं होता। इतिहास-पुराण की घटनाएं नाटक के विषय होते हैं। नाटककार उस विषय को लेकर घटनाओं को एक सूत्र में पिरोने का प्रयास करता है। सम्भव है घटनाओं को जोड़ने के कम में लेखक को कुछ काल्पनिक पात्र अथवा घटना को अलग से ऐतिहासिक-पौराणिक नाटकों की कथावस्तु में जोड़ना पड़े। लेकिन लेखक ऐतिहासिक-पौराणिक कथानकों की आत्मा को कायम रखने का पूर्ण प्रयास रखता है।"[13]

प्रतिमा (नाटक)

भास रचित 'प्रतिमा' नाटक सात अंकों का है। इस नाटक का नाम प्रतिमा इसलिए पड़ा क्योंकि अयोध्या के मृत राजाओं की प्रतिमाएं देवकुल में स्थापित की जाती थीं। ननिहाल से आयोध्या आते हुए भरत को दशरथ की प्रतिमा देखकर उनकी मृत्यु का आभास हो जाता है। इस नाटक में राम वनवास से लेकर रावण वध तक की कथा आई है। इस नाटक में भरत को लक्ष्मण का अनुज बताया गया है।

इस नाटक में सीता हरण का एक नवीन रूप देखने को मिलता है। दशरथ के वार्षिक श्राद्ध के एक दिन पूर्व रावण परिव्राजक के रूप में राम सीता के निकट आता है और वह श्राद्ध के लिए कांचनपार्श्व मृग द्वारा पिता के श्राद्ध को उत्तम बताता है। उसी क्षण मारीच मृग पर राम की नजर पड़ती है और राम, रावण सीता को छोड़कर मृग के लिए जाते हैं। इसी बीच रावण सीता का हरण करता है।

रामकथा पर आधारित भास का दूसरा नाटक है 'अभिषेक'। छह अंकों के इस नाटक में किष्किन्धा, सुन्दर और युद्धकांडों की रामायण कथा वर्णित है। इस नाटक में बालिवध से लेकर रामाभिषेक तक की कथा वाल्मीकि रामायण की कथा हल्के परिवर्तन से वर्णित है। राम और लक्ष्मण के मायामय शीर्ष सीता को दिखलाये जाते हैं। सीता की अग्नि परीक्षा के समय अग्निदेव प्रकट होकर सीता के लक्ष्मी होने का रहस्योद्घाटन करते हैं।

कुन्दमाला नाटक (400-500ई0)

कुन्दमाला नाटक के रचयिता के सम्बन्ध में काफी मतभेद है। कुछ विद्वान इसके रचयिता के रूप में धीरनाग, वीरनाग, और रविनाग बताते हैं। लेकिन डॉ0 काली कुमार दत्त इस नाटक के रचयिता दिङ्नाग बताते हैं। इस रचना के काल के सम्बन्ध में उनका कथन है कि यह नाटक पाँचवीं शताब्दी के प्रारम्भ का है। एच0डी0 संकालिया भी दिङ्नाग को कालिदास के समकालीन मानते हैं।[14]

कुन्दमाला नाटक की कथावस्तु उत्तररामचरित से मिलती-जुलती है। सीता त्याग से प्रारम्भ होकर यह नाटक राम-सीता मिलन पर समाप्त होता है। नाटक के तीसरे अंक में वाल्मीकि आश्रम के निकट गौतमी के तट पर राम और लक्ष्मण की नजर कुन्दमाला पर पड़ती है। कुन्दमाला की बनावट देखकर राम और लक्ष्मण को सीता का स्मरण हो आता है। आगे बढ़ने पर उन्हें सीता के चरण-चिह्न भी दिखलाई पड़ते हैं।

नाटक के चतुर्थ अंक में आश्रम के निकट राजसेना जानकर वाल्मीकि अपने तपोबल से आश्रम की स्त्रियों को अदृश्य होने का वरदान देते हैं। सीता अदृश्य होकर राम से मिलती है। राम सीता की छाया को जल में देखकर विरह से मूर्च्छित होते हैं।

नाटक के अन्तिम अंक में कुश-लव के रामायणगान के पश्चात् सीता, सभा में शपथ खाती हैं, जिसके फलस्वरूप पृथ्वीदेवी प्रकट होकर सीता की निर्दोषिता का साक्ष्य देती हैं। राम सीता को स्वीकार करते हैं और पृथ्वीदेवी अन्तर्धान हो जाती हैं।

महावीरचरित नाटक

आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में रचित भवभूति कृत दो नाटकों की जानकारी मिलती है। सात अंकों का नाटक महावीरचरित में राम सीता विवाह से लेकर रामाभिषेक तक की कथा का वर्णन किया गया है। नाटककार भवभूति ने नाट्य रचना के दौरान रामकथा में थोड़ा परिवर्त्तन भी किया है।

विश्वामित्र आश्रम में राम लक्ष्मण, सीता उर्मिला से मिलते हैं। सीता विवाह के पश्चात् रावण और माल्यवान परशुराम को राम के विरूद्ध उकसाते हैं। माल्यवान, शूर्पणखा को मंथरा के रूप में कैकेयी का एक पत्र उसके द्वारा राम को भिजवाता है। मिथिला में ही रहते हुए पत्र द्वारा राम को चौदह वर्ष का वनवास दिया जाता है। माल्यवान ही बालि से लड़ने के लिए प्रेरित करता है। रावण और मेघनाद वध के पश्चात् लंका और अलकापुरी की देवियां एक दूसरे के प्रति संवेदना प्रकट करती हैं।

रामकथा पर आधारित भवभूति कृत नाटक 'उत्तररामचरित', सात अंकों का नाटक है। इस नाटक में वाल्मीकि के उत्तरकांड की सामग्री एक नवीन रूप में प्रस्तुत की गयी है।

गर्भवती सीता एक बार फिर तपोवन देखना चाहती है। दुर्मुख आकर सीता के विषय में जनापवाद की सूचना देता है। सीता निर्वासित कर दी जाती है। बारह वर्ष बाद यह पता चलता है कि राम ने अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया है। वाल्मीकि एक देवी द्वारा सौंपे गये दो पुत्रों का पालन-पोषण कर रहे हैं। राम दण्डकारण्य में प्रवेश कर शूद्र तपस्वी शम्बूक का वध करते हैं। राम जनस्थान आते हैं। वहीं सीता भगवती गोदावरी की कृपा से अदृश्य शक्ति प्राप्त करती हैं। सीता छिपी रहकर राम की विरह व्यथा देखती हैं। राम दण्डकारण्य में मूर्च्छित हो जाते हैं। फिर सीता के अदृश्य स्पर्श से राम को होश आता है। लव का वीरोचित दर्प दिखाई पड़ता है। वह चन्द्रकेतु से युद्ध करता है। राम से प्रभावित होकर लव युद्ध करना बन्द कर देता है। राम द्वारा सीता वियोग फिर उभरता है। अन्त में सीता राम का मिलन कराकर लेखक ने नाटक का सुखान्त किया है।

इस नाटक में लेखक भवभूति ने रामकथा को अपनी कल्पना के आधार पर सुखान्त किया है। इस नाटक में घटनाएं कम हैं, वर्णनात्मक प्रसंग अधिक हैं।

उदात्तराघव नाटक

अनंगहर्ष मायुराज लिखित 'उदात्तराघव' आठवीं शताब्दी का नाटक है। छै अंकों में रचित इस नाटक की कथावस्तु राम के निर्वासन से लेकर रावणवध के बाद उनके

अयोध्या में प्रत्यागमन तक की कथा वर्णित है। इस नाटक में सीता हरण का नवीन रूप प्रस्तुत किया गया है।

कनकमृग को लक्ष्मण मारने जाते हैं। रावण आश्रम के कुलपति का रूप धारण कर राम और सीता के निकट पहुँचकर राम की निन्दा करता है। वह कहता है कि तुमने तरुण लक्ष्मण को मृग मारने भेज दिया? उसी क्षण एक राक्षस छद्म वेश धारण कर आकर सूचना देता है कि कनकमृग राक्षस बनकर लक्ष्मण को ले जा रहा है। इस सूचना को पाकर राम रावण की देखरेख में सीता को छोड़कर लक्ष्मण की सहायता के लिए चले जाते हैं। इसके अलावा और भी कई राक्षस और असुर राम के पक्ष वाले पात्रों का रूप धारण करते हैं।

इस नाटक में सीता हरण के पश्चात् मरणासन्न जटायु रक्त से सनी अपनी चोंच से पत्ते पर पत्र लिखकर रावण को मारने के लिए राम से अनुरोध करता है और वह पत्र किसी ऋषि के हाथ से राम के पास भेजता है। इस नाटक के अंक पाँच में दिखलाया गया है कि लक्ष्मण ने दुन्दुभि के अस्थिकंकाल को दूर तक फेंक दिया था, जिसे बालि ने एक वृक्ष पर रखा था, बालि युद्ध के लिए ललकारता है। राम द्वन्द्व युद्ध में बालि का वध करते हैं।

अनर्घराघव नाटक (900-1000 ई०)

अनर्घराघव की रचना मुरारि ने 900 ई0 में की है। इस नाटक में विश्वामित्र के आगमन से लेकर अयोध्या में रामाभिषेक तक की कथा का वर्णन मिलता है। तृतीय अंक में रावणदूत शोष्कल मिथिला आकर रावण की ओर से सीता की मांग करता है। इस नाटक में भी वाल्मीकि कथा में कुछ परिवर्तन है। शूर्पणखा का मंथरा के वेश में कैकेयी के जाली पत्र पर राम को निर्वासित किया जाता है। परशुराम का मिथिला में आगमन और राम बालि द्वन्द्व युद्ध का वर्णन है।

बाल रामायण नाटक

राजशेखरकृत राम सम्बन्धी सबसे विस्तृत नाटक 'बाल रामायण' की रचना दसवीं शताब्दी में हुई थी। यह दस अंकों का नाटक है जिसमें सीता स्वयंवर से लेकर रामाभिषेक तक की कथा आई है। इस नाटक में लेखक राजशेखर की मौलिकता भी देखने को मिलती है।

सीता स्वयंवर में रावण उपस्थित होता है और सीता के भावी पति को डर दिखाता हुआ चला जाता है। रावण को सीता की मूर्ति भेंट की जाती है और वह धोखा खा जाता है। नाक-कान कटी हुई शूर्पणखा को देखकर रावण आवेश में आ जाता है। राम की आती हुई सेना के सामने सीता का कटा मस्तक फेंक कर रावण, धोखा देना चाहता है। अन्त में राम उसका वध करते हैं।

प्रसन्नराघव नाटक (100-1200 ई0)

जयदेव कृत 'प्रसन्नराघव' 1200 ई0 की रचना है। यह नाटक सात अंकों का है जिसमें सीता-स्वयंवर से लेकर राम के रावण वध के बाद अयोध्या में प्रत्यागमन तक की कथा है। इस नाटक की निम्नलिखित विशेषताएं हैं- सीता स्वयंवर में रावण तथा

वाणासुर की उपस्थिति और उनके धनुष संधान के निष्फल प्रयत्न। उस अवसर पर रावण का सीता हरण का संकल्प प्रकट करना। धनुर्भंग से पूर्व राम सीता का मिथिला के चंडिकायतन में मिलना, मिथिला में पहले परशुराम के दूत फिर परशुराम का आगमन। विविध नदियों का मानवीकरण तथा उनका सागर के तट पर मिलकर अपने भूमिभाग से सम्बन्ध रखने वाली रामकथा सुनाना। विद्याधर रत्नशेखर का विरह-व्याकुल राम को लंका की घटनाएं इन्द्रजाल द्वारा दिखलाना।

व्यासमिश्रदेव ने 15वीं शताब्दी में रामाभ्युदय नाटक की रचना की है। इस नाटक के दो अंकों में लंका का युद्ध, सीता की अग्नि परीक्षा, पुष्पक में अयोध्यागमन तथा राम का अभिषेक वर्णित है।

भट्टिकाव्य (500-600 ई०)

भट्टिकाव्य की रचना कच्छ में छठी अथवा सातवीं शताब्दी में हुई है। इसके बाईस सर्गों में व्याकरण के नियमों के निरूपण के साथ-साथ वाल्मीकि रामायण के प्रथम छै कांडों की कथावस्तु का किंचि् परिवर्तन सहित वर्णन किया गया है। इस काव्य में निम्नलिखित विशेषताएं देखने को मिलती हैं:-

दशरथ शैव मतावलम्बी हैं। पुत्रेष्टि यज्ञ में कोई देवता प्रकट नहीं होते बल्कि दशरथ की पत्नियाँ हुतोच्छिष्ट खाती हैं। बला और अतिबला के स्थान पर जया तथा विजया नामक विद्याओं का उल्लेख है। इस काव्य में केवल राम और सीता के विवाह का उल्लेख है। राम और लक्ष्मण दोनों खरदूषण तथा चौदह हजार राक्षसों का वध करते हैं। लक्ष्मण का सीता को शाप देना। सीता हरण के पश्चात् राम पहले-पहल जटायु से मिलते हैं। इस काव्य में राक्षसियों का संभोग-वर्णन उद्धृत है। रावण की केवल एक ही सभा का वर्णन किया गया है जिसमें रावण विभीषण पर पाद-प्रहार करता है। ब्रह्मा के स्थान पर शिव राम को उनके नारायणत्व का स्मरण दिलाते हैं।

जानकीहरण (800-900 ई०)

विद्वत्जन जानकी हरण की रचना का काल आठवीं शताब्दी के अन्त का और नवीं शताब्दी के प्रारम्भ का मानते हैं। इसकी कथावस्तु वाल्मीकि कृत रामायण के प्रथम छह कांडों पर आधारित है। कथानक में अहल्या के शिला बन जाने के अतिरिक्त कोई अन्य परिवर्तन नहीं किया गया है। किन्तु अन्धमुनि-पुत्र का वध प्रथम सर्ग में वर्णित है। इस ग्रंथ में केवल राम के विवाह का वर्णन आया है, अन्य भाइयों के विवाह का निर्देश मिलता है।

इस ग्रंथ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके 20 सर्गों में शृंगारात्मक वर्णनों को पर्याप्त स्थान दिया गया है। जैसे दशरथ और उनकी पत्नियों के विहार, जलक्रीड़ा आदि का वर्णन, राम तथा सीता के पूर्वानुराग का वर्णन, मिथिला में राम सीता विवाह के पश्चात् संभोग वर्णन, आदि।

रामचरित (800-900ई0)

गौडीय पाल वंश के युवराज हारवर्ष की प्रेरणा से अभिनन्द ने नौवीं शताब्दी ई0 के पूर्वार्द्ध में रामचरित की रचना की थी। इसके छत्तीस सर्गों में राम लक्ष्मण के

प्रस्रवण पर्वत के वर्षा निवास से कुंभ-निकुंभ वध तक की वाल्मीकीय रामकथा का वर्णन मिलता है। भीम नामक कवि ने चार सर्गों का परिशिष्ट लिखकर युद्ध कांड की कथावस्तु पूरी की है। इस काव्य की निम्नलिखित विशेषताएं हैं:-

वर्षा ऋतु के पश्चात् सुग्रीव अपने आप राम के पास आता है-लक्ष्मण को भेजने की आवश्यकता नहीं होती, अभिज्ञानस्वरूप राम हनुमान को अंगूँठी के अलावा एक नूपुर और स्तनोत्तरीय भी देते हैं। हनुमान आदि के गुफा में प्रवेश करने की वाल्मीकि कृत किष्किन्धाकांड की कथा में बहुत कुछ परिवर्तन किया गया है। हनुमान एक वानर वर सुन्दरी का प्रेम प्रस्ताव दो बार अस्वीकार करते हैं। रावण के संभोग का भी विस्तृत वर्णन किया गया है।

रामायण मंजरी और दशावतारचरितम्

कश्मीर निवासी क्षेमेन्द्र ने 1037 ई0 में वाल्मीकिकृत रामायण के पश्चिमोत्तरीय पाठ का 5386 श्लोकों में संक्षिप्त किया और अपनी रचना का नामकरण रामायण, मंजरी रखा। इसमें क्षेमेन्द्र की कोई मौलिकता नजर नहीं आती। लेकिन 1066 ई0 में रचित दशावतारचरितम् में क्षेमेन्द्र ने 294 छन्दों में रामावतार वर्णन में रामकथा का एक नवीन रूप प्रस्तुत किया है।

सम्पूर्ण कथा का वर्णन रावण के दृष्टिकोण से किया गया है। प्रारम्भ में रावण की तपस्या, वरप्राप्ति, अत्याचार आदि का चित्रण है। आगे चलकर रावण लक्ष्मी के अवतार पद्मजा सीता को पुत्री स्वरूप ग्रहण करता है। ग्रंथ के 105 वें छन्द से रामायण कथा का प्रारम्भ होता है। शूर्पणखा का विरूपीकरण, रावण द्वारा मारीच को विष्णु अवतार रामकथा सुनाना, सीता हरण, सुकेतु गुप्तचर, मारीच वध से लेकर हनुमान का समुद्रलंघन, अशोकवाटिका भंजन, लंका दहन की कथा रावण को सुनाता है। सुकेतु और विभीषण सीता लौटाने का अनुरोध रावण से करते हैं। राम की शरण में विभीषण। आगे चलकर रावण एक गुप्तचर से विभीषण अभिषेक, सेतुबन्ध तथा राम के त्रिकुटागमन की कथा तथा प्रतिहारपति से नागपाश द्वारा राम लक्ष्मण के बंधन तथा कुम्भकर्ण को जगाने का वृत्तान्त सुनता है। प्रतिहारपति-रावण-संवाद के बाद कवि द्वारा शेष रामचरित का वर्णन किया गया है। कुम्भकर्ण वध से लेकर राम के स्वर्गारोहण तक की समस्त वाल्मीकीय कथा संक्षेप में दी गई है।

उन्मत्तराघव (1300-1400 ई0)

चौदहवीं शताब्दी की रचना भास्करभट्ट कृत 'उन्मत्तराघव' प्रेक्षणक है। इस पुस्तक में दुर्वासा के शाप से सीता के मृगरूप में बदल जाने पर राम का सर्वत्र सीता को ढूँढना तथा अगस्त्य की सहायता से उनको पुनः प्राप्त करना इस रचना का वर्ण्य विषय है।

इसके अलावा विरूपाक्षकृत 'उन्मत्तराघव' पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ का प्रेक्षणक है जो श्रृंगार प्रधान है। सीता हरण का वर्णन वाल्मीकि कथा के अनुसार है।

इस अध्याय के अन्तर्गत मैंने कालिक आयाम में पउमचरियं और कालिक आयाम में वाल्मीकि रामायण की चर्चा की है। रामकथा सम्बन्धी जैन साहित्य और संस्कृत ललित साहित्य के अन्तर्गत कुछ प्रमुख ग्रंथों का संक्षेप में वर्णन करने का प्रयास भी किया है। लेकिन आधुनिक भारतीय भाषाओं में राम सम्बन्धी ग्रंथों की चर्चा किये बिना यह अध्याय अधूरा रह जायेगा। पूर्व के अध्याय में आधुनिक भारतीय भाषाओं में राम का उल्लेख किया गया है। लेकिन यहाँ कुछ और प्रमुख ग्रंथों का नामोल्लेख आवश्यक है।

तमिल- तमिल भाषा में कंब रामायण की रचना बारहवीं शताब्दी में कंबर ने की है जो वाल्मीकिकृत रामायण पर आधारित है। लेकिन इस काव्य का उत्तरकांड कंबर रचित नहीं है।

तेलुगु- तेलुगु साहित्य का सबसे महत्त्वपूर्ण रामकथा विषयक ग्रंथ रंगनाथकृत द्विपद रामायण है जिसकी रचना चौदहवीं शताब्दी में हुई है। तेलुगु राम साहित्य के अन्य ग्रंथ हैं- निर्वचनोत्तर रामायण (13वीं शताब्दी ई0), भास्कर रामायण (चौदहवीं शताब्दी ई0)। सोलहवीं शताब्दी के रामकथा विषयक उल्लेखनीय रचनाएं रही हैं-रामभद्र कृत रामाभ्युदयम् (चम्पू), पिंगलि सूरनार्थ कृत राघवपांडवीयं (श्लेष काव्य) और कंदुकूरि रुद्र कृत सुग्रीव-विजयमु। जन साधाराण का सबसे लोकप्रिय रामायण मोल्ल रामायण की रचना एक मोल्ल नामक कुम्हारिन कुमारी द्वारा हुई है। सत्रहवीं शताब्दी ई0 में कट्ट वरदराजु ने एक विस्तृत द्विपद रामायण की रचना की है। अठारहवीं शताब्दी में चम्पू शैली में रचित गोपीनाथ रामायण, द्विपद छन्द का एकोजी रामायण तथा ठेठ तेलुगु का अच्च तेलुगु रामायण है।

मलयालम साहित्य- मलयालम साहित्य में मलियाली कवियों की रामकथा में कोई मौलिकता नहीं दिखती है। रामचरितम् (14वीं शताब्दी ई0) मलयालम साहित्य का प्राचीनतम सुरक्षित ग्रंथ है। इसके अलावा मलयालम साहित्य में रामकथा सम्बन्धित पुस्तकें हैं-कण्णश्श रामायण (15वीं शताब्दी ई0), रामायण चम्पू (1500 ई0), अध्यात्म रामायण (1575 से 1650 के बीच की रचना) केरल वर्मा रामायण, रामकथाप्पट्टु।

कन्नड़- कन्नड़ साहित्य में रामकथा सम्बन्धी प्रमुख ग्रंथ रहे हैं-तोरवे रामायण (16वीं शताब्दी ई0), नरहरिकृत मैरावण कालग, जैमिनी भारत।

कश्मीरी- 18वीं शताब्दी के अन्त में 'रामवतारचरित' नामक कश्मीरी रामायण की रचना दिवाकर प्रकाश भट्ट ने की है।

असमिया साहित्य-14वीं शताब्दी ई0 में असमिया साहित्य में रामकथा सम्बन्धी मुख्य ग्रंथ है माधवकंदली रामायण। इसके अलावा हरिहर विप्रकृत लवकुशर युद्ध (14वीं शताब्दी ई0), दुर्गावर कृत गीति रामायण (16वीं शताब्दी ई0), अनन्त कंदली कृत-जीवस्तुति-रामायण, महीरावण वध, पातालखंड रामायण, सीतारपाताल प्रवेश नाटक, शंकर देव कृत उत्तरकांड और राम विजय नाटक, माधवदेव कृत बालकांड और रामभावना नाटक। अनन्त ठाकुर आता का श्रीरामकीर्त्तन। सत्तरहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी के ग्रंथ रहे हैं- धनंजयकृत गणकचरित, गंगारामकृत सीता वनवास, भवदेव विप्र का श्रीरामचन्द्र

Scanned with OKEN Scanner

अश्वमेध, श्री चन्द्र भारती कृत महीरावणवध, रघुनाथ महंत कृत कथारामायण तथा अद्भुत रामायण।

बंगला साहित्य - कृत्तिवास कृत श्रीरामपांचाली (15वीं शताब्दी ई0)। सत्रहवीं शताब्दी की रामकथा विषयक सामग्री तीन वर्गों में विभक्त की जा सकती है- (1) रामलीला पदावली, (2) अद्भुत रामायण के अनुवाद, (3) अध्यात्म रामायण के अनुवाद आदि।

उड़िया साहित्य-जगमोहन रामायण, दाण्डि रामायण (छन्द के नाम पर), बलराम दास रामायण, कान्तकोइलि, काकपोइ, सीतांक बारमासी भावना, हनुमन्त चउतीसा, नीलाम्बरदास कृत ठिका रामायण, अर्जुनदास का रामविभा, धनजंय का रघुनाथ विलास, सिद्धेश्वरदास कृत विलंका रामायण, उपेन्द्रभंज कृत रामलीलामृत आदि।

हिन्दी साहित्य-गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस, रामाज्ञाप्रश्न, जानकी-मंगल, गीतावली, भरत मिलाप, अग्रदास कृत अष्टयाम, पदावली, ध्यानमंजरी, नाभादास कृत अष्टयाम। रामचन्द्रिका, सोढ़ी मेहरबान कृत आदिरामायण, हृदयरामकृत हनुमन्नाटक, लालदासकृत अवध विलास।

आधुनिक काल में भी रामकथा विषयक गद्य तथा नाटक रचे गये हैं। फिर भी रामकाव्य कहीं अधिक महत्वपूर्ण हैं। रसिक बिहारी कृत राम रसायन, रघुनाथ दास का विश्राम सागर, रघुराज सिंह का रामस्वयंवर, बाघेली कुंवरि का अवध विलास, बलदेव प्रसाद मिश्र का कोशल किशोर तथा मैथिली में चंदा झा का रामायण उल्लेखनीय है।

1900 ई0 के बाद भी राम विषयक काव्य रचना में कमी नहीं आई। शिवरत्न शुक्ल का 'श्रीरामावतार', वंशीधर शुक्ल का 'राम मड़ैया'।

राम विषयक निम्नलिखित महाकाव्य साहित्यिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण रहे हैं-रामचरित उपाध्याय का 'रामचरित चिन्तामणि' (1920ई0), मैथिलीशरण गुप्त का 'साकेत' (1929 ई0), अयोध्या सिंह उपाध्याय का 'वैदेही वनवास' (1939 ई), बलदेव प्रसाद मिश्र कृत 'साकेत संत' (1946 ई), केदार नाथ मिश्र प्रभात कृत 'कैकेयी' (1950 ई0), बाल कृष्ण शर्मा नवीन कृत 'उर्मिला' (1957 ई0) डॉ0 मिथिलेश कुमारी मिश्र प्रणीत 'साकेत-संविका' '(1987 ई0), गोवर्द्धन प्रसाद सदय कृत 'रामोपाख्यान' (2000 ई), जनकपुर से प्रकाशित 'सीतायन', रामउपदेश सिंह विदेह रचित 'चरितागंद' (2010 ई0) आदि।

आज भी रामकथा विषयक कहानियाँ, उपन्यास, काव्य, नाटक की रचनाओं में कोई कमी नहीं आई है। यह बात अलग है कि आज के कवियों, लेखकों, नाटककारों का दृष्टिकोण अपना रहा है। वर्तमान सामाजिक, सांस्कृतिक स्थिति की छाप उनकी रचनाओं में दृष्टिगत होती है। लेकिन मूल कथानक में कहीं भिन्नता नहीं आई है।

डॉ0 चतुर्भुज ने राम विषय पर दो नाटकों की रचना की है। पहला नाटक 'मेघनाद' 1949 ई0 में लिखा। उनका दूसरा लोकप्रिय नाटक है 'रावण' (1978ई0)। इस नाटक का नायक रावण है और नायिका शूर्पणखा है। लेकिन लेखक ने कहीं भी राम एवं

सीता की महत्ता को इस नाटक में कम नहीं दर्शाया है। राम की विजय के लिए समुद्रतट पर रावण ने ब्राह्मण वेश में उपस्थित होकर राम को आशीर्वाद दिया। मृत्यु से पूर्व रावण कहता है-''राम! तुम समझते हो कि राम-रावण का युद्ध समाप्त हो गया। नहीं वीर, यह युद्ध कभी समाप्त नहीं होगा। हमारे तुम्हारे बीच का युद्ध तो तब से चल रहा है, जब से सृष्टि का आरम्भ हुआ। तुमने न्याय का प्रतिनिधित्व किया और मैंने अन्याय का। तुमने सत्य का और मैंने असत्य का। सतयुग में भी हम दोनों लड़े थे। यह त्रेता है। इस युग में भी हम दोनों का युद्ध हुआ। मैं फिर जन्म लूँगा। द्वापर में फिर युद्ध होगा। सम्भव है, मैं पुनः पराजित हो जाऊँ। लेकिन मेरे रक्त में पुनर्जन्म का बीज वर्तमान है। वह नष्ट नहीं हो सकता। हमारा निर्णायक युद्ध होगा कलियुग में। हाँ, कलियुग में, जब मैं कोटि-कोटि में वास करूँगा, हर मनुष्य में रावण रहेगा। उसकी माया को समझना किसी के लिए भी असम्भव होगा। देखना है कि राम उस समय किस रूप में अवतरित होता है। कोटि-कोटि रावण का वध एक राम से असम्भव होगा। कलियुग में तुम्हारे बल की असली परीक्षा होगी।''

रावण के इस संवाद के बाद लेखक ने राम द्वारा संवाद प्रस्तुत किया है-''रावण, तुम महान् पंडित हो। जानता हूँ, त्रेता का रावण अन्तिम रावण नहीं है। द्वापर में भी मुझे तुम्हारे वध के लिए आना पड़ेगा और सुदूर भविष्य की तिमिरावृत्त चादर को चीर कर मैं देख रहा हूँ कि कलियुग में कोटि-कोटि व्यक्ति में, विभिन्न रूपों में, तुम वास करोगे। रक्तबीज की भांति तुम्हारी संख्या में वृद्धि होती जायगी, तुम्हें पहचानना भी कठिन होगा। फिर भी राम आयगा।-किस रूप में यह समय बतायगा।''[15]

डॉ0 भगवती शरण मिश्र ने एक उपन्यास लिखा है-'पवनपुत्र', जिसका प्रकाशन 1987 ई0 में हुआ है। लेखक ने इस उपन्यास में हनुमान के कर्मण्य रूप को प्रस्तुत किया है। दुष्ट को दंड देने से लंका दहन के प्रसंग में परहेज करना राजनीति, धर्मनीति नहीं, राष्ट्रनीति की अखंडता और एकता को बाधित करने वाले दंडनीय हैं ही। लेखक ने पृष्ठ 316 पर लिखा है-''युद्ध सदा अनुचित रहा है, अनुचित रहेगा। मानवता के भाल का कृष्णतम कलंक है यह, भावी पीढ़ियाँ इसकी विभीषिका से अपने को जितना मुक्त रख पायेंगी उतना ही कल्याण होगा। मनुष्यता के उतने ही देवत्व के समीप पहुँच पायगा मनुष्यत्व।''[16]

निष्कर्ष और उपसंहार

रामकथा को भारतीय भाषाओं में ही नहीं बल्कि विदेशी भाषाओं में भी पूर्ण सम्मान मिला है। विश्व स्तर पर रामकथा को अपनाया गया है। विद्वानों ने यह भी स्वीकार किया है कि रामकथा के आदि कवि वाल्मीकि रहे हैं। चूँकि प्रारम्भ में लेखन कला की परम्परा नहीं थी और लोग कथाओं को कंठस्थ कर लेते थे फिर दूसरे स्थान पर जाकर उन कथाओं का वाचन करते थे। सम्भव रहा हो कि याद की गई कथा को सुनाने में कुछ भिन्नता आ गयी हो अथवा कुछ अंश छूट गये हों, अथवा कथाओं के तारतम्य को जोड़ने में कुछ और कथाएं अलग से जुड़ गयी हो। रामकथा सुनने वाले दूसरे स्थान के लोग जब यही कथा तीसरे स्थान पर सुनाते रहे हों तब उनके साथ भी यही समस्या उत्पन्न हुई हो।

Scanned with OKEN Scanner

कथा वाचन में तत्कालीन सामाजिक वातावरण, संस्कृति के साथ कथा वाचक की मनोवृत्ति का भी रामकथा पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

रामकथा के प्रति मेरी भी आस्था प्रारम्भ से बनी रही है। विभिन्न भाषाओं और सम्प्रदायों में रामकथा को किस तरह अंगीकार किया गया है अथवा रामकथा के प्रति उनका क्या दृष्टिकोण रहा है इन्हीं बिन्दुओं को और गहराई से मनन करने के लिए मैंने रामकथा पर शोध कार्य प्रारम्भ किया है। आदि कवि वाल्मीकि की रामायण सम्पूर्ण रामकथाओं का आधार है। इसलिए मेंने विषय में वाल्मीकि रामायण को स्वीकार किया। चूँकि स्नातकोत्तर मैंने जैन साहित्य में किया है और जैन साहित्य में रामकथा पर आधारित प्रथम महाकाव्य विमलसूरि कृत पउमचरियं को मान्यता प्राप्त है इसलिए मैंने ''पउमचरियं और वाल्मीकि रामायण का तुलनात्मक अध्ययन'' शोध प्रबन्ध का अपना विषय बनाया।

अपने इस शोध प्रबन्ध में रामकथा से सम्बन्धित दोनों महाकाव्यों के विभिन्न पक्षों को समेटने के प्रयास में मैंने इसे नौ अध्यायों में विभक्त किया है।

शोध प्रबन्ध का प्रथम अध्याय तीन भागों में प्रस्तुत है-(क) शोध का औचित्य, (ख) शोध की सीमा और विस्तार एवं (ग) रामकथा के स्रोत।

वाल्मीकि रामायण पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है जैसे सम्पूर्ण रामकथा की घटनाएं "लैश बैक में उद्धृत है। लव कुश द्वारा रामकथा का गायन इसके उदाहरण हैं। पउमचरियं महाकाव्य के रचयिता विमलसूरि ने अपने काव्य में स्वयं स्वीकार किया है कि मैंने जो रामकथा सुनी है उसे ही मैं अपने अनुयायियों के बीच प्रस्तुत कर रहा हूँ।

आदिकवि वाल्मीकि की रामायण के तीन पाठ मिलते हैं- दक्षिणात्य पाठ, गौडीय पाठ और पश्मिोत्तरीय पाठ। प्रत्येक पाठ में बहुत से श्लोक ऐसे मिलते हैं जो अन्य पाठों में नहीं मिलते। फिर भी गौडीय तथा पश्मिोत्तरीय पाठ में काफी निकटता देखने को मिलती है। वाल्मीकि रामायण कुल पाँच कांडों में विभक्त है। युद्ध कांड के अन्त में जो फलश्रुति मिलती है, उससे यह प्रमाणित होता है कि इसके रचनाकाल तक रामायण की परिसमाप्ति यहीं मानी जाती थी-रामायणमिदं कृत्स्नं (6,128,117)। बालकांड के प्रथम सर्ग में एक अनुक्रमणिका मिलती है जिसमें केवल अयोध्या कांड से लेकर युद्ध कांड तक के विषयों का उल्लेख किया जाता है। बाद में इस अनुक्रमणिका की अपूर्णता का अनुभव हुआ और फलस्वरूप एक दूसरी अनुक्रमणिका की रचना की गयी जिसमें बालकांड की सामग्री के साथ-साथ उत्तरकांड का भी निर्देश मिलता है-

स्वराष्ट्ररंजनं चैव वैदेह्याश्च विसर्जनम्।।28।।
अनागतं च यत्किंचिद्रामस्य वसुधातले।
तच्चकारोत्तरे काव्ये वाल्मीकिर्भगवानृषिः ।।29।।(बड़ौदा संस्करण, सर्ग-3)

वाल्मीकि ने राम का चित्रण सामान्य मानव के रूप में चित्रित किया है। कालान्तर में उनके अनुयायियों ने बालकाण्ड और उत्तरकांड को इस महाकाव्य में जोड़ा है। इसके बाद से राम का चित्रण अवतार के रूप में किया गया है। बालकांड की शैली और उत्तरकांड की शैली काफी कुछ मिलती जुलती है।

उत्तरकांड में सीता त्याग की कथा बिल्कुल काल्पनिक प्रतीत होती है। जिस सीता के प्रति राम ने कहा है कि ''मिथिलेश कुमारी जानकी तीनों लोकों में पवित्र हैं। जैसे मनस्वी पुरुष कीर्ति का त्याग नहीं कर सकता उसी तरह मैं भी उन्हें नहीं छोड़ सकता।'' अरण्य कांड में राम ने लक्ष्मण से कहा है कि ''सीता से अलग होकर मैं जीवित नहीं रह सकता''-उसी सीता को राम त्याग सकते हैं?

वाल्मीकि ने सीता हरण का वर्णन किया है। लेकिन कम्बन ने सीता हरण का वर्णन अपनी दृष्टि से किया है। रावण सीता का स्पर्श किये बिना ही उन्हें उस धरती के साथ ही उठा ले जाता है, जिसपर वे खड़ी थीं। भक्तिकाल में तुलसीदास ने अपने रामचरितमानस में उल्लेख क्रिया है कि सीता हरण के अवसर पर रावण वास्तविक सीता को नहीं ले गया था बल्कि सीता की छाया को ही सीता समझ कर वह ले गया था।

अध्यात्म रामायण में राम-सीता की विलास-क्रीड़ाओं का वर्णन मिलता है। भुशुण्डी रामायण में वर्णन किया गया है कि रावण, अपने राक्षसों द्वारा राम का वध बाल्यावस्था में ही करना चाहता था। दशरथ भयभीत होकर राम को गुप्त स्थान में भेज देते हैं और राम का पालन-पोषण गोपेन्द्र सुखित और उनकी पत्नी मांगल्या द्वारा होता है।

'हनुमत्संहिता' में उल्लेख किया गया है कि सीता अपने शरीर से 18108 नारियों की सृष्टि करती हैं और इनके साथ रास करने के लिए राम भी इतने रूप धारण करते हैं।

कश्मीर के 'रामावतारचरित' में उल्लेख किया गया है कि अयोध्या, लंका, कश्मीर में ही अवस्थित है।

जैन रामकथा में और भी भिन्नता देखने को मिलती है। रामकथा के सभी चरित्र जिन मंदिरों के प्रति श्रद्धानत हैं। तिरेसठ महापुरुषों में राम आठवां बलदेव, लक्ष्मण आठवां वासुदेव और रावण आठवां प्रतिवासुदेव हैं। पउमचरियं में राम की आठ हजार पत्नियां और लक्ष्मण की सोलह हजार पत्नियों का उल्लेख किया गया है। हनुमान भी बाल ब्रह्मचारी नहीं हैं, बल्कि उनकी सौ पत्नियाँ हैं।

गुणभद्र की रामकथा में लक्ष्मण का जन्म कैकेयी के गर्भ से उल्लिखित है। इस ग्रंथ में मंदोदरी के गर्भ से सीता के जन्म को दर्शाया गया है।

जैन सम्प्रदाय की रामकथा से यह भी ज्ञात होता है कि सीता विजयराम आदि आठ पुत्रों की माता हैं। रावण वध राम के हाथों नहीं होकर लक्ष्मण के हाथों हुआ है और ब्राह्मण रावण के वध के कारण दण्डस्वरूप लक्ष्मण एक असाध्य रोग से नरक प्राप्त करते हैं। 395 वर्ष साधना कर राम को केवयज्ञान उत्पन्न हुआ था। सीता भी अन्य रानियों के साथ जैन धर्म में दीक्षित होती हैं।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। लेखक, कवि, नाटककार अपने युग की राजनीतिक, सामाजिक व्यवस्था की झलक अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रदर्शित करता है। वाल्मीकि, कम्बन, विमलसूरि, गुणभद्र, तुलसीदास, स्वयंभू आदि के ग्रंथों में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, संस्कृति की छवि मिलती है।

Scanned with OKEN Scanner

रामकथा के स्रोत विषयक अंश में मैंने उल्लेख किया है कि वाल्मीकि से पूर्व भी रामकथा सम्बन्धी आख्यान प्रचलित था। लेकिन इसके कोई प्रमाण नहीं मिलते हैं। इसी कारण वाल्मीकि रामायण को ही रामकथा सम्बन्धी प्राचीनतम रामकाव्य माना गया है।

डॉ0 वेबर रामकथा का स्रोत बौद्ध 'दशरथ जातक' से मानते हैं। उन्होंने यह भी कहा है कि होमर की ग्रीक कथा ट्राय के राजकुमार पैरिस द्वारा सुन्दरी हेलेन के हरण की घटना से प्रेरित होकर सीता हरण की घटना है।

डॉ0 याकोबी बताते हैं कि रामायण की रामकथा दो भागों के संयोग से उत्पन्न है। प्रथम भाग अयोध्या की घटनाएं हैं जिनके नायक दशरथ हैं। द्वितीय भाग के लिए वे वैदिक साहित्य का सहारा लेते हैं। रामायण के कई चरित्रों के नाम वैदिक साहित्य में हैं। कुछ चरित्रों के प्रतिबिम्ब वैदिक चरित्रों में देखने को मिलते हैं। लेकिन वैदिक काल में न तो रामायण थी और न रामकथा सम्बन्धी कथाएं थीं।

जैन रामकथा में बताया गया है कि राक्षस वंश और वानर वंश, विद्याधर वंश की अलग-अलग प्रजातियाँ थीं। वे भी मनुष्य की तरह रहते थे और उन्हें समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त थी।

बौद्ध ग्रंथ के 'लंकावतारसूत्र' में रावण और बुद्ध का धर्म विषय पर संवाद उद्धृत है लेकिन इस ग्रंथ में कहीं भी राम-रावण युद्ध की बात नहीं आयी है। सिंहल के प्राचीन ग्रंथ दीपवंश और महावंश में राजा रावण का कहीं उल्लेख नहीं है। वैदिक साहित्य और बौद्ध त्रिपिटक में हनुमान का भी कहीं उल्लेख नहीं किया गया है।

महाभारत में रामकथा का वर्णन चार स्थलों पर किया गया है जिनमें रामोपाख्यान में विस्तृत वर्णन किया गया है।

जैन रामकथा के दो भिन्न रूप प्रचलित हैं- श्वेताम्बर और दिगम्बर। श्वेताम्बर सम्प्रदाय विमलसूरि की रामकथा से प्रभावित है। लेकिन, दिगम्बर सम्प्रदाय में विमलसूरि और गुणभद्र की रामकथाएं देखने को मिलती हैं।

प्रारम्भ में राम, अवतार के रूप में चित्रित नहीं हुए। कालान्तर में उन्हें अवतार माना गया और अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण, अद्भुत रामायण में रामकथा को भक्ति के सांचे में ढाला गया है।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में रामकथा सम्बन्धी लोकप्रिय ग्रंथ रहे हैं-कम्ब रामायण (तमिल), रंगनाथ रामायण (तेलुगु), रामचरित पुराणम् (कन्नड़), रामचरितम् (मलयालम), रामावतारचरित (कश्मीरी), माधवकंदली रामायण (असमिया), भावार्थ रामायण (मराठी), रामलीला ना पदो (गुजराती), रामायण खुश्तर (उर्दू-फारसी), रामचरितमानस (हिन्दी) आदि।

विदेशों में भी रामकथा उतनी ही लोकप्रिय रही है जितना भारतवर्ष में। तिब्बती रामायण की एक कथा से ज्ञात होता है कि दशग्रीव की पटरानी ने एक पुत्री को जन्म दिया था। उसकी जन्मपत्री से ज्ञात हुआ कि यह अपने पिता के नाश का कारण बनेगी।

इसलिए उसे समुद्र में फेंक दिया गया। भारत के कृषकों द्वारा उस बालिका का पालन हुआ और उसी कारण रावण का वध हुआ।

खोतानी रामायण पर बौद्ध प्रभाव देखने को मिलता है। राम की चिकित्सा के लिए बौद्ध वैद्य जीवक का उल्लेख है। इसमें रावण वध नहीं होता। बहुपतित्व की प्रथा अपनाते हुए राम-लक्ष्मण दोनों का विवाह सीता से होता है।

इन्डोनेशिया की रामकथा दो रूपों में हैं। एक रूप में रामकथा वाल्मीकि रामायण के बिल्कुल निकट है और दूसरे रूप में रामकथा वाल्मीकि रामायण से बहुत भिन्न है।

हिन्द चीन देश के एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि यहां एक वाल्मीकि मंदिर है जिसमें वाल्मीकि की मूर्ति स्थापित हैं। यहां वाल्मीकि को विष्णु का अवतार माना गया है।

स्याम देश (थाईलैण्ड) की रामकथा में उल्लेख किया गया है कि समस्त घटनाएं स्याम देश में घटित हुई हैं। हनुमान,अंजना और शिव के पुत्र हैं। इस रामायण का नाम 'कियोन' है। अब यह हिन्दी में भी आ गयी है।

सोलहवीं शताब्दी में लाओ भाषा में रचित 'रामजातक' का उल्लेख मिलता है। इसमें राम और रावण चचेरे भाई हैं। राम के एक भाई लक्ष्मण और एक बहन शांता हैं। रावण, शांता का अपहरण करता है। बाद में दशरथ के दो पुत्र राम तथा लक्ष्मण दोनों अपनी बहन शान्ता के अपहरण का प्रतिकार करने के लिए रावण को पराजित करते हैं। रावण की राजधानी की यात्रा में तथा वापसी में भी राम और लक्ष्मण दोनों अनेक विवाह करते हैं। उन विवाहों से जो पुत्र उत्पन्न होते हैं, वे दूसरे राम-रावण युद्ध में राम की सहायता करेंगे, ऐसा उल्लेख है। बाद में रावण के साथ संधि की जाती है तथा रावण और शांता का विवाह सम्पन्न हो जाता है।[17]

शोध के द्वितीय अध्याय में जैन साहित्य के महाकवि विमलसूरि और संस्कृत साहित्य के महाकवि वाल्मीकि का परिचय उद्धृत है।

आचार्य विमलसूरि ने पउमचरियं की रचना कर सर्वप्रथम रामकथा को जैन धर्म के सांचे में ढालने का प्रयास किया है। विमलसूरि ने स्वयं लिखा है कि भगवान महावीर द्वारा यह कथा इन्द्रभूति गौतम को कही गई थी, जिसने अपने शिष्यों को सुनायी और फिर यह बात आगे बढ़ी। राहू से विजय ने सुनी और विजय ने विमलसूरि को यह कथा सुनाई। भगवान महावीर के निर्वाण के 530 वर्ष पश्चात् विमल ने पउमचरियं की रचना की अर्थात् विक्रम संवत् 72 ई0।

डॉ0 याकोबी आदि विद्वान भाषा के आधार पर इसका रचना काल तीसरी अथवा चौथी शताब्दी का मानते हैं। प्रो0 लड्डू और गोरे विमलसूरि का काल ईसा पूर्व पहली अर्द्ध शताब्दी और ईसा के बाद के एक शताब्दी के मध्य तक मानते हैं।

पउमचरियं से यह भी ज्ञात होता है कि विमलसूरि, वाल्मीकि रामायण से परिचित थे। लेकिन कई स्थलों पर वे वाल्मीकि से भिन्न मत रखते हैं। यहाँ हनुमान,

सुग्रीव आदि वानर नहीं बल्कि विद्याधर हैं। रावण के दसमुख नहीं थे। वह नौ मोतियों का माला धारण करता था इसीलिए उसे दसानन कहा गया है। सीता जनक की ही औरस कन्या हैं। सीता का एक भाई भामंडल भी है।

पउमचरियं के तथ्य, राजनीतिक और ऐतिहासिक तथ्य, साहित्यिक और भाषायी साक्ष्य के आधार पर पउमचरियं का रचनाकाल तीसरी-चौथी शताब्दी के मध्य तक खींच लाता है। डॉ0 के0 आर0 चन्द्र ने पउमचरियं में वर्णित रचनाकाल को भ्रामक बताया है। कई दृष्टान्तों के आधार पर उन्होंने पउमचरियं का सही रचनाकाल 530-57=473 ई0 माना है।

लौकिक संस्कृत के प्रथम महाकवि के रूप में महर्षि वाल्मीकि को विभूषित किया गया है और उनकी रामायण भूतल का प्रथम काव्य माना जाता है।

वाल्मीकि का परिचय हमें विभिन्न ग्रंथों में अलग-अलग रूप में मिलता हैं। कहीं वाल्मीकि भृगुवंशीय हैं, कहीं ब्राह्मण सुमति के पुत्र हैं। कहीं वे डाकू हैं और कहीं अद्वितीय विद्वान।

एम0 विन्टरनिट्ज ने महर्षि का काल ईसा से तीन शताब्दी पूर्व माना है। वाल्मीकि रामायण से ज्ञात होता है कि वाल्मीकि, राम के समकालीन थे। सीता त्याग के पश्चात् वाल्मीकि ने ही उन्हें अपने आश्रम में रखा और लव-कुश का वहीं जन्म हुआ। लेकिन रामायण के बालकांड, उत्तरकांड और युद्धकांड की फलश्रुति को छोड़कर वाल्मीकि का और कहीं संकेत नहीं मिलता। ए0 वेवर, याकोबी और ए0एन उपाध्ये जैसे विद्वान इस मत से सहमत नहीं हैं कि वे ही रामायण के रचयिता हैं।

रामायण के तीनों पाठों की तुलना करने पर स्पष्ट होता है कि बालकांड और उत्तरकांड की रचना बाद में की गई है। लेकिन ऐसा भी प्रतीत होता है कि इन दोनों कांडों की रचना के समय तक आदिकवि वाल्मीकि और ऋषिवर वाल्मीकि की अभिन्नता सर्वमान्य होने लगी थी।

राम द्वारा आयोजित अश्वमेघ यज्ञ के अवसर पर महर्षि वाल्मीकि भी आमंत्रित हैं। यज्ञ में वाल्मीकि सीता के सतीत्व का साक्ष्य देते हुए अपना परिचय प्रचेता के दसवें पुत्र के रूप में देते हैं, जो अपनी बातों पर बल देते हुए कहते हैं-''मैंने कभी पाप नहीं किया है।'' ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तरकांड के रचयिता को वाल्मीकि का दस्यु होना स्वीकार्य नहीं है।

आनन्द रामायण में वाल्मीकि के तीन जन्मों की कथा का वर्णन है। पहले जन्म में स्तम्भ नामक ब्राह्मण, दूसरे जन्म में व्याध और तीसरे जन्म में कृणु पुत्र हैं। यही कृणु पुत्र तपस्या कर वाल्मीकि होते हैं। डे पोलियो ने जानकारी दी है कि दो ऋषियों के कहने पर वाल्मीकि ने तपस्या की और वे भावी रामायण लिखने में समर्थ हुए। मिथोलौजी डेस इंदू में वाल्मीकि को ब्रह्मा का अवतार माना गया है। फादर कामिल बुल्के ने भी उल्लेख किया है कि सम्भवतः पाँचवीं शताब्दी ई0 तक राम की भांति वाल्मीकि को भी विष्णु का अवतार माना जाने लगा। विष्णु धर्मोत्तर पुराण (5वीं शताब्दी ई0) के प्रथम खंड में उल्लिखित है कि ''त्रेतायुग के अन्त में विष्णु, वाल्मीकि के रूप में जन्म लेकर रामायण लिखने वाले थे।'' इस रचना के तृतीय खंड में कई स्थलों पर वाल्मीकि की पूजा का उल्लेख किया गया है।

वाल्मीकि आश्रम के सम्बन्ध में भी कई मतभेद हैं। कुछ विद्वान तमसा नदी के तट पर वाल्मीकि आश्रम मानते हैं, कुछ गंगा तट पर और कुछ विद्वान यमुना तीर पर उनका आश्रम मानते हैं। लेकिन अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण, तुलसीकृत रामचरितमानस आदि में वर्णित वाल्मीकि आश्रम यमुना के पार चित्रकूट के पास ही स्थित अधिक विश्वसनीय मानते हैं।

वाल्मीकि के काल के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतभेद है। लेकिन एम0 मोनियर विलियम्स और सी0वी0 वैद्य का मुख्य तर्क है कि वाल्मीकिकृत रामायण की रचना बुद्ध से पूर्व अर्थात् 5वीं शताब्दी ई0 पूर्व में हुई होगी। ए0बी0 कीथ आदि विद्वान रामायण की रचना चौथी शताब्दी ई0 पूर्व का मानते हैं। एम0 विन्टरनिट्ज, कीथ के कुछ तर्कों से सहमत हैं। लेकिन वे इसका रचना काल तीसरी शताब्दी ई0 पूर्व का मानते हैं। पाणिनी में वाल्मीकि की कोई चर्चा नहीं है लेकिन उस समय तक रामकथा प्रचलित हो चुकी थी। सूत्रों में कैकेयी, कौशल्या और शूर्पणखा का संकेत देखने को मिलता है। इसलिए हम कह सकते हैं कि वाल्मीकि ने लगभग तीन सौ ई0 पूर्व में अपनी इस अमर रचना की सृष्टि की हो।

शोध प्रबन्ध के तीसरे अध्याय में पउमचरियं और वाल्मीकि रामायण की कथावस्तु संक्षेप में प्रस्तुत की गयी है।

सम्पूर्ण पउमचरियं काव्य में आचार्य विमलसूरि ने एक सौ अठारह पर्व में रामकथा का वर्णन किया है। इनमें से एक से पैंतीस तक के अंश को उद्देश्य कहा गया है और छत्तीस से लेकर एक सौ अठारह तक के अंश को पर्व कहा गया है। इसके कारण के सम्बन्ध में डॉ0 के0 आर0 चन्द्रा ने भी अपनी पुस्तक में कोई इसका कारण नहीं बताया है।

कवि विमलसूरि ने तीर्थंकरों की वंदना करते हुए परम्परानुसार पद्मकथा जो उन्होंने सुना है वही यहाँ वे प्रस्तुत करते हैं। इस ग्रन्थ में सात अधिकार हैं-पहले अधिकार में विश्व की स्थिति, दूसरे अधिकार में वंशोत्पत्ति, तीसरे अधिकार में युद्ध के लिए प्रस्थान, चौथे अधिकार में युद्ध, पाँचवें अधिकार में लवण और अंकुश की उत्पत्ति होती है, छठे अधिकार में निर्वाण और सातवें अधिकार में अनेक भव का वर्णन किया गया है।

विपुलगिरि पर्वत पर भगवान महावीर के आगमन पर वहाँ के राजा श्रेणिक भगवान के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हैं और उनका स्वागत करते हैं। दूसरे दिन राजा श्रेणिक भगवान महावीर के प्रथम गणधर गौतम से भेंट करते हैं और रामकथा सम्बन्धी अपनी शंकाओं का उल्लेख करते हैं। फिर अनुरोध करते हैं उनसे सच्ची रामकथा कहने के लिए।

गणधर गौतम सर्वप्रथम राजा श्रेणिक से सृष्टि का संक्षिप्त वृत्तान्त, समय चक्र और चौदह कुलकर वंश का वर्णन करते हुए भगवान ऋषभदेव की जीवनी का उल्लेख

करते हैं। फिर समाज के तीन वर्ग क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की उत्पत्ति के साथ चौथी सामाजिक रचना ब्राह्मण के सम्बन्ध में जानकारी देते हैं।

आगे चलकर गौतम, इक्ष्वाकु, सोम और विद्याधर आदि की उत्पत्ति का हाल बताते हैं और भगवान अजित तथा विद्याधर राजा मेघवाहन को लंकापुरी और पातालालंकापुर के प्रथम राजा का उल्लेख करते हैं।

वानरद्वीप में अवस्थित किष्किन्धिपुर के पहले राजा विद्याधर श्रीकंठ थे। श्रीकंठ का एक वंशज अमरप्रभ ने वानरवंश की स्थापना की थी। वानर के चित्र मंगलकारी होते हैं इसी कारण इनके चित्र को ध्वजाओं, तोरणों, महल के शिखर आदि पर लगाने की परम्परा बन गयी। यही विद्याधर आगे चलकर वानर कहलाए।

इन्द्र के साथ मालि की शत्रुता थी। मालि ने इन्द्र पर आक्रमण किया और वह इन्द्र द्वारा मारा गया। इन्द्र ने सोम, वरुण, कुबेर और यम को चारों दिशाओं का दिक्पाल बनाया और वैश्रवण (धनद) को पाँचवाँ लोकपाल के रूप में लंका का शासक नियुक्त किया। भय के कारण मालि का भाई सुमालि पाताल लोक में जा छिपता है। सुमालि के पुत्र रत्नश्रवा हैं। कैकसी से विवाहोपरान्त दसमुख रावण, भानुकर्ण, चन्द्रणखा और विभीषण का जन्म होता है।

रावण एक वीर योद्धा है। धनद को पराजित कर वह लंका पर अधिकार करता है। यम को पराजित कर किष्किन्धिपुर का राज्य किष्किन्धि के पुत्र आदित्यरजा को वापस दिलाता है। आदित्यरजा के पुत्र बालि से रावण की शत्रुता होती है और वह रावण की वीरता के भय से अपने भाई सुग्रीव को राज्य सौंपकर स्वयं वैराग्य धारण करता है।

राजा श्रेणिक ने जब जैन धर्म के महापुरुषों के बारे में जानना चाहा तब गौतम ने तीरेसठ महापुरुषों की चर्चा करते हुए विशेषरूप से आठवें महापुरुष बलदेव अर्थात् पद्म अर्थात् राम के बारे में जानकारी दी। सर्वप्रथम उन्होंने हरिवंश की उत्पत्ति, उसी वंश के मिथिला नरेश विश्वकेतु और उनके पुत्र जनक की कथा बतायी। राजा दशरथ के पूर्वजों की कथा कहते हुए गौतम ने कथा आगे बढ़ाई।

किसी ज्योतिषी ने रावण को कहा था कि सागरमार्ग से दशरथपुत्र और जनकपुत्री, उसके वध का कारण बनेगी। नारद ने दशरथ को आकर सूचना दी कि विभीषण उसकी हत्या करने की योजना बना रहा है। यही सूचना उसने जनक को भी दी थी। रावण की वीरता से दोनों परिचित थे। उसकी वीरता से भयभीत होकर दोनों अपने-अपने राज्य छोड़कर पृथ्वी का भ्रमण करने निकल गये।

बाहर भ्रमण करते हुए दोनों राजा कैकेयी के स्वयंवर सभा में आये। उपस्थित अन्य राजाओं के बीच कैकेयी ने अपना वरमाला दशरथ के गले में डाली। ईर्ष्या से आक्रोशित अन्य राजाओं ने दशरथ पर आक्रमण किया। कैकेयी ने सारथी बन कर दशरथ की मदद की और उनकी विजय हुई। महल लौटने पर दशरथ ने प्रसन्न होकर कैकेयी से एक वर मांगने को कहा। कैकेयी ने अवसर आने पर वर मांगने की बात कही।

अपराजिता से राम, सुमित्रा से लक्ष्मण और कैकेयी से भरत और शत्रुघ्न का जन्म हुआ। जनक की महारानी विदेहा के गर्भ से सीता और उसके भाई भामंडल का जन्म होता है। लेकिन पुत्र भामंडल का अपहरण हो जाता है। उसका लालन-पालन रथनूपुर के विद्याधर राजा खेचर चन्द्ररति द्वारा किया जाता है।

म्लेच्छ राजा जब जनक के राज्य पर आक्रमण करता है तब वह अपने मित्र दशरथ से मदद मांगता है। दशरथ पुत्र राम और लक्ष्मण, जनक की मदद करते हैं। राम की वीरता से प्रभावित होकर जनक अपनी पुत्री सीता का विवाह राम से करने का वचन देते हैं। राम ने धनुष चढ़ाया और उनका विवाह सीता से हुआ।

साकेत के राजा दशरथ को वैराग्य होता है और वे राम का राज्याभिषेक करना चाहते हैं। भरत भी वैराग्य धारण करना चाहते हैं। चिन्तित कैकेयी अपने पुत्र भरत को सांसारिक बंधनों में बांधे रखने के उद्देश्य से, वर के मुताबिक दशरथ से भरत के लिए राज्य मांगती है। पिता के वचन की रक्षा के उद्देश्य से राम-लक्ष्मण और सीता दक्षिण की ओर स्वेच्छा से गये। पश्चातापिनी कैकेयी के अनुरोध पर भरत, राम को वन से लौटाना चाहते हैं लेकिन असफल होते हैं। भरत किसी मुनि के समक्ष शपथ लेते हैं कि राम के लौटने पर वे दीक्षित होंगे।

महाकाव्य में आगे राम-लक्ष्मण द्वारा कई राजाओं को पराजित किया जाता है। कई मुनि और ब्राह्मणों से भी दोनों भाई मिलते हैं। संयोगवश चन्द्रनखा और खरदूषण के पुत्र शम्बूक का वध लक्ष्मण के हाथों हो जाता है। अपने मृत पुत्र को देख चन्द्रनखा को पीड़ा होती है, लेकिन राम-लक्ष्मण की मोहिनी छवि देखकर वह उनसे पत्नी बनाने का प्रस्ताव रखती है। असफल होने पर वह अपने मृत पुत्र की सूचना रावण को देती है।

सीता के सौंदर्य से प्रभावित होकर रावण सीता का हरण करता है। सीता हरण के बाद सुग्रीव से राम की मित्रता होती है। साहसगति का वध कर राम सुग्रीव को उसका राज्य वापस दिलाते हैं। बदले में सुग्रीव अपनी तेरह कन्याओं को राम को समर्पित करता है और सीता की खोज में राम की मदद करता है। हनुमान लंका पहुंचकर विभीषण और सीता से मिलते हैं। लंका की वाटिका ध्वंस करने पर इन्द्रजीत द्वारा हनुमान बन्दी होते हैं और रावण के दरबार में लाये जाते हैं।

महाकाव्य में आगे युद्ध का वर्णन किया गया है। समुद्र नामक राजा की कथा, नल द्वारा समुद्र की पराजय, रावण द्वारा विभीषण के राज्य निष्कासन के बाद हंसद्वीप में आकर वे राम की शरण में आते हैं। युद्ध में रावण के शक्तिबाण से लक्ष्मण मूर्च्छित होते हैं। द्रोणमेघ की कन्या विशल्या उनकी चिकित्सा करती है और फिर दोनों का विवाह होता है।

रावण बहुरूपा नामक विद्या की साधना करता है और सीता पर दवाब डालता है। सीता के प्रतिकार करने पर रावण पश्चाताप करता है और राम लक्ष्मण को पराजित कर सीता को लौटाने का निर्णय लेता है। मन्दोदरी रावण को उसे दिये गये शॉप का स्मरण दिलाती है कि उसकी मौत लक्ष्मण के हाथों होगी। रावण का वध लक्ष्मण के चक्र द्वारा होता है।

रावण वध के बाद कैदी कुम्भकर्ण, इन्द्रजीत और मेघवाहन मुक्त होकर विरक्त हो तपस्या करते हैं। मंदोदरी, चन्द्रनखा समेत आठ हजार महिलाओं के साथ महल त्याग

Scanned with OKEN Scanner

कर वे सारी महिलाएं साधना में लीन होती हैं। राम लक्ष्मण, लंका में छै वर्षों तक रहते हैं। यहीं उन कन्याओं से दानों भाइयों का विवाह होता है जो कन्याएं वन यात्रा के दौरान उन्हें प्रदान किये गये थे।

महाकाव्य के उत्तरचरित खंड में दुखी अपराजिता की व्यथाकथा नारद आकर राम को देते हैं। राम-लक्ष्मण साकेत लौटते हैं। भरत वैराग्य होकर दीक्षित होते हैं और निर्वाण प्राप्त करते हैं। आगे लक्ष्मण का राज्याभिषेक होता है। उनका विवाह सोलह हजार कन्याओं के साथ होता है। इसी तरह राम का विवाह आठ हजार कन्याओं के साथ होता है।

लंका से वापस लौटी दोषी सीता के विरोध में नागरिकों के बीच राम चर्चा सुनते हैं। कृतान्तवदन जिन मंदिर दिखाने के बहाने सीता को वन में छोड़ता है। पुण्डरीकपुर के राजा वज्रजंघ के महल में सीता आश्रय लेती हैं और वहीं वह लवण और अंकुश दो पुत्रों को जन्म देती हैं। नारद से इन दोनों पुत्रों को अपनी माँ की व्यथा कथा की जानकारी मिलती है। लवण और अंकुश का राम-लक्ष्मण से युद्ध होता है।

सुग्रीव, हनुमान और विभीषण के अनुरोध पर सीता को साकेत बुलाया जाता है। लोकापवाद से मुक्त होने के लिए सीता की अग्निपरीक्षा होती है। सीता ज्योंही अग्नि में प्रवेश करती हैं, प्रज्ज्वलित अग्निकुंड, स्वच्छ जल से भर जाता है और सर्वत्र फैलने लगता है। उपस्थित लोगों के अनुरोध पर सीता जल स्पर्श करती हैं और जल प्रवाह रुक जाता है। सीता जैन दीक्षा लेती हैं।

महाकाव्य के अन्त में भ्रातृत्व प्रेम की परीक्षा लेने के लिए दो देवता आकर लक्ष्मण को विश्वास दिलाते हैं कि राम का देहान्त हो गया है। लक्ष्मण शोकातुर हो मरते हैं। लक्ष्मण की अन्त्येष्टि के बाद राम विरक्त होते हैं और दीक्षित होकर सत्तरह हजार वर्षों तक साधना करते हुए निर्वाण प्राप्त करते हैं।

गीताप्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित दो खंडों में वाल्मीकि रामायण का प्रकाशन किया गया है। पहले खंड का प्रथम संस्करण संवत् 2017 में प्रकाशित हुआ है जिसमें कुल चार कांड हैं- बालकांड, अयोध्याकांड, अरण्य कांड और किष्किन्धा कांड। दूसरे खंड के बत्तीसवें संस्करण में तीन कांड हैं-सुन्दरकांड, युद्धकांड और उत्तरकांड। इस शोध प्रबन्ध में वाल्मीकिकृत इन्हीं दोनों खंडों को आधार बनाया गया है। इन्हीं दोनों खंडों के आधार पर वाल्मीकिकृत रामायण की कथावस्तु प्रस्तुत की जा रही है।

सात कांडों में विभक्त वाल्मीकि रामायण में कुल 645 सर्ग संग्रहीत हैं। बालकांड से इस महाकाव्य का प्रारम्भ होता जहाँ महर्षि वाल्मीकि नारद से गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, सत्यवक्ता और दृढ़ प्रतिज्ञ व्यक्ति के बारे में जानना चाहा। नारद ने राम की कथा सुनाई। नारद को विदा कर वाल्मीकि तमसा नदी के तट पर पहुँचे। वहीं उन्होंने क्रौंच पक्षी के जोड़े में नर पक्षी को घायल होते देखा। वियोगी क्रौंची के करुण क्रन्दन ने वाल्मीकि को झकझोर दिया और उनके मुंह से निकला-

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥15॥

वाल्मीकि के आश्रम लौटने पर ब्रह्मा उनके समक्ष प्रकट हुए और उन्होंने वाल्मीकि से श्रीराम के सम्पूर्ण चरित्र का वर्णन करने का अनुरोध किया। चौबीस हजार श्लोकों में रामायण की रचना कर वाल्मीकि ने लव कुश को बताया। अयोध्या में लव कुश का गायन सुनकर राम प्रसन्न हुए और उन्होंने वाल्मीकि का सम्मान किया।

बालकांड में राजा दशरथ द्वारा ऋष्य शृंग के आमंत्रण पर पुत्रेष्टि यज्ञ का आयोजन होता है। रावण के आतंक से त्रस्त देवगण ब्रह्मा के पास जाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु से मनुष्य रूप में जन्म लेकर रावण वध का आदेश देते हैं। वानर के रूप में जन्म लेकर ऋषि, सिद्ध विद्याधर, नाग आदि राम की मदद के लिये आये। इन्द्र ने बालि, सूर्य ने सुग्रीव, कुबेर ने गन्धमादन, वायुदेव के औरस पुत्र हनुमान, विश्वकर्मा के पुत्र नल और अग्निदेव के पुत्र नील हुए।

राक्षसों के उत्पात को रोकने के लिए विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को दशरथ से मांग लाये। वे उन्हें बला और अतिबला नामक मंत्र प्रदान किये और उन्हें शक्तिशाली अस्त्र प्रदान किये। राम ने ताड़का का वध किया। सीता स्वयंवर में राम लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ मिथिला गये। रास्ते में वे उन्हें गंगा-उत्पत्ति की कथा कहते हैं। आगे अहिल्या का उद्धार होता है। सीता विवाह के पश्चात् राम की भेंट परशुराम से होती है।

एक सौ उन्नीस सर्गों में रचित अयोध्या कांड में राजा दशरथ अपने जीवनकाल में राम का राज्याभिषेक करना चाहते हैं। गुरु वशिष्ठ ने दूसरे दिन ही अभिषेक का शुभ मुहूर्त बताया। यह शुभ सूचना महल में और पूरे नगर में क्षणमात्र में ही फैल गयी। राम के राज्याभिषेक की खबर सुनकर कैकयी को भी प्रसन्नता हुई। लेकिन कुबड़ी दासी मंथरा ईर्ष्या से जल गई। उसने कैकेयी के मन में जहर घोल दिया। शुभ सूचना देने के लिए राजा दशरथ जब कैकेयी के पास आये तब उसने दशरथ द्वारा प्राप्त दोनों वरदान मांगा और भरत को राज्याभिषेक एवं राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास मांगा।

राम को जब यह खबर मालूम हुई तब सहर्ष वे पिता के वचन की रक्षा हेतु वन गमन के लिए तैयार हो गये। अनुज लक्ष्मण और पत्नी सीता भी राम के साथ वनगमन के लिए तैयार हो गये। सुमन्त्र उन्हें रथ से नगर के बाहर ले गये। निषादराज ने उनका स्वागत किया और राम ने सुमन्त्र को आयोध्या वापस लौटाया।

ननिहाल से लौटने पर जब भरत को राम वनगमन की जानकारी मिली तब वे राम को लौटाने के लिए वन गये। भरत से ही राम को दशरथ के मृत्यु की सूचना मिलती है। मंदाकिनी नदी में राम ने पिता को जलांजलि और पिंडदान दिया। भरत के अनुरोध करने पर भी जब राम अयोध्या लौटने को तैयार नहीं हुए तब भरत राम की खड़ाऊँ लेकर अयोध्या वापस आये और उसे ही सिंहासन पर रखा। स्वयं भरत नन्दी गांव चले गये।

राम चित्रकूट छोड़कर अत्रिमुनि के आश्रम गये। अनुसूया ने देवी सीता को अनेक उपेदश दिये।

पचहत्तर सर्गों में संग्रहीत अरण्यकांड में विराध वध की घटना के बाद राम लक्ष्मण शरभंग ऋषि, सुतीक्ष्ण मुनि और अगस्त ऋषि के आश्रम में आये। अगस्त ऋषि से राम को विष्णु से प्राप्त धनुष के साथ अनेक दिव्यास्त्र मिले। पंचवटी पहुँचने पर

Scanned with OKEN Scanner

दशरथ मित्र वृद्ध जटायु से राम की भेंट हुई। लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा के नाक-कान काटने के बाद वह रावण को सीता हरण के लिए प्रेरित करती है। मारीच की सहायता से रावण, सीताहरण करता है। जटायु के घायल होने के बाद सीता ने पर्वत पर बैठे पाँच वानरों को देख एक वस्त्र में अपने कुछ आभूषण नीचे फेंका। अशोक वाटिका में कड़े पहरे में सीता बन्दिनी रहीं। घायल जटायु से सीता हरण की सूचना पाकर राम आगे बढ़े जहाँ उन्होंने कबन्द राक्षस का उद्धार किया और उसने सुग्रीव से मित्रता करने की सलाह दी। शबरी से भेंट होने पर उसने सुग्रीव का पता बताया।

सड़सठ सर्गों में संग्रहीत किष्किन्धा कांड में ऋष्यमूक पर्वत पर राम की भेंट सुग्रीव से हुई। राम ने बालि वध की प्रतिज्ञा की। बालि वध के बाद उसका पुत्र अंगद राम की शरण में आया। सीता खोज से पूर्व पहचान स्वरूप राम ने अपनी अंगूठी हनुमान को दी। फिर हनुमान, अंगद, जाम्बवान दक्षिण दिशा की ओर सीता की खोज के लिए निकल गये। समुद्र तट पर जटायु के बड़े भाई सम्पाति से उनकी भेंट हुई। सम्पाति ने उन्हें बताया कि रावण सीता को लेकर समुद्र पार लंका चला गया है। हनुमान को उनकी शक्ति का स्मरण जाम्बवान ने दिलाया और हनुमान सीता की खोज के लिए लंका की ओर उड़ चले।

रामायण में संग्रहीत सुन्दरकांड के अन्तर्गत कुल अड़सठ सर्ग हैं। इस कांड में हनुमान के लंका प्रस्थान के दौरान सुरसा, सिंहिका से भेंट दिखलाया गया है। लंका की शोभा और रावण कक्ष का भी उन्होंने दर्शन किया। फिर सीता के निकट पहुँचकर हनुमान ने उन्हें अपना परिचय दिया और पहचान स्वरूप वे राम की मुद्रिका देते हैं। प्रमदावन को उजाड़ने, अक्षय कुमार के वध करने के बाद मेघनाद ने हनुमान को बंदी बनाकर रावण के दरबार में उपस्थित किया। हनुमान सीता लौटाने का परामर्श रावण को देते हैं। रावण इन्कार करता है। हनुमान की पूंछ में आग लगाई गयी। हनुमान घूम-घूम कर लंका विध्वंस करने का प्रयास करते हैं और फिर समुद्र पार कर जाम्बवान और अंगद से आकर मिलते हैं। राम के निकट पहुँचकर सीता का समाचार वे सुनाते हैं और प्रमाणस्वरूप वे उनके द्वारा दिये गये चूड़ामणि राम को देते हैं।

छठा कांड, युद्धकांड में कुल एक सौ अट्ठाइस सर्ग हैं। हनुमान से सीता का समाचार सुनकर राम प्रसन्न हुए। अब लंका पर चढ़ाई की तैयारी होने लगी। रावण ने मंत्रियों से परामर्श किया। विभीषण, कुम्भकर्ण ने रावण के कार्य की आलोचना की। मेघनाद विभीषण की हंसी उड़ाता है और दरबार से उन्हें जाने का आदेश देता है। विभीषण राम की शरण में आये। समुद्र पार कर लंका पहुंचने की समस्या थी। तीन दिनों तक समुद्रतट पर राम बैठ गये। अन्त में कोधावेश में राम ने धनुष पर बाण चढ़ाया। समुद्र ने प्रकट होकर राम से क्षमा याचना की। उसने बताया कि शिल्पकला में निपुण नल समुद्र पर पुल बना सकता है। इस बीच रावण ने शुक नामक राक्षस को पक्षी बनाकर सुग्रीव के पास मैत्री का संदेश भेजा। शुक बन्दी बना लिया गया।

समुद्र पार करने पर घमासान युद्ध हुआ। मेघनाद ने नागरूपी बाण से राम और लक्ष्मण को मूर्च्छित कर दिया। गरुड़ ने नागपाश से उन्हें मुक्त किया। कुम्भकर्ण को

जगाया गया। कुम्भकर्ण युद्ध करने आया और राम के हाथों मारा गया। शक्ति संचय हेतु मेघनाद निकुम्भला देवी के मंदिर में तप करने लगा। विभीषण इस तप की शक्ति को जानते थे। उन्होंने मेघनाद के तप में विघ्न डालने का परामर्श दिया। लक्ष्मण के द्वारा मेघनाद मारा गया।

अब रावण युद्धभूमि में आता है। उसके शक्तिबाण से लक्ष्मण मूर्च्छित होते हैं। सुषेण वैद्य ने लक्ष्मण को स्वस्थ किया। राम के बाण से रावण की मृत्यु हुई। रावण की मृत्यु से विभीषण दुखी हुए। उन्होंने ही रावण का अन्तिम संस्कार किया। विभीषण का राज्याभिषेक किया गया। सीता की अग्निपरीक्षा हुई। फिर सभी लोग पुष्पक विमान से अयोध्या वापस आये। अयोध्या में राम का स्वागत हुआ। राम का राज्याभिषेक हुआ। भरत को युवराज बनाया गया। राम ने ग्यारह हजार वर्षों तक शासन किया। प्रजा सुखी थी।

उत्तरकांड में 111 सर्ग संग्रहीत हैं। इस कांड में रावण का जीवनचरित, हनुमान का जीवन चरित, बालि और सुग्रीव का परिचय, सीता हरण का कारण, सीता वनवास का वर्णन किया गया है। अश्वमेध यज्ञ के दौरान सीता आती हैं। राम उनसे पवित्रता का साक्ष्य चाहते हैं। सीता दुखी होती हैं और पृथ्वी से प्रार्थना करती हैं कि तुम फट जाओ और मुझे अपनी गोद में ले लो।

आगे तपस्वी के रूप में राम के सामने काल आता है। वह राम से कहता है कि पृथ्वी पर आपका समय पूरा हो गया है इसलिए अब अपने लोक वापस चलें। इसी बीच दुर्वासा का आगमन होता है। लक्ष्मण इसकी सूचना राम को जाकर देते हैं। आज्ञा उल्लंघन के दंड स्वरूप राम ने लक्ष्मण को निर्वासन का दंड दिया। लक्ष्मण ने सरयू के तट पर अपने प्राण त्यागे। बाद में राम ने कोशल में कुश को और उत्तर कोशल में लव को राजा के रूप में प्रतिष्ठित किया। अन्त में राम, भरत और शत्रुघ्न ने भी सरयू के तीर पर अपने प्राण त्यागे।

शोध प्रबन्ध के चौथे अध्याय में मैंने पउमचरियं और वाल्मीकि रामायण के कुछ प्रमुख पात्रों और कुछ गौण पात्रों का वर्णन किया है। प्रमुख पात्रों में सर्वप्रथम मैंने जैन साहित्य के त्रिषष्ठि शलाका पुरुष के आठवें बलदेव श्रीराम को रखा है। पउमचरियं महाकाव्य में राम के तीन जन्मों की कथा का उल्लेख किया गया है। जनक के राज्य पर म्लेच्छों के आक्रमण के समय राम ने जनक की सहायता की थी और पुरस्कार स्वरूप जनक ने सीता से विवाह का वचन दिया था। इस ग्रंथ में राम की आठ हजार महिलाओं के पति होने का उल्लेख है। आदर्श पुत्र, आदर्श पति, आदर्श भाई, आदर्श योद्धा होते हुए भी राम जैन परम्परा के अनुसार दीक्षित होते हैं।

वाल्मीकि रामायण के श्रीराम मर्यादापुरुषोत्तम हैं। उनके चरित्र में कहीं भी ईश्वरता की झलक नहीं मिलती। मातृभक्ति, पितृभक्ति, एक पत्नीव्रत रहे हैं श्री राम। सख्य प्रेम का उदाहरण है कि जिनलोगों ने राम की थोड़ी भी मदद की, राज्याभिषेक के बाद भी वे उन्हें भूले नहीं। वे बार-बार कहते हैं-आप लोगों की सहायता से ही मैंने रावण पर विजय पायी है। रावण वध के बाद देवताओं के समक्ष राम ने अपना परिचय दशरथपुत्र के रूप में ही दिया। ब्रह्मा ने यहीं रहस्योद्घाटन करते हुए राम के महत्व को बतलाया।

Scanned with OKEN Scanner

दूसरे प्रमुख पात्र में मैंने लक्ष्मण को रखा है जो त्रिषष्ठि शलाका पुरुषों में अष्टम वासुदेव के रूप में चर्चित हैं। पउमचरियं ग्रंथ में लक्ष्मण के पूर्व जन्मों की कथाएं आई हैं। वे सुमित्रा के एकमात्र पुत्र हैं। म्लेच्छों के उपद्रव को शांत करने के लिए वे भी राम के साथ रहे हैं। सीता स्वयंवर में लक्ष्मण वज्रावर्त्त धनुष को गोल मोड़कर अन्य राजाओं को अपने वीरत्व का परिचय देते हैं। राम के सेवक के रूप में वे सदैव उनकी छाया बने रहे। इस ग्रंथ में सीता हरण का कारण लक्ष्मण द्वारा भूलवश शम्बूक वध बताया गया है। लक्ष्मण के चक्र से रावण का वध होता है। विमलसूरि ने इसका कारण बताया है कि पूर्व जन्म में जो जिसको मारता है वह अगले जन्म में उसी के द्वारा मारा जाता है। लक्ष्मण द्वारा रावण का वध होता है। अयोध्या वापस लौटने पर राम का राज्याभिषेक न होकर लक्ष्मण का राज्याभिषेक होता है। भ्रातृ प्रेम की परीक्षा लेने के लिए दो देवता राम की मृत्यु का विश्वास लक्ष्मण को दिलाते हैं। भ्राता वियोग में लक्ष्मण ने अपने प्राण त्यागे और नरक प्राप्त किया।

वाल्मीकि रामायण में राम के सिद्धान्तों से लक्ष्मण कभी सहमत नहीं हो पाये फिर भी उनका स्नेह, साहचर्य और सहयोग उदाहरणीय है। यहां लक्ष्मण व्यक्ति के सुख दुख का कारण धर्म-अधर्म नहीं मानते बल्कि इसका कारण वे समाज और व्यक्तियों की नीतियां मानते हैं। लक्ष्मण पितृऋण को कभी नहीं मानते इसी कारण उन्होंने कभी तर्पण नहीं किया। नारी के रूप सौंदर्य के प्रति लक्ष्मण सदैव अनासक्त रहे। उर्मिला के साथ सोलह वर्ष रहने के बाद भी वन गमन के समय न तो वे उर्मिला से मिले और न उनके साथ की क्रीड़ाओं का उन्होंने वनवास के दौरान कभी स्मरण किया। चारित्रिक दृष्टि से लक्ष्मण के समान त्यागी, कर्मयोगी पूरी रामायण में कोई दूसरा चरित्र नहीं है।

तीसरे प्रमुख चरित्र के रूप में मैंने रावण को रखा है जो त्रिषष्ठि शलाका पुरुषों में आठवां प्रतिवासुदेव है। रावण को दसमुख नहीं थे बल्कि माला के नौ मोतियों में उसका एक सिर प्रतिबिम्बित होता था इसलिए उसे दसमुख कहा गया। अपने मौसेरे भाई धनक के वैभव की तरह अपने को बनाने के लिए रावण ने पचपन विद्याएं सिद्ध की थी। मंदोदरी के अलावा बालि-सुग्रीव की बहन श्रीप्रभा से रावण के विवाह के साथ छै हजार विद्याधरवंशीय पत्नियों का उल्लेख आया है। इस ग्रंथ में वानर, राक्षस अलग-अलग जाति के रहे हैं। रावण के अहंकार की झलक कई स्थलों पर देखने को मिलती है। अपने चन्द्रहास खड्ग से भुजा काटकर उसकी शिराओं से वीणा के तार बनाकर, जिन की पूजा करने का उल्लेख किया गया है। रावण एक धर्मभीरू जैन है। हिंसा पर उसने रोक लगायी है। पशुबलि का विरोध किया है। सीता हरण के बाद रावण को पश्चाताप होता है। बल-पराक्रम होते हुए भी रावण अपने को धिक्कारता है। वह कहता है तीनों लोकों में प्रसिद्धि प्राप्त करने वाला रावण आज राम लक्ष्मण से युद्ध करने में लज्जित महसूस करता है। इस ग्रंथ में रावण की मृत्यु लक्ष्मण के हाथों होती है।

वाल्मीकि रामायण में रावण के नाम से राम तब परिचित होते हैं जब सीता हरण होता है। विश्रवा पुत्र कुबेर लंका का राजा था।। कैकसी अपने सौतपुत्र के ऐश्वर्य को देख ईर्ष्या करती है और वह सदैव रावण को उसके योग्य बनने के लिए प्रेरित करती है। दस

हजार वर्षों तक घोर तप के बाद ब्रह्मा से उसने सुपर्ण-नाग-यक्ष, दैत्य-दानव-राक्षस और देवताओं द्वारा अबध्य रहने का वर प्राप्त किया था। बिना किसी संघर्ष के उसने कुबेर (धनद) से लंका और उसका पुष्पक विमान प्राप्त किया। रावण ब्रह्मा और शिव भक्त है। वेद, शास्त्र, राजनीति, धर्म और अर्थनीति का महापंडित है। रावण एक वीर योद्धा है। सहस्रबाहु अर्जुन और किष्किन्धा नरेश बालि से ही उसकी पराजय हुई। रावण जनतन्त्र में विश्वास रखता है। मंत्रि परिषद् के परामर्श पर ही वह कोई निर्णय लेता है। उसके प्रभाव में आकर परामर्श देने का वह सदैव विरोधी रहा। वेदों का ज्ञाता रहते हुए भी रावण यज्ञ पर विश्वास नहीं करता। विश्वामित्र ने भी कहा है कि उसने कभी स्वयं यज्ञ में विघ्न नहीं डाला। रावण उन ऋषि मुनियों का विरोधी था जो कर्मकाण्ड का पाखंड रच कर अपने को मानव समाज से श्रेष्ठ होने का दावा करता है। रावण नारी को पुरुषों के समकक्ष मानने के लिए कतई तैयार नहीं था। उसने सिर्फ सीता के समक्ष ही प्रणय निवेदन हेतु अपना सिर झुकाया। जाति व्यवस्था समाज के लिए हितकर नहीं है। उसकी मान्यता थी कि जाति वाले सदा अपनी जाति के लोगों को विपत्ति में देख हर्षित होते हैं।

त्रिषष्ठि शलाका पुरुषों के बाद प्रमुख पात्रों में मैंने सीता की व्याख्या की है जो सम्पूर्ण रामकथा की घटनाओं की केन्द्रबिन्दु रही हैं। आचार्य विमलसूरि जनक पुत्री सीता के साथ उनके एक भाई भामंडल का भी उल्लेख करते हैं। सीता के सौंदर्य से प्रभावित होकर नारद भी उन्हें प्राप्त करना चाहते हैं। बालपन में ही सीता के भाई भामंडल का हरण हुआ था और उसकी परवरिश विद्याधर राजा चन्द्रगति के महल में हुई है। अन्जाने में भामंडल सीता की तस्वीर देख उनके सौंदर्य पर आकर्षित हुआ। भामण्डल की इच्छापूर्ति के लिए विद्याधर राजा चन्द्रगति के दवाब में राजा जनक ने सीता स्वयंवर का आयोजन किया। सीता एक आदर्श नारी, आदर्श पत्नी रही हैं। पउमचरियं में लंका विजय के बाद सीता की अग्नि परीक्षा नहीं होती बल्कि सीता त्याग, लवण अंकुश के जन्म के बाद सीता की अग्नि परीक्षा होती है। सीता त्याग के लिए वह राम से रुष्ट नहीं हैं बल्कि अपने पूर्व के कर्मों से रुष्ट हैं। सीता जैन धर्म में दीक्षित होती हैं। इस ग्रंथ में साकेत वापस लौटने पर लक्ष्मण का राज्याभिषेक होता है। इसलिए सीता राजमहिषी नहीं होतीं।

वाल्मीकि रामायण में सीता के बाल चरित्र का वर्णन नहीं है। स्वामीभक्त सीता वन गमन में भी अपने को धन्य मानती हैं। पर पुरुष स्पर्श से परहेज सीता के विशेष गुण रहे हैं। पउमचरियं में हनुमान के कहने पर भी सीता उनके साथ राम के पास वापस आना स्वीकार नहीं करतीं। वाल्मीकि रामायण में भी सीता ने हनुमान के ऐसे प्रस्ताव को अस्वीकार किया है। क्षमा की प्रतिमूर्त्ति सीता लंका विजय के पश्चात् भी उन राक्षसियों के संहार करने से हनुमान को रोक देती हैं जिन लोगों ने उनपर अत्याचार किया था। सीता त्याग के बाद भी वह राम पर कोई दोषारोपण नहीं लगाती हैं और उन्हें संदेश भेजती हैं कि आप जैसा व्यवहार अपने भाइयों से करते हैं वैसा ही सदा पुरवासियों के साथ भी करें।

दोनों महाकाव्यों के गौण पात्रों में मैंने सर्वप्रथम दशरथ को रखा है। पउमचरियं में दशरथ की पाँच सौ उत्तम स्त्रियों का उल्लेख है। रावण की वीरता से दशरथ भी

Scanned with OKEN Scanner

भयभीत हैं। नारद के कहने पर वे राज्य छोड़कर पृथ्वी भ्रमण के लिए निकलते हैं। कैकेयी स्वयंवर में गुप्तवेश में आते हैं और कैकेयी उन्हें अपना वर चुनती हैं। अन्य रानियों में प्रिय रानी कैकेयी थीं। सीता जन्म से पूर्व दशरथ और जनक की मैत्री रही है। राजा जनक दशरथ की वीरता से परिचित थे तभी म्लेच्छों के आक्रमण के समय मदद के लिए उन्होंने दशरथ के पास संदेश भेजा था। राम वनगमन के पश्चात् कैकेयी पश्चाताप करती है और राम को वापस बुलाने का अनुरोध करती है। लेकिन दशरथ कहते हैं जिसके लिए पूर्व भव से विहित है वह उस मनुष्य को प्राप्त होता है। भरत को गद्दी सौंपकर दशरथ बहत्तर सुभटों के साथ दीक्षित होते हैं।

वाल्मीकि रामायण के दशरथ, अज के पुत्र हैं। पास-पड़ोस के राजाओं से उनके सम्बन्ध मधुर रहे हैं। इस ग्रंथ में भी दशरथ रावण की वीरता से भयभीत रहे हैं। वे एक कामुक दुर्बल राजा हैं। उनकी साढ़े तीन सौ रानियों का उल्लेख किया गया है। इच्वाकु वंश के राजाओं की तरह, दशरथ सत्यवादी नहीं दीखते। वचन देते हैं लेकिन उसकी पूर्ति के समय पश्चाताप करते हैं। दशरथ के इस अवगुण से कैकेयी पूर्णतः परिचित हैं। यज्ञ के प्रति दशरथ निष्ठावान रहे हैं। पुत्रेष्टि यज्ञ के अलावा उनके द्वारा सैकड़ों यज्ञ करने के संकेत मिलते हैं। यज्ञ के अलावा शास्त्र मर्यादाओं के वे पालक रहे हैं। पुत्रों के नाम संस्कार और राम के युवराज पद पर अभिषेक करने से पूर्व उन्हें हिदायत देना इसके उदाहरण हैं।

शोध प्रबन्ध के गौण चरित्रों में दूसरा चरित्र है कैकेयी का। पउमचरियं की कैकेयी सौंदर्य में परिपूर्ण रहने के साथ ही वह विविध कलाओं और शास्त्रों में कुशल हैं। अपने स्वयंवर के समय अन्य राजाओं का दशरथ पर आक्रमण के समय कैकेयी, दशरथ के रथ की सारथी हुईं। इस ग्रंथ में दशरथ द्वारा कैकेयी को एक वर दिया गया है जिसके आधार पर वह भरत का राज्याभिषेक मांगती हैं। राम के वनवास का कोई उल्लेख नहीं है। राम स्वेच्छा से दक्षिण जाते हैं। राम के प्रति कैकेयी की ममता है। राम के जाने के बाद कैकेयी भरत से उन्हें वापस बुलाना चाहती हैं, फिर स्वयं जाकर क्षमा मांगती हैं, रोती हैं।

वाल्मीकि रामायण की कैकेयी कुशल सारथी, सत्यनिष्ठ, राम के प्रति स्नेह-वात्सल्य का व्यवहार रहा है। राम के गुणों की वे प्रशंसक हैं। शासन करने की उनमें क्षमता है। अपने सौंदर्य से कैकेयी ने दशरथ को अपने वश में कर रखा है। दशरथ भी इसे स्वीकार करते हैं। लेकिन इतना गुण होने के बाद भी कैकेयी में अहंकार नहीं है। क्रोधी, लोभी, दुराग्रही, दुराचारिणी आदि अवगुणों के कहीं प्रमाण नहीं मिलते। मंथरा के लाख कहने के बाद भी कैकेयी कहती है-नियमानुसार, ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का उत्तराधिकारी होता है। वह दशरथ पर विश्वास नहीं करती है, इसीलिए अपने हृदय की बात स्पष्ट शब्दों में देवताओं को साक्षी बनाकर उसने कहा। दशरथ को सत्यनिष्ठ प्रमाणित करने में कैकेयी और राम का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। राम वनगमन के पश्चात् अयोध्या की राजसत्ता का उत्तरदायित्व कैकेयी पर ही था। फिर भी राम वन गमन के लिए कैकेयी पर दोषारोपण होता है।

तीसरे गौण चरित्र में मैंने हनुमान का वर्णन किया है। जैन रामायण में हनुमान का स्वरूप वानर के रूप में नहीं है। पउमचरियं में हनुमान पवनंजय और अंजना कुमारी के पुत्र हैं। हनुमान का पालन-पोषण हनुरुह पुर में हुआ इसी कारण वे हनुमान कहलाये। हनुमान, रावण का पक्ष लेकर वरुण से युद्ध करते हैं और उनके सौ पुत्रों को कैद करते हैं। सीता की खोज में जाते समय हनुमान प्रतिशोध स्वरूप अपने दादा महेन्द्र को परास्त करते हैं। इस ग्रंथ में लंका दहन नहीं किया गया है। रावण की समस्त शक्तियों का आकलन करने पर हनुमान अपना बंधन तोड़कर राम के पास आते हैं। हनुमान की एक हजार पत्नियों में प्रधान पत्नियाँ हैं-वरुण कन्या सत्यवती, चन्द्रनखापुत्री अनंगकुसुमा, सुग्रीवपुत्री पद्मरागा और नलपुत्री हरिमालिनी। हनुमान यहां क्रीड़ा भी करते हैं। इस ग्रंथ में हनुमान जिन मंदिर जाते हैं और दीक्षित होते हैं।

वाल्मीकि रामायण के हनुमान शास्त्र, भाषा, व्याकरण एवं अन्य विषयों के जानकार हैं। राम भी इसे स्वीकारते हैं। भूगोल और वन विज्ञान के विशेषज्ञ होने के कारण ही सुग्रीव ने सीता खोज की जिम्मेवारी हनुमान को सौंपी थी। हनुमान जी को जनपदीय भाषाओं का भी ज्ञान था। सीता से बात करने से पूर्व वे चिन्तित हुए थे कि उनसे किस भाषा में बात की जाय। अन्त में उन्होंने जनपदीय भाषा का प्रयोग किया। हनुमान में उत्साह और धैर्य पग-पग पर देखने को मिलता है। मायावी सीता के वध को देख अन्य वानर भागने लगे लेकिन हनुमान ने उनका हौसला बढ़ाया। हनुमान शत्रु की शक्ति की प्रशंसा करना भी जानते थे। अक्षय कुमार के युद्ध के समय का दृश्य इसके उदाहरण हैं। कर्म परिणाम के सिद्धान्त को हनुमान मानते थे। बालि वध के बाद तारा को समझाते हुए वे कहते हैं-प्रत्येक प्राणी अपने शुभ और अशुभ कर्मों का फल भोगता है। क्रोध को हनुमान जी सबसे बड़ा विकार मानते हैं।

गौण पात्र के चौथे चरित्र में हैं-सुग्रीव। पउमचरियं में आदित्यरजा की तीन संतानें हैं-बालि, सुग्रीव और बहन श्रीप्रभा। बालि रावण की वीरता से परिचित था। उसने रावण के प्रस्ताव को ठुकरा कर वैराग्य धारण कर लिया। सुग्रीव के सत्तासीन होने के बाद उसने रावण की अधीनता स्वीकार की और अपनी बहन श्रीप्रभा को रावण को सौंपा। इस ग्रन्थ में साहसगति नामक विद्याधर ने सुग्रीव का रूप धारण कर सुग्रीव की पत्नी तारा का अपहरण कर किष्किन्धि राज्य पर अधिकार कर लिया था। सीता वियोग में भटकते राम की भेंट सुग्रीव से हुई। राम ने साहसगति को मार कर सुग्रीव पत्नी तारा को वापस दिलाया और राज्य वापस कराया। इस रचना में भुजंगपाश में राम लक्ष्मण के स्थान पर सुग्रीव और भामंडल को बांधा जाता है। कालान्तर में सुग्रीव, अंगद को किष्किन्धि का राजा बनाकर राम के साथ वैराग्य धारण कर दीक्षित होता है।

वाल्मीकि रामायण में सुग्रीव आत्म रक्षार्थ ऋष्यमूक पर्वत पर आश्रय लेते हुए राम के दर्शन करता है। सुग्रीव का चरित्र कामी, विलासी और राज्यलोभी है। बालि वध के पश्चात् नियमानुसार अंगद को किष्किन्धा का राजा नहीं बनाकर अलोकप्रिय रहते हुए भी वह स्वयं राजा बनता है। बालि, सुग्रीव पत्नी रूमा से आकर्षित था अथवा उसके लिए कोई अमर्यादित व्यवहार किया हो ऐसा कोई संकेत इस ग्रंथ में नहीं मिलता। लेकिन उसने

Scanned with OKEN Scanner

राम को बताया कि बालि ने मेरी पत्नी रूमा को रख लिया है और मुझे निष्कासित कर दिया है। आत्मरक्षार्थ सुग्रीव पृथ्वी के इतने स्थान भटक चुका था कि उसे पृथ्वी के भूगोल का चाक्षुष ज्ञान प्राप्त हो गया था। डरपोक के रूप में सुग्रीव का चरित्र है। सीता की खोज भूल जाने पर लक्ष्मण के आगमन पर वह उनके सामने जाने की हिम्मत नहीं जुटा पाता। वह एक क्रोधी राजा है। सीता खोज में असफल लौटे वानरों को मरवाने की घोषणा इसके उदाहरण हैं। सुग्रीव स्वयं स्वीकार करता है कि क्षत्रिय में क्रोध होना आवश्यक है। सुग्रीव मैत्री को काफी महत्त्व देता है।

शोध प्रबन्ध का पाँचवाँ अध्याय है-रामकथा प्रवाह में प्रसंगों की संगति। कथा प्रवाह को विस्तार देने के लिए विमलसूरि और आदिकवि वाल्मीकि ने महाकाव्यों में नगर वर्णन, राज प्रासाद वर्णन, उपवन वर्णन और विभिन्न ऋतुओं का वर्णन किया है।

विमलसूरि ने पउमचरियं में वैभवशाली मगध का वर्णन करते हुए राजगृह का उल्लेख किया है। मगध जनपद विविध प्रकार के नगरों से परिव्याप्त था। यहाँ के कोष्ठागार मणि, सुवर्ण, रत्न आदि से भरे-पूरे थे। नृत्य संगीत का महत्त्व था। इत्र और फूलों को महत्त्व दिया जाता था। चारों ओर सरोवर, झील और उद्यान से मगध जनपद की शोभा बढ़ गयी थी। यहाँ की प्रजा सुखी थी। लंका नगरी का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है-मणि एवं रत्नों की किरणों से देदीप्यमान राक्षस द्वीप सात योजन में फैला है। मध्य में त्रिकूट नामक पर्वत नौ योजन ऊँचा है। पर्वत के शिखर के नीचे सोने के विचित्र प्रकारों वाली देवताओं की सम्पत्ति से समृद्ध लंकापुरी नाम की नगरी है। लंका नगरी में ऊँचे देवमंदिर हैं। इसके सौंदर्य को देख देव भी इस महानगरी को छोड़ना नहीं चाहते। साकेत का सौंदर्य वर्णन कवि ने कुछ विशेष नहीं किया है। हाँ, राम वनगमन के समय कवि ने नगर की मलिनता का वर्णन संक्षेप में किया है। यहाँ अपराध होते थे जिसके लिए दण्डधारी (पुलिस) पुरुषों की व्यवस्था थी। जिन मंदिर के उल्लेख से ज्ञात होता है कि यहाँ के लोगों में भक्ति भावना थी।

महाकवि वाल्मीकि ने अपने महाकाव्य में अयोध्या, लंका और किष्किन्धा नगरों का विस्तार से वर्णन किया है। वर्णन है कि धन-धान्य समृद्धशाली अयोध्या नगरी महाराज मनु ने बसायी थी। दशरथ ने उसे और भी सुदृढ़ किया। यहाँ नाटक मंडलियाँ थीं जिनमें स्त्रियाँ ही नृत्य और अभिनय करती थीं। सुरक्षा हेतु नगर के चारों ओर गहरी खाई खुदी थी। श्रीराम के अयोध्या वापस लौटने पर यहाँ की सजावट का वर्णन कवि ने अपनी लेखनी में किया है। लंका का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है यह नगर अलकापुरी के समान शक्तिशालिनी सेनाओं से सुरक्षित है। श्रीराम भी लंका की शोभा देखकर आश्चर्यचकित होते हैं। वे कहते हैं सम्भवतः पूर्वकाल में विश्वकर्मा ने अपनी कला-चातुरी से इस पर्वत शिखर पर स्थित लंकापुरी का निर्माण किया है।

राजप्रासाद के सौंदर्य का वर्णन करने में महाकवि विमलसूरि ने थोड़ी कमी रखी है। नगर वर्णन की सुख-समृद्धि से ही अनुमान लगाया जा सकता है कि राजप्रासाद की शोभा कितनी उच्च कोटि की रही होगी। वाल्मीकि रामायण में भी कुछ ऐसे ही तथ्य देखने को मिलते हैं। अयोध्या के राजप्रासाद का वर्णन करते हुए वाल्मीकि कहते

हैं-अयोध्या के राजमहल कैलाश शिखर के समान उज्ज्वल और ऊँचा है। राज परिवार के सदस्यों के लिए अलग-अलग भवन हैं। श्रीराम का भवन इतना बड़ा है कि उसकी तीन ड्योढ़ियों में रथ के द्वारा प्रवेश किया जाता है। कैकेयी का भवन स्वर्ग के समान शोभा पा रहा है। रावण के महल का वर्णन करते हुए वाल्मीकि कहते हैं- महल मेघ के समान ऊँचा, सुवर्ण के समान सुन्दर कान्तिवाला तथा मनोहर है।

उपवन का वर्णन करने में भी महाकवि विमलसूरि ने थोड़ी कमी रखी है। फिर भी वे स्थल-स्थल पर वर्णन करते हुए कहते हैं समस्त कुसुम नामक उद्यान में सात प्रदेश हैं जहाँ नगर जन कीड़ा करते हैं। उद्यान में नाना प्रकार के वृक्ष हैं-सुगन्धित पुष्प के समूह हैं। नारंगी, कटहल, चम्पा, अशोक, पुन्नाग और तिलक के वृक्षों से कोयल की मधुर ध्वनि सुनने को मिलती है। राम वनगमन के दौरान कई उद्यानों, सीता हरण के बाद लंका के कई उद्यानों का वर्णन किया गया है।

वाल्मीकि रामायण में वाटिका, बाग, वन आदि नामों से उद्यान का वर्णन किया गया है। यहाँ लंका की अशोक वाटिका का वर्णन अधिक महत्वपूर्ण है। यहाँ साल, अशोक, निम्ब और चम्पा के वृक्ष हैं। नाना प्रकार के पक्षी कलरव कर रहे हैं। अशोक वाटिका की शोभा, रावण के अविवेकपूर्ण अमर्यादित कार्यों के कारण हनुमान जी को बदला-बदला सा प्रतीत हो रहा है।

दोनों महाकवियों ने अपने-अपने ग्रंथों में विभिन्न ऋतुओं का वर्णन किया है। विमलसूरि वर्षा ऋतु का वर्णन करते हुए उल्लेख करते हैं कि इस ऋतु में बादलों के छा जाने से सारा आकाश अंधकार से व्याप्त हो गया है। वर्षा की धारारुपी बाण से व्यथित शरीर वाला पथिक पुरुष अपनी पत्नी का स्मरण करके मूर्छित हो गया है। वसंत ऋतु का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि इस ऋतु में कोयल के गीत से मुखरित, भौंरों की झंकार गीत से शब्दायमान, अनेक प्रकार के पुष्पों के सुगन्धि केसर व मकरन्द की तीव्र सुगन्ध से सुवासित दिशा समूह वाला तथा दक्षिण पवन से आन्दोलित वृक्ष मानों नाच रहे हों। कवि ने भामण्डल और सीता के पुनर्मिलन के संदर्भ में शरद ऋतु का वर्णन करते हुए उल्लेख किया है कि इस ऋतु को देख जैसे चकवाक, हंस और सारस आनन्दित होते हैं वैसे ही भामंडल सीता को देख आनन्दित होता है। शम्बूक वध के समय भी कवि ने शरद का वर्णन किया है। उन्होंने हेमन्त ऋतु का वर्णन बड़ी सहजता, सरलता और कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है। सूर्य देव इन दिनों यम सेवित दक्षिण दिशा का दृढ़तापूर्वक सेवन करते हैं। इसलिए उत्तर दिशा सिन्दूरबिन्दु से वंचित हुई नारी की भाँति सुशोभित या प्रकाशित नहीं हो रही है। रात्रि बड़ी होती है। पूर्णिमा की चांदनी रात भी तुहिन बिन्दुओं से मलिन दिखाई देती है। वसंतऋतु को कवि ने काम के सहायक के रूप में प्रस्तुत किया है। उदाहरणस्वरूप वे सीताहरण के पश्चात् राम की दयनीय स्थिति का वर्णन करते हैं।

वर्षा ऋतु को वाल्मीकि ने विश्रान्तिकाल के रूप में माना है। इस ऋतु का वर्णन राम लक्ष्मण से करते हैं कि इस ऋतु में आकाशरूपा तरुणी सूर्य की किरणों द्वारा समुद्रों का रसपान कर कार्तिक आदि नौ मासों तक धारण किये हुए गर्भ के रूप में जलरूपी

Scanned with OKEN Scanner

रसायन को जन्म दे रही है।

शोध प्रबन्ध के छठे अध्याय में पउमचरियं और बाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत प्रयुक्त भाषा, छन्द और शब्द शक्तियों पर प्रकाश डाला गया है।

जैन साहित्य में 'पउमचरियं' रामकथा का प्रथम महाकाव्य है जो महाराष्ट्री प्राकृत में है। महाराष्ट्री प्राकृत भाषा के परिमार्जित रूप को देखकर इतना तो कहा ही जा सकता है कि इसकी रचना दूसरी शताब्दी से पूर्व की नहीं हो सकती। भाषा को सजीव बनाने के लिए इस महाकाव्य में अनेक सूक्तियों का प्रयोग किया गया है। जैसे- विनाश काले विपरीत बुद्धि, कन्या परकीय धन है।

काव्य-सौंदर्य की अभिव्यक्ति की समग्रता के लिए छन्द, कविता का अनिवार्य तत्त्व है। शब्द और अर्थ काव्य के शरीर हैं, लेकिन छन्द उनका सम्यक् विन्यास करता है। पउमचरियं के प्रत्येक उद्देश्य/पर्व के अन्त में अलग-अलग छन्द देखने को मिलते हैं लेकिन इस ग्रंथ की रचना में मुख्यतः आर्या छन्द अथवा गाहा (गाथा) छन्द का प्रयोग किया गया है। वर्णिक छन्दों में वसंत तिलका, उपजाति, मालिनी, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, रुधिरा एवं शार्दूलविक्रीडित छन्द उल्लेखनीय रहे हैं। विमलसूरि ने इस महाकाव्य की रचना में शब्द शक्तियों का प्रयोग कर काव्य की मधुरता को और भी बढ़ा दिया है।

वाल्मीकि रामायण की भाषा आर्ष संस्कृत भाषा कही गयी है। रचना अनुष्टुप् छन्द में है जिसका प्रयोग सर्वप्रथम वाल्मीकि ने ही किया है। इसके अलावा इस ग्रंथ में इन्द्रवज्रा, उपजाति, पुष्पिताग्रा आदि तेरह छन्द स्थान-स्थान पर देखने को मिलते हैं। वाल्मीकि की शैली सभी गुणों को धारण करने वाली है।

शोध प्रबन्ध के सप्तम अध्याय में अलंकार के सम्बन्ध में पउमचरियं और वाल्मीकि रामायण में प्रयुक्त अलंकारों पर चर्चा की गयी है। वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत में अलंकारों के अनेक उदाहरण मिलते हैं। आचार्य भामह ने अलंकार को काव्य की अनिवार्य शर्त माना है। आचार्य वामन ने अलंकार के बदौलत काव्य को ग्राह्य बतलाया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि 'अलंकार कथन की रोचक, सुष्ठु और प्रभावपूर्ण प्रणाली है।' इन विद्वानों के कथन के आधार पर कहना होगा कि अलंकार भावों की सुन्दर एवं आह्लादकारी अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त वाणी विधान है। इसके प्रयोग से कल्पना संवलित होती है तथा अभिव्यक्ति सुन्दर बन पाती है। अलंकार शब्द और अर्थ को चमत्कृत करते हैं।

महाकवि विमलसूरि ने अपने काव्यग्रंथ को अनेक अलंकारों के माध्यम से विभूषित किया है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, मुद्रालंकार का प्रयोग अनेक स्थलों पर देखने को मिलता है। इन अलंकारों के प्रयोग से कथावस्तु पर्याप्त रोचक बन गया है।

वाल्मीकि ने भी अपनी रामायण को अनेक अलंकारों से विभूषित किया है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, यमक आदि अलंकारों का प्रयोग कर महाकवि ने इस ग्रंथ को आकर्षक, रोचक और चमत्कारपूर्ण बनाये रखा है।

अष्टम अध्याय में रस की विवेचना की गयी है। काव्य के सौंदर्य को निखारने

में जिस प्रकार छन्द और अलंकार की आवश्यकता होती है उसी प्रकार रस पूरे काव्य को रसामृत में डुबोये रखता है। पाठक विभिन्न रसों में डूब कर काव्य का रसास्वादन करता है।

पउमचरियं महाकाव्य में संदर्भ के अनुसार कवि ने शृंगार, करुण, वीर, हास्य, अद्‌भुत, वात्सल्य, शांत और भक्ति आदि रसों का प्रयोग किया है जिससे सम्पूर्ण काव्य सरस प्रतीत होता है। वाल्मीकि ने भी अपनी रामायण में शृंगार, वीर, अद्‌भुत, हास्य, वात्सल्य, शांत आदि रसों का प्रयोग किया है जो साधारणीकरण में सहायक है।

संदर्भ-ग्रन्थ

1. आउट-लुक (साप्ताहिक), 24 मार्च, 2008 ई0
2. वही
3. मानिकचन्द्र दि॰ जैन ग्रंथमाला नं0 29-31, पद्मचरितम्, बम्बई, वि0सं0-1985
4. मानिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रंथमाला नं0-5
5. माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रंथमाला-43
6. राजस्थानी भाषा में रामकथा : श्री अगरचन्द नाहटा
7. वाल्मीकि कृत आदि रामायण : राय कृष्णदास, भारती (वाराणसी) नं0 6, पृ. 105-131
8. असमिया रामायण साहित्य (1948) : उ0च0 लेखारू।
9. रामकथा की उत्पत्ति : डॉ0 कामिल बुल्के, पृ. 39
10. ऑन दि रामायण : ए0 वेबर, पृ.65
11. दि ग्रेट एपिक: ई0 डब्लू हाफ्किन्स, पृ.63 और ऊबर डस रामायण : ए0 लुडविग, पृ. 30
12. हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर, भाग-1: एम0 विन्टरनिट्ज, पृ0-384
13. भारतीय और विदेशी नाटकों का इतिहास : डॉ0 चतुर्भुज
14. कुंदमाला एण्ड उत्तररामचरितः एच0डी0 संकालिया
15. रावण, डॉ0 चतुर्भुज
16. बिहार के रचनाकर्मियों की साहित्य यात्रा : डॉ0 सुरेन्द्र प्रसाद जमुआर।
17. रामकथा की उत्पत्ति और विकास : फादर कामिल बुल्के, पृष्ठ 231

Scanned with OKEN Scanner

परिशिष्ट

सहायक पुस्तकों की सूची

आधार ग्रंथ

1. पउमचरियं भाग-एक: प्रकाशक- प्राकष्टत ग्रंथ परिषद्, अहमदाबाद,
2. पउमचरियं भाग-दो, प्रकाशन वर्ष- 2005 ई0
3. वाल्मीकि रामायण, भाग-एक : गीता प्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण, संवत-2017
4. श्रीमद्वालमीकीय रामायण, भाग-दो, बत्तीसवाँ संस्करण, गीता प्रेस, गोरखपुर, प्रकाशन वर्ष- संवत-2064

संस्कृत/प्राकृत/पालि/हिन्दी

1. ऋग्वेद्, संस्कृति संस्थान, बरेली, उत्तर प्रदेश, 1967 ई0
2. भारतीय वाङ्मयेषु रामकथा वर्णनम् : आचार्य आद्याचरण झा, प्रकाशक:तिरहुत विद्यापीठ, ग्राम एवं पो0-राँटी, मधुबनी
3. संक्षिप्त स्कन्दपुराणांक : गीता प्रेस, गोरखपुर
4. संक्षिप्त वाल्मीकीय रामायणांक: गीता प्रेस, गोरखपुर
5. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणांक : सम्पादक-फ्रुल्लचन्द्र ओझा मुक्त आस्था प्रकाशन, कंकड़बाग, पटना-20
6. यजुर्वेद, संस्कृति संस्थान, बरेली, उत्तर प्रदेश, 1967 ई0
7. महाभारत: सरलादास
8. रस विनोद (उड़िया) : दीनकृष्णदास
9. स्कन्द पुराण
10. तत्वार्थ संग्रह रामायण
11. ऐतरेय ब्राह्मण
12. शतपथ ब्राह्मण
13. जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण
14. पुराणम्, भाग-2, वाराणसी
15. पिंगलच्छन्द: सूत्रम् अ0 2
16. नाट्यशास्त्रम् :
17. अग्निपुराण
18. नाट्य शास्त्र: भरतमुनि, ओरियन्टल इन्सटीच्यूट, बड़ोदा, सन्1934ई0
19. दशरूपक धनञ्जय, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, सन् 1967 ई0
20. अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग

21. श्रृंगार प्रकाश
22. जैन साहित्य और इतिहास : लेखक नाथूराम प्रेमी
23. पउमचरिउ तथा रामचरितमानस-एक सांस्कृतिक अध्ययन: लेखक : डॉ0 देवनारायण शर्मा, प्रकाशक- प्राकृत शोध संस्थान, वैशाली, सन् 1965 ई0
24. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लेखक : डॉ0 नेमिचन्द्र शास्त्री, प्रकाशक- तारा बुक ऐजेन्सी, वाराणसी, सन् 1988 ई0
25. भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, लेखक : डॉ0 हीरालाल जैन, प्रकाशक- मध्य प्रदेश साहित्य परिषद्, भोपाल, सन् 1962 ई0
26. पउमचरिउ : सम्पादक-डॉ0 एच0 सी0 भयाणी, प्रकाशक- भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, सन् 1977 ई0
27. प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य : लेखक- रामसिंह तोमर, प्रकाशक- हिन्दी परिषद्, प्रयाग, सन् 1964 ई0
28. राम-वनवास का भूगोल : लेखक- राय कृष्ण दास, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग-54, अंक 1 और 3
29. वाल्मीकि रामायण : रसानुशीलन - लेखक- डॉ0 रामानुज शर्मा, प्रकाशक- रूबी पब्लिकेशन, नया टोला, पटना-4
30. रामकथा उत्पत्ति और विकास - डॉ0 कामिल बुल्के, प्रकाशक- हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, 1993 ई0
31. मेघनाद (नाटक): लेखक- डॉ0 चतुर्भुज, प्रकाशक- साधना मन्दिर, पटना-4
32. रावण (नाटक) लेखक- डॉ0 चतुर्भुज, प्रकाशक- मगध कलाकार प्रकाशन, श्रीकृष्णनगर, पटना-1, सन् 1978 ई0
33. कम्ब रामायण - बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना
34. पौराणिक बाल कथाएं, भाग-2, लेखक- विश्वनाथ गुप्त, प्रकाशन विभाग
35. वाल्मीकीय रामायण में त्रासदीय तत्त्व : डॉ0 निशा राय, प्रकाशक- क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली
36. जै जै सियाराम : लेखक- आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, प्रकाशक- महावीर मंदिर प्रकाशन, पटना, सन् 2002
37. रस छंद अलंकार : लेखक- विश्वम्भर 'मानव', प्रकाशक- लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् 2001ई0
38. हमारे राष्ट्र् निर्माता : लेखक- डॉ0 वचनदेव कुमार, प्रकाशक- भारती भवन, पटना-1
39. रामायण के कुछ आदर्श पात्र : लेखक- जय दयाल गोयन्दका, प्रकाशक- गीता प्रेस, गोरखपुर,
40. रामायण का आचार-दर्शन : लेखक- अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव, प्रकाशक- भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, सन्-2000

Scanned with OKEN Scanner

41. रामायण कथा: लेखक- सीताराम चतुर्वेदी, प्रकाशक- महावीर मंदिर प्रकाशन, पटना सन् 1993 ई
42. श्रीरामकीर्ति महाकाव्यम् (हिन्दी पद्यानुवाद), अनु0-डॉ0 मिथिलेश कुमारी मिश्र, प्रकाशक- ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, सन् 1998 ई0
43. भारतीय और विदेशी भाषाओं के नाटकों का इतिहास:
ले0-डॉ0 चतुर्भुज, प्रकाशक- समय प्रकाशन, दिल्ली, सन् 2008 ई0
44. जातक कथा : भदन्त आनन्द कौसल्यायन, प्रकाशक- हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1982 ई0
45. आनन्द रामायण
46. कृत्तिवास रामायण
47. साहित्य का मर्म : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
48. रस-छंदालंकार
49. साहित्य दर्पण
50. पल्लव प्रवेश : सुमित्रानन्दन पन्त
51. महाकवि कालिदास : श्रुतबोध
52. छन्दोमंजरी: गंगादास, हरिदास संस्कृत ग्रंथमाला
53. लघु सिद्धान्त कौमुदी
54. काव्य दर्पण : डॉ0 रामदहिन मिश्र
55. ध्वन्यालोक : आचार्य आनन्दवर्द्धन
56. काव्यादर्श :
57. कविप्रिया : केशवप्रिया
58. काव्यालंकार :
59. काव्यालंकार सूत्र
60. अलंकार सर्वस्वम्-6 : रुद्रट
61. वक्रोक्ति जीवित
62. काव्य प्रकाश : मम्मट
63. काव्य रसायन
64. काव्य मीमांसा
65. वाल्मीकि रामायण काव्यानुशीलन- लेखक शिव बालक राय, प्रकाशक : मोतीलाल बनारसीदास, सन् 1980 ई0

कोश

66. पौराणिक कोश : लेखक- राणा प्रसाद शर्मा, प्रकाशक : ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी,सन्-1986 ई0
67. ग्रीस पुराण कोश: लेखक- कमल नसीम, प्रकाशक : अक्षर प्रकाशन प्राईवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, सन् 1983 ई0
68. हिन्दी साहित्य कोश : सं0 डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमंडल, काशी

69. संस्कृत हिन्दी कोश : वामन शिवराम आप्टे
70. प्राकृत सूक्ति कोश : मुनि चन्द्रप्रभ सागर, प्रकाशक : जयश्री प्रकाशन, कलकत्ता, सन् 1985 ई0

विविध

71 रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय : लेखक- डॉ0 भगवती प्रसाद
72. भारत के हिन्दीतर रामकाव्य : अरविन्द जैन
73. रामचरित पुराणम् : अभिनव पम्प नागचन्द्र भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ, सन्-1977 ई0
74. भाषा साहित्य चरित्रम्-भाग-1 : आर0 नारायण पणिक्कर
75. असमिया रामायण साहित्य- लेखक- उपेन्द्र चन्द्र लेखारू
76. मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ द्धअसमिया में रामसाहित्य: विष्णुकांत शास्त्रीऋ
77. हिन्दी साहित्य, द्वितीय खंड : भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग
78. नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण, द्वितीय खंड
79. रामकीर्ति द्धहिन्दी अनुवादऋ स्वामी सत्यानन्दपुरी, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, सन् 1969 ई0
80. बु)चरित् : अश्वघोष
81. गाथा राम रावण : गोमती शंकर शुक्ल, शांति सौरभ, जबलपुर
82. पंच पहाड़ियों से घिरी राजगृह : डॉ0 चतुर्भुज
83. मगही काव्यों के आधार पर निर्मित मगही काव्यशास्त्र का स्वरूप, लेखक- डॉ0 रामकृष्ण मिश्र
84. प्रसाद एवं रवीन्द्र के काव्य में सौंदर्यबोध : डॉ0 मिथिलेश कुमारी मिश्र
85. प्रसाद ग्रंथावली, प्रथम खंड
86. श्रीमद् वाल्मीकि रामायण की विशेषता- मं0 मथुरानाथ जी शास्त्री
87. संस्कृत साहित्य का इतिहास : आचार्य बलदेव उपाध्याय
88. संस्कृत कवि दर्शन : डॉ0 भोला शंकर व्यास, चौखम्भा विद्या भवन, चौक, वाराणसी, सं0 2012
89. जायसी ग्रंथावली की भूमिका
90. पल्लव की भूमिका
91. संस्कृत नाटक : ए0बी0 कीथ, अनु0 उदयभानु सिंह, मोती लाल बनारसीदास, सन् 1987 ई0
92. दशरथनन्दन श्रीराम : लेखक- चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1978 ई0
93. क्या उत्तरकांड वाल्मीकि रचित है? : नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग-17
94. वयं रक्षाम: आचार्य चतुरसेन, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1971 ई0
95. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा : स्व0 पं0 चन्द्रशेखर पाण्डेय तथा शांतिकुमार नानूराम, व्यास, प्रका0- साहित्य निकेतन, कानपुर, 1960 ई0

6, श्री कृष्ण
hoo.in

Scanned with OKEN Scanner

96. संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर

अंग्रेजी पुस्तकों की सूची

1- HISTORY OF INDIAN LITERATURE : PART-1 , M. Winternitz
2- RAMAYANA COPIED FROM HOMER : K.T. Telang, Bombay, 1873
3- INDIAN WISDOM : Williams M. Monier
4- SANSKRIT LITERATURE : A.A. Macdonell
5- A HISTORY OF CIVILISATION IN ANCIENT INDIA
6- UTTARRAMACARITTA : S.K. Belvalkar
7- THE RIDDLE OF THE RAMAYANA : C.V. Vaidya
8- INDIAN EPIC POETRY : M.M. Williams
9- DAS RAMAYANA : H. Jacobi
10- ENCYCLOPAEDIA OF RELIGION AND ETHICS- 'BHAKTIMARG'
11- EARLY HISTORY OF VAISNAVA SECT : Hemchand Ray Chaudhury
12- A RAMAYANA STORY IN TIBETAN FROM CHINESE TURKESTAN. INDIAN STUDIES : F.W. Thomas
13- THE RAMAYANA IN LAOS :H. Deydier
14- THE RAMAYANA IN BURMA : J.P. Connor
15- HISTORY OF SANSKRIT LITERATURE : A.B. Keith
16- INTRODUCTION TO PRAKRIT : A.C. Woolner
17- ENCYCLOPAEDIA OF INDIAN LITERATURE : PART- 4 & 5, CHIEF EDITOR: MOHANLAL, SAHITYA AKADEMY, NEW DELHI, Published : 1991 and 2001
18- A CRITICAL STUDY OF PAUMCARIYAM : Dr. K.R. Chandra
19- HISTORY OF TAMIL LAANGUAGE AND LITERATURE
20- CLASSICAL GREECE : C.M. BAWRA
21- TROJAN WOMEN : EURIPIDES

पत्र-पत्रिकाएं

1. भारती : भारती पत्रिका, 19 अप्रैल, 1964 ई0 द्धरामनवमी अंकत्र्
2. भारती : 18 अक्टूबर, 1964 ई0
3. कादम्बिनी अप्रैल 2006 ई0, पष्टष्ठ-39
4. कादम्बिनी अक्टूबर 1990 ई0
5. कादम्बिनी सितम्बर 1995 ई0, पष्टष्ठ-92
6. कादम्बिनी, जुलाई-2002 ई0
7. सारंग द्धआकाशवाणी पत्रिकात्र्-7 रवरी, 1960 ई0
8. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष-61, अंक-1
9. कल्याण द्धसंक्षिप्त वाल्मीकि रामायणांक-'आदि कवि वाल्मीकि'त्र्
10. दैनिक जागरण, पटना नगर, दिनांक-16.11.07

11. वैशाली इन्सटीच्यूट रिसर्च बुलेटिन-6, 1988 ई0
12. वैशाली इन्सटीच्यूट रिसर्च बुलेटिन-17, 2000 ई0
13. साहित्य द्धशोध और आलोचनात्मक त्रैमासिकत्र्, अप्रैल-जून 2008 ई0, बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पटना
14. . दैनिक हिन्दुस्तान, पटना - दिनांक-1.3.2008
15. . दैनिक आज, पटना- 17 अप्रैल 1983 ई0
16. . आउट लुक द्धसाप्ताहिकत्र्- 24 मार्च, 2008 ई0
17. धर्मायण, जनवरी-मार्च, 2008 ई0, महावीर मन्दिर प्रकाशन, पटना

Scanned with OKEN Scanner

डॉ. अशोक प्रियदर्शी
1 जनवरी, 1953

शिक्षा	:	एम.ए., पी-एच.डी.
प्रकाशित पुस्तकें	:	पत्रकारिता जगत्, दलदल
आकाशवाणी	:	स्वीकृत हिन्दी/भोजपुरी/ मगही कलाकार एवं उद्घोषक। अनेक हिन्दी मगही एवं बाल नाटकों का लेखन।
दूरदर्शन	:	स्वीकृत नाटक कलाकार।
रंगमंच	:	लेखक/निर्देशक/अभिनेता। 1952 ई. से स्थापित रंग-संस्था 'मगध कलाकार' का 1970 ई. से सचिव।
सम्पादन	:	कोशा, थियेटर, चतुर्भुज रचनावली, मेरी रंग-यात्रा, राजनीति चाणक्य
लेखन	:	आर्यावर्त, प्रदीप, बिहार समाचार, हुँकार, ज्योत्सना, हिन्दुस्तान, दैनिक भास्कर सहित विभिन्न पत्र-पत्रिकाएँ
सम्पर्क	:	क्वा.नं. - 106, रोड नं.- 6, श्री कृष्ण नगर, पटना - 800001 मो. - 9334525657
email	:	apriyadarshi76@yahoo.in

Scanned with OKEN Scanner